THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180487
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 S24K.   Accession No. H2058.

Author शर्मा राजेन्द्र.

Title कारवर.

This book should be returned on or before the date last marked below

कायर

(मौलिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास)

राजेन्द्र शर्मा

राजकमल

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली : बम्बई : नई दिल्ली

सम्माननीय
श्री जयचन्द्र जी जैन को
सादर समर्पित

कापीराइट, १९५२

मूल्य एक रुपया चौदह आने

प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई।
मुद्रक—गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली।

एक

"सुमन चैटर्जी !"

"ओ ! सुमन की 'आन्सरबुक' है ।" प्रोफेसर शशिनाथ पर जैसे कोई हल्का-सा नशे का असर हो गया । होठों पर एक मृदुल-सी रेखा दौड़ गई । कापी का पहला पृष्ठ उलटा । "कितना सुन्दर लिखती है सुमन !"

"रमा !" शशिनाथ ने पत्नी को पुकारा, "जरा यहाँ तो आओ; क्या कर रही हो ?"

चूल्हे पर रोटी सेकती हुई रमा कुछ मुस्कराई—"क्या कोई आवश्यक बात आ गई; मेरी तो रोटी जल जायगी ।" पर वह दो पल के लिए उठ आई ।

शशिनाथ ने मेज पर पड़ी एक और कापी उठाई । बोले—"यह तुम्हारा खत है । रोज प्रैक्टिस भी तो नहीं करतीं । मैं लिख देता हूँ, तो यों ही पड़ी रहती है कापी ।" एक चाव से शशिनाथ ने कहा—"देखो, यह कैसा सुन्दर लिखती है !" तब रमा की दृष्टि अपने लिखे पृष्ठ पर पड़ी । समूचे पृष्ठ को वह एक पल में देख गई । ऊपर-ही-ऊपर उसकी दृष्टि पड़ी । मन-ही-मन उसने दोहराया—'सी-ए-टी—कैट ।' और वह टेढ़े-मेढ़े अक्षर उसकी आँखों के सामने ठहर गए । हतप्रभ-सी रमा फिर रसोईघर में आ गई । मुस्कान लेकर गई थी; उदासी के बोझ से दबी लौट आई । पत्थर-सी बैठी रोटी सेकती रही । मन में वही खयाल बना रहा । कलेजे पर एक आग सुलग गई—चूल्हे की आग से

प्रचण्ड, असन्तोष की ऊँची ज्वालाओं से युक्त। 'मुझे अंग्रेजी नही आती, कौन पढाने वाला था!' यह उस आग का धुआँ था। रमा सोचती रही, और जब घडी ने दस बजाए तो वह 'नारी' अपनी उदासी को भूल गई और पति के प्रति उसका निर्मल प्रेम मुखरित हो आया। "आज तो दस बज गए; क्या यूनिवर्सिटी नही जायंगे आप? या आज 'लेट' जायंगे?" उसने पूछा। रमा के मुँह से अंग्रेजी का एक शब्द सुनकर शशिनाथ प्रसन्न हुए। "हाँ, आज पहला 'पीरियड' नहीं है मेरा," वह बोले।

शशिनाथ सब 'आन्सर-बुक्स' देख चुके थे। लिस्ट का ढाँचा बना रहे थे। वह भी तैयार हुई।...."ओः, सुमन 'फर्स्ट' है?" शशिनाथ एक सोच मे पड़ गए। उन्होंने सुमन की कापी फिर निकाली। एक बार फिर सब देख गए। दोबारा देखा। एक पृष्ठ पर 'कॉलम' नहीं छोड़ा गया था। शशिनाथ को वहाँ प्रश्न की संख्या भी दिखाई न दी। इससे सुमन के पाँच अंक कम हो गए; फर्स्ट से सैकण्ड रह गई। पर शशिनाथ कुछ देर विक्षिप्त-से रहे। खाना खाने बैठे तो कोने मे खड़ी सुमन उनकी कायरता पर जैसे हँसी। चुलबुली-सी सुमन, गरदन तक घुँघराले केश, पतले लाल होठ, मोती-से दाँतों में पैंसिल लगाकर हँस रही है।...शशिनाथ भर-पेट न खा सके।

रमा ने सुना—"क्यों जी, सफेद पैण्ट नहीं निकाली?" उसे कुछ खेद हुआ, क्योंकि शशिनाथ ने कहा था कि वह पैण्ट निकालना 'चैक' की, जो नई सिलवाई है। वह जल्दी ही हाथ धोकर आई और अलमारी मे सफेद पेण्ट निकालकर उन्हें दे दी। पर रमा की कार्य-पटुता की आज शशिनाथ ने कोई सराहना न की; यूनिवर्सिटी जाते समय रमा से कुछ हँसे-बोले नही। पति की 'चुप' से उसका विषाद बढता ही गया। जितना वह सोचती कि 'आज आखिर हो क्या गया,' उतना ही विषाद मे घिरती जाती। अपने भीतर झाँकती तो कहती, 'मैने तो कोई ग़लती की नहीं। पहले से कहते तो सफेद पैण्ट निकाल देती। पर ऐसी परेशानी की बात क्या हुई? मुझे बुलाया था, तब इतने परेशान न थे। मैं जो अंग्रेजी नहीं जानती हूँ, इसीसे उन्हें दुःख है।'

रोटी तो रमा सेक ही चुकी थी। अपनी और देवर की रोटी उठाकर रख दी। उसने सोचा, 'मेज़ पर पड़ी कापी उठा लाऊँ; जब तक देवर न आएँ तब तक कुछ लिखूँ ही' मेज़ तक रमा गई, पर वह अधिक दुखी हो गई। पान ऐसा ही छोड़ गए थे शशिनाथ। एक गुलाबी-सी पुस्तक पर पान खुला-खुला सूख रहा था। रमा क्षण-भर मेज़ के कोने पर हाथ टेके खड़ी रही। पान पर उसकी निगाह जम गई, तब उसे गुलाबी पुस्तक पर लिखे वह 'बंगला की प्रथम पोथी' के अक्षर बहुत मोटे-मोटे दिखाई दिए। सहसा उसका हाथ अपनी कापी की ओर बढ़ गया। दूसरे ही क्षण वह दवात, कलम और कापी लेकर लौट आई। अनादृत पान सूखता जा रहा था। रमा एक चटाई पर बैठी-बैठी लिखने लगी तो उसमें उल्लास जाग उठा। बहुत सँभाल-सँभालकर उसने एक, दो, तीन पृष्ठ लिख डाले। ...और पीछे से आकर रवि ने जब कहा—"भाभी, आज तो बड़ा ही सुन्दर लिखा है आपने! भैया बड़े खुश होंगे देखकर," तब रमा की तन्मयता की इतिश्री हुई। लज्जा से वह मुस्कराई। रविनाथ को देखकर उसने सन्तोष का एक श्वास लिया। तभी घण्टे ने सूचना दी कि बारह बजे हैं। चकित-सी रमा घण्टे की ओर देखती-देखती बोली—"आज तो तुम्हें दुकान ने ही बाँध लिया। बड़ी देर कर देते हो तुम रोटी को! क्या दुकान पर कहते हुए नहीं गए ?..."

"कौन, भैया ?" रवि ने कहा, "नहीं तो, आज डाक देखने भी नहीं रुके। सीधे ही साइकल पर निकल गए। ऐसा लगता था जैसे किसी बात का अफसोस है उन्हें।" कुछ ठहरकर रवि ने फिर पूछा—"कोई बात हो गई थी क्या भाभी ?"

"बात ?" रमा सहम गई, "मुझसे क्या बात होती ?"

"वह तो मैं भी जानता हूँ भाभी! भैया ही जाने किस धुन में रहते हैं ?"

"मुझे तो बस एक ख़त दिखाया था; वह जो कापी लाए थे, उनमें से...कहने लगे, यह ख़त कितना सुन्दर है..."

तब रवि की दृष्टि चटाई पर पड़ी रमा की कापी पर गई और बात

साफ हो गई। "भैया को भी अंग्रेजी का जाने क्या भूत सवार हुआ है....." बड़बड़ाता हुआ रवि हाथ-मुँह धोने लगा। "कभी कहेंगे, मुझे बंगला फैशन पसन्द है। कभी कहते हैं, बस दो पुस्तकें अंग्रेजी की काफी होंगी। पता नहीं क्या सनक है दिमाग में। ज़माना हिन्दी का आ गया और उन्हें अंग्रेजी का भूत सवार है....."

खाना खाते-खाते रवि ने एकाध बार भाभी का वह फोटो देखा, जिसमें रमा ने बंगला फैशन की धोती पहनी थी, पर दाल के स्वाद में उसकी विचार-धारा बदल गई। "भाभी! बड़ी स्वादिष्ट दाल बनाई है आज।" रवि के पास दाल खत्म हो गई थी। रमा बोली—"यों क्यों नहीं कहते कि दाल और दे दो। टेढ़ी बात कहेंगे हमेशा।"

"नहीं भाभी, तो क्या मैं झूठ कह रहा हूँ? भैया क्या तुम्हारे खाने की तारीफ करते ही नहीं?"

रमा की आकृति पर एक बार फिर उदासी की छाया दिखाई दी। "खाने की तारीफ से क्या होता है रवि?"...कहते-कहते वह भर आई।

पर रवि ने साहसी की तरह कहा—"तुम्हारी तारीफ माताजी होतीं तो करतीं। भैया को अभी अक्ल नहीं आई है।"

रमा हँसी नहीं। लज्जा से वह गरदन नहीं उठा सकी। एक रेखा हल्की मुस्कान लिये उसके अधरों पर फैल गई। मुँह से निकला—"हुँ!"

● ● ●

"टन! टन!" दूसरा पीरियड शुरू हो गया। बी० ए० द्वितीय वर्ष की कक्षा के 'सी' सेक्शन में अभी कोई प्रोफेसर नहीं आया। प्रोफेसर शशिनाथ का घण्टा है। वह अभी 'स्टाफ-रूम' में भी नहीं आये। विद्यार्थी कक्षा से बाहर द्वार पर आँख लगाए खड़े थे। सहसा प्रोफेसर शशिनाथ ने प्रवेश किया। उनकी साइकल पर कापियाँ बँधी देखकर तमाम कक्षा में सनसनी फैल गई।...

शशिनाथ के पीछे ही लड़कियाँ कक्षा में आईं। उनकी दृष्टि सुमन तक गई और अचानक चौंककर वह बंडल खोलने लगे। कुछ विद्यार्थी

क्रमशः सुमन और शशिनाथ को देखने लगे। सुमन ने यह सब समझा और सोच में डूब गई।

"प्रभा गंगोली फर्स्ट !"

"...सु...मन ..चैटर्जी ...सैकण्ड .." शशिनाथ का गला रुँध-सा गया। उन्होंने जल्दी ही सुमन की कापी उसकी ओर बढ़ा दी।

"राजाराम स्टैण्ड्स...थर्ड।" लड़कों में एक आश्चर्य की लहर दौड़ गई—जिसको प्रथम आना था, वह तीसरे नम्बर पर !

'प्रभा से पाँच नम्बर कम !' सुमन को समझते देर न लगी कि पाँच नम्बर काटे गए हैं, और वह भी जान-बूझकर !

"चैटर्जी की ट्यूशन है, भाई !" लड़कों मे फुसफुसी शुरू हुई। क्रोध से सुमन का चेहरा तमतमा उठा। प्रोफेसर शशिनाथ को भारी झेंप सवार हुई। लड़कों को जितना खामोश करते, उतना ही वे भड़कते। राजाराम बोला—"एक प्रश्न के अभी नम्बर नहीं दिये आपने !"

सचमुच उनसे यह भूल हो गई थी। सारा पासा ही पलट गया। "राजाराम फर्स्ट", शशिनाथ ने कहा, "मिस गंगोली सैकण्ड और सुमन थर्ड।"

मिस गंगोली इतनी क्षुब्ध न हुई जितना कि सुमन को होना पड़ा। राजाराम की खुशी का ठिकाना न रहा। लड़कों ने कक्षा में एक हो-हल्ला शुरू कर दिया। सुमन और शशिनाथ पर कटाक्ष-पर-कटाक्ष होने लगे। प्रोफेसर की किसी ने न सुनी। जल्दी से उन्होंने कापियाँ बाँट दीं और जब वह 'कल अंग्रेजी टैक्स्ट लाइए,' कहकर कक्षा से बाहर जाने लगे तो लड़कों ने काफी गुल-गपाड़ा मचाया। प्रोफेसर शशिनाथ को अपने विभागीय कक्ष तक पहुँचना मुश्किल हो गया। रह-रहकर उनके कानों में 'ट्यूशन है भाई' की आवाज टकराने लगी।

रिसैस (विश्राम) के समय टिफिन-रूम में अंग्रेजी के सभी प्रोफेसर बैठे थे। पर शशिनाथ उनमें न थे। अध्यक्ष के कमरे में तब उन्होंने टेलीफोन सँभाला था :

"मिस्टर नारायण चैटर्जी !"

"हाँ, हम ही बोलता है।"

"मैं शशिनाथ हूँ," वह कुछ झिझके।

"जी, प्रोफेसर साहब बोलिये।"

बड़ी हिम्मत बाँधकर शशिनाथ बोले—"मैं अब सुमन को नहीं पढ़ा सकूँगा।"

"हैं···? क्या बात हो गया प्रोफेसर! यह तो हो न सकता। आपने पूरा साल पढ़ायगा, ऐसा बोला था। आप धोखा दे सकता नहीं, प्रोफेसर!···"

शशिनाथ यह लम्बा उत्तर सुनकर झुंझला-से उठे। मन में आया कि टेलीफोन बन्द कर दें। पर फिर एक वेग से उन्होंने कहा—"जी नहीं, मैं कुछ नहीं समझता।"

तब नारायण चैटर्जी कुछ नम्र पड़ गए। शशिनाथ ने सुना—"आखिर बात क्या हो गया, प्रोफेसर?"

"जी, कुछ नहीं, मैं बदनामी सहन नहीं कर सकता।"

"ओः, समझा!" नारायण चैटर्जी हँसे, "आप अभी नया हैं यूनीवर्सिटी में। लड़का लोग ऐसा ही शैतान होता है। आप ठंडा दिमाग का हैं मिस्टर शशिनाथ!"

"तो आप कोई दूसरा प्रबन्ध कर सकते हैं?"

"मैं तुम्हारा कोई बात मान सकता नहीं। अब तीन ही मास का बात रह गया है। आपको सुमन को पढ़ाना होगा।···"

"जी नहीं, मुझसे यह सब नहीं हो सकता। मुझे अफसोस है कि मैं अपने वायदे को पूरा न कर सकूँगा। मैं मजबूर हूँ।···"

एक क्षण के बाद नारायणबाबू ने धीमे स्वर में कहा—"प्रोफेसर, सुमन को बोल देना तब।"

"सुमन को?" आश्चर्य से शशिनाथ बोले, "पर वह तो शायद चली गई।"

कोई उत्तर न आया। उधर से टेलीफोन बन्द कर दिया गया था। शशिनाथ बँधे-से रह गए। माथे पर के हल्के-हल्के स्वेद-कण उन्होंने रूमाल निकालकर पोंछ डाले।

टैनिस खेलने का कोई इरादा शशिनाथ ने किया नहीं था। पर जब यूनीवर्सिटी से चले तो सहज ही मैदान की ओर बढ गए। उनकी विचित्र ही दशा थी। मैदान में पहुँचते ही उनका माथा ठनका—'अरे मैं कहाँ आ गया?' पैर उनके भारी हो गए, पर लौटे नहीं। बात-की-बात में खेल जम गया। इतिहास के प्रोफेसर मिस्टर रस्तोगी बोले—"आज आपका 'पार्टनर' नहीं आया, मिस्टर शर्मा?"

और उखड़े हुए मन से शशिनाथ ने उत्तर दिया—"न आया तो न सही।" खेल भी तब उखड़ता ही गया। शशिनाथ शिथिल पड़ गए। मन में सोचा उन्होंने—'चलो खेलने न आई तो अच्छा ही हुआ।' पर इस बात से वह डर रहे थे कि मिस्टर रस्तोगी कुछ और न पूछ बैठें। शशिनाथ का ध्यान उचटा देखकर उन्होंने कुछ देर अच्छा खेलने के लिए उकसाया। और सहसा फिर वह पूछ बैठे—"आपकी यह 'जरसी' घर की ही बुनी है न? मुझे बहुत पसन्द आई। 'वाइफ' ने बुनी है?"

विवश हो शशिनाथ को कहना पड़ा—"हाँ।" धीरे-से एक लम्बा श्वास उन्होंने छोड़ा—'बेचारी रमा।' पर रस्तोगी के लिए यह सुनना असम्भव था। जल्दी ही शशिनाथ पर 'गेम' हो गया।

एक सोच से गरदन झुकाए वह 'फील्ड' से बाहर निकले। सहसा उन्होंने सुना—"आइए, प्रोफेसर साहब!"

अपनी बग्घी में से सुमन पुकार रही थी। शशिनाथ ने उस ओर देखा और सन्न-से रह गए। नित्य की भाँति आज सुमन से बोलने का उन्हें साहस भी न हुआ था। सुमन भी उन्हें कुछ नाराज दीखी थी, खेलने भी नहीं आई थी। सुमन ने उन्हें बग्घी में ही साथ चलने के लिए पुकारा तो उन्होंने एक आन्तरिक हल्कापन अनुभव किया। साथ ही वह एक संकोच से घिर गए। उन्होंने बहुत चाहा कि पैदल ही चलूँ, अतः टाला भी। पर सुमन के वाग्जाल से उन्हें मुक्ति न मिल सकी; बग्घी में जा बैठे। तब सुमन का दूसरा आग्रह शुरू हुआ। गिड़-गिड़ाहट के स्वर में उसने कहा—"तीन ही मास की तो बात है जी!"

"वह तो ठीक है, पर....." शशिनाथ ने समझाया, "मैं फोन पर तुम्हारे पिता को सब बोल चुका हूँ।"

"जी, उन्होंने ही तो मुझे अब भेजा है। आप घर होते चलिएगा, बुलाया है उन्होंने।"

"ट्यूशन तो मैं अब करूँगा नहीं। तुम कहती हो बुलाया है, तो मैं खाना खाने के बाद, कोई साढ़े आठ पौने नौ बजे तक आ सकूँगा।"

सुमन ने यह स्वीकार कर लिया और जब प्रोफेसर शशिनाथ के मकान के आगे बग्घी रुकी तो सुमन ने कहा—"प्रोफेसर साहब, यह अपनी जरसी एक दिन के लिए मुझे दे दीजिए। मैं ऐसी बुनाई डालूँगी।" और गाड़ी से उतरते-उतरते शशिनाथ ने अपनी जरसी उतारकर दे दी।

कमरे में जब शशिनाथ ने प्रवेश किया तो रवि कोई पुस्तक पढ़ रहा था। रमा लिखने में संलग्न थी। दोनों की ही एकाग्रता दूर हुई। एकदम ही रवि ने कहा—"भैया, जल्दी से तुम खाना खा लो। भाभी आज उदास हैं। हमने सिनेमा की पक्की कर ली है।"

"मैं काहे को उदास होती," कमरे में एक दबी-सी आवाज धीरे-धीरे दब गई। शशिनाथ बोले—"मैं तो आज चल नहीं सकता..."

"क्यों भैया? जब हम कहते हैं तब तुम्हें कोई-न-कोई काम ही निकल आता है," रवि ने मुँह बनाया, "और हाँ भैया, तुम तो आज जरसी पहनकर गये थे?"

शशिनाथ ने फिर कहा—"नहीं रवि, मुझे सुमन के पिताजी ने बुलाया है।...जरसी भी सुमन ने ही माँगी है, एक दिन के लिए।"

रमा मानो किसी उद्वेग से भर आई, "बुलाया है तो हो आना, चलो खाना खाओ।" एक अजीब चिड़चिड़ापन उसमें आ गया था—"यह बग्घी उसी की रुकी होगी अभी नीचे। हरदम सुमन की ही रटना लगी रहती है।" और जब शशिनाथ खा चुके तो रसोई में एक तरफ हाथ में अपने परौंठे लेकर रमा बैठी और उसने वैसे ही खा लिए। शशिनाथ को यह देखने का अवसर बहुत बार मिला है कि जो सारे

कुटुम्ब का प्रेम से भोजन बनाने वाली नारी है, वही इस दुःख से बैठकर भोजन करती है—रसोई में एक तरफ बैठकर, हाथ पर परोंठे और शाक सँभालकर। उसे कुरसी-टेबल, आसन-चौकी की आवश्यकता नहीं। पर वह समझते हैं कि यह नारी का स्वभाव है, इसलिए कभी कहा नहीं कि चौकी ले लो। जाने लगे तो बोले—"तुम दोनों चले जाओ रवि !" और वह ज़ीना उतर गए।

लेकिन जब सुमन के घर पहुँचे तो द्वार पर ही ठिठके रह गए। रमा ने मानो द्वार बन्द-सा कर दिया था। उन्होंने घण्टी बजाने के लिए कपाट पर लगा बटन दबाया तो दीवार पर जैसे उन्होंने पढ़ा—'सुमन की ही रटना लगी रहती है।' वह उस क्षण मूर्तिवत् खड़े रह गए। ऊपर से सुमन झाँकी। खिड़की की खड़खड़ाहट सुन शशिनाथ ने उस ओर देखा। सुमन खुशी से मुस्कराई और शशिनाथ के होंठ तब कृत्रिम मुस्कराहट से फैल गए। सुमन अब नीचे उतर आई थी, यह उन किंकर्तव्यविमूढ़-से शशिनाथ को जान भी न पड़ा। और सहसा जो सुमन ने उन्हें बाँह से पकड़कर खींचा—"आइए ना !" तो शशिनाथ पल-भर विस्मय में डूबकर विस्मृति में विलीन हो गए। सुमन यह क्या कर बैठी है, इसका उसे स्वयं भी ज्ञान न था। पर वास्तव में शशिनाथ इसका कुछ और ही अर्थ समझे। धीमे स्वर में उन्होंने सुमन को ताड़ना-सी दी—"सुमन यह क्या ?" तब जैसे दोनों को ही अपनी-अपनी स्थिति का भान हुआ।

शशिनाथ को सुमन ने छोड़ तो दिया। पर एक ठहाका मारती हुई वह जीना चढ़ने लगी। शशिनाथ उसके पीछे चले—शान्त और उल्लास से भरे। उनका मौन सुमन की विजय थी। कमरे में प्रवेश करते करते सुमन ने शशिनाथ की ओर देखा और पिता से बोली—"प्रोफेसर साहब पढ़ाने आते रहेंगे।....."

वह मुस्कराई। दोनों सोफे पर बैठ गए। शशिनाथ उस क्षण सिवाय मौन रहने के कुछ बोल न सके। नारी का अपनेपन से भरा स्पर्श उन्हें निश्चय से डिगा सकेगा, इसकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। एक कर्तव्य से मानो वह बँध गए। नारायणबाबू के 'धन्यवाद' ने

उनके बंधन को जकड़ दिया। निष्क्रिय वह सोफे पर बैठे रहे, विचार-मग्न। 'एक बार साहस बटोरकर सुमन को पढ़ाना होगा।' कुछ क्षण पहले का सुमन का संस्पर्श उन्हें भुलाये न भूलता। 'यह क्या हो गया राम?'

दया की याचिका आर्द्रनयना रमा उनके सम्मुख आ खड़ी हुई, और फिर वही सुखद संस्पर्श की याद, जो ग्लानि और कड़वाहट से धुँधली होती जा रही थी, पर धुँधलापन भी जिसका गहन था, किसी प्रायश्चित्त के अश्रु पाकर भी जिसका धुलना कठिन था। शशिनाथ ने चाहा कि अब लौट चलूँ। पर नारायणबाबू और पुलकित-मन सुमन उनकी मानसिक पीड़ा को क्या समझते? नारायणबाबू ने पुत्री का संकेत पाकर जो आग्रह शुरू किया तो शशिनाथ समझे कि आज अधिक रात गये तक भी इनसे छुटकारा नहीं। यन्त्रवत् वह पिता-पुत्री के साथ एक बार फिर बग्घी में आ बैठे। और पन्द्रह-बीस मिनट तक उन्हें रहस्य के परदे से ढके रहने के बाद जब वह सिनेमा-गृह के सामने आकर रुकी तो उनकी अन्तर्वेदना असह्य थी। सुमन से क्या आज वह अपना समस्त बल, साहस, पौरुष तक भी हार न बैठे थे? उन्हें फिर रमा का ध्यान आया। उन्होंने कहा—"घर मेरा इन्तजार होता होगा। आप लोग देखिए।"

पर सुमन ने कहा—"आपकी वजह से तो हम ही आए हैं।" और एक बार वह फिर मुस्कराई। अब शशिनाथ ने स्वतः ही सुमन का हाथ पकड़ लिया था, यह उन्हें मालूम भी न हो पाया। अचानक सुमन का हाथ उनके हाथ से दब गया। तब उन्हें अपने पर विस्मय हुआ, चेहरे का रंग उड़ गया और दृष्टि सिनेमा के 'पोस्टर' पर जम गई।

नारायणबाबू के वृद्ध शरीर में पुत्री की विजय से अब मानो स्फूर्ति भर आई थी। देखते-देखते ही वह तीन टिकट खरीद लाए और प्रोफेसर के हाथ में पकड़ा दिए। शशिनाथ ने अब अपने को पूर्णतया बँधा पाया। चुपचाप जब वह एक अहसान के बोझ से दबे सिनेमा-हॉल में प्रवेश करने लगे, तब उन्हें याद आया कि रमा भी तो सिनेमा आई है रवि के साथ। एक बार फिर मुख विवर्ण हो गया। वह सोचने

लगे—'खिसक चलूँ।' लेकिन यह नैतिकता के विरुद्ध आचरण होगा। अतः उन्होंने यह 'बन्धन' ही पसन्द किया।

'पिक्चर' शुरू हो गई। अन्धकार ने मानो उन्हें अपनी शरण में ले लिया। नारायणबाबू और सुमन के बीच में बैठकर वह उस क्षण भूत की समस्त घटनाओं को जैसे भूल चुके थे। 'विश्राम' में जब 'हॉल' विद्युत् के प्रकाश से जगमगा उठा, तो उन्होंने अपना मुँह छिपा लेना चाहा। भयभीत-से वह रमा-रवि को छानने लगे। सतर्क थे कि कहीं मुझको कोई परिचित न देख ले। सफलता उन्हें मिली नहीं। असफलता से उनका सन्तोष और बढा। और तब तो वह सुमन की खुली हँसी में अपने को भ्रमर-सदृश भूल गए। 'कोई दूसरी पिक्चर देखने गये होगे,' उन्होने लापरवाही से अनुमान लगा लिया। सुमन में अनजाने रम गए। कुछ ही समय के मृदुल संसर्ग से मानो सुमन की सुगन्धि सरस हो उठी। भ्रमर अति समीप था, सुमन को उसने खिला देखा; और वह स्वभाव से ही भुलक्कड़ भौंरा अपने को उसका बन्दी मान बैठा। अपना भटकना, अपनी उदासी, सुमन के अतिरिक्त वह सबकुछ ही तो भुला बैठा।

'शो' समाप्त हुआ और उसके साथ ही शशिनाथ का क्षणिक सुख भी जैसे समाप्त हो चला। अँधेरे में उन्होंने प्रवेश किया था, और अब वह प्रकाश में आए। सुमन का पाश उनके लिए उत्तरोत्तर शिथिल हो गया। सजग-से वह उठे; अपने को सँभाला। सुमन से दूर रहना ही श्रेयस्कर है, उन्होने सोचा। पर अपने चारों ओर एक परिधि वह स्वयं खींच चुके हैं, जो उनकी सजगता का लोप किये बिना नहीं रुकेगी; अन्तर से जब यह चेतना मिली तो शशिनाथ को अपने से ही तीव्र ग्लानि हुई।

घर लौटते-लौटते वह रमा की कातर दृष्टि का ध्यान कर द्रवित हो उठे। पर तीन मास जो सुमन को अभी पढाना है, वह सब कैसे होगा? तेज़ी से वह घर की ओर कदम उठाए चले जा रहे थे। गाम्भीर्य उन पर छाया था। अर्ध-रात्रि में भी ललाट पर सिकुड़नें स्पष्ट दृष्टिगत हो रही थीं, क्योंकि वह परेशान थे, विचार-मग्न थे जिस रमा ने कभी मेरा

विरोध किया नहीं, उसके प्रति क्या मैं अन्याय नहीं कर रहा ? सुमन को अपना स्वार्थ प्रिय है और मेरा अपयश…"

शशिनाथ के कानों में लड़कों के गुल-गपाड़े का स्वर टकराने लगा। ज्यों-ज्यों वह घर की ओर बढ़ रहे थे, त्यों-त्यों वह आवाज़ें भी स्पष्टतर होती जाती थीं। प्रोफेसर यह सब नहीं सुनना चाहते थे, लेकिन प्रतिध्वनियाँ स्पष्ट सुन पड़ रही थीं। मानसिक अशान्ति से मुक्ति पाना वह चाहते थे। सहसा उनकी गति द्रुततर हो गई और उसके साथ ही विचारों की गति में भी तेज़ी आ गई—'सुमन कैसी चंचल लड़की है, मुझे मोह-पाश में फाँसते उसे तनिक संकोच नहीं हुआ। उसका पिता-नारायणबाबू…ओह ! वह कैसा पिता है ? इतनी स्वतन्त्रता दे रखी है एक युवती को…लज्जा का नाम नहीं, क्या यही उन्नत समाज है ! क्या वह यह भूल गई थी कि मैं उसका प्रोफेसर हूँ।…नहीं…नहीं… मैं पढ़ा सकता नहीं। प्रोफेसर हूँ मैं, क्लास में पढ़ाऊँगा। पर सुमन के घर में नहीं जा सकता। शिक्षा के लिए जिस शुद्ध वातावरण की आवश्यकता है, वह सुमन के आसपास कभी मिल नहीं सकता ! जिस छलना ने मुझे अब तक छला है, अब छल नहीं पायगी…' छात्रा और प्रोफेसर के बीच काम-वासना की कल्पना से प्रोफेसर सिहर उठे। 'नहीं-नहीं, रमा के प्रति मुझे सच्चा रहना है…रमा को मैं धोखा नहीं दे सकता। पति-पत्नी के बीच विश्वासों की जो अत्यन्त कोमल, लचीली और बारीक डोर है, मैं उसे तोड़ नहीं सकता…सुमन का स्वार्थ वासना से पूरित है। यह हो नहीं सकता कि उसे तीन मास पढ़ाकर अपना तीस वर्ष का चिरसंचित चरित्र-बल धूल में मिला दूँ। कालेज में मेरे लिए जैसी और छात्राएं हैं वैसी ही सुमन है। अब तक पढ़ाया सो पढ़ाया, पर अब सुमन की सुगन्ध विषैली बन चुकी है।'… अन्तर्द्वन्द्व का यह द्रुतगामी चक्र प्रोफेसर शशिनाथ को जब घर के सिंह-द्वार से दो-चार कदम आगे ले गया, तब वह अचानक चौंककर पीछे मुड़े।

खिन्न-मुद्रा प्रोफेसर शशिनाथ ने जब अपने कक्ष में प्रवेश किया तो बारह बज चुके थे। मध्यम प्रकाशवाला 'बैड लैम्प' जल रहा था। रमा

पीढ़े पर बैठी अर्ध-निमीलित नयनों से ऊँघ रही थी। पश्चात्ताप के बोझ से शशिनाथ का हृदय भारी था। पद-चाप का धीमा स्वर सुनकर रमा की सुषुप्ति दूर हो गई। दूसरे ही क्षण वह भी चेतन और जागरूक हो गई, मानो उसने निद्रा का आह्वान ही न किया हो। थके मन से शशिनाथ जूते का फीता खोल रहे थे। रमा चुपचाप पीढ़ा छोड़कर उठ खड़ी हुई। अँगीठी की मन्दी आँच में रखा दूध का गिलास वह उठा लाई, पलंग के सिरहाने की ओर रखी मेज़ पर उसे रखकर वह फिर कक्ष से बाहर चली गई। एक मिनट में ही उसने पति का चेहरा देखकर उनकी उद्विग्न मनःस्थिति का पता पा लिया था। पति कुछ न बोले थे, इसलिए वह भी मौन ही रही। पलंग पर बैठकर जब शशिनाथ ने दूध का गिलास उठाने की चेष्टा की, तभी रमा ने अपनी वह कापी उनके समक्ष ला धरी जिस पर वह दिन-भर अभ्यास करती रही थी। प्रोफेसर का हृदय शान्त न था। सुमन के शेषनाग ने उसमें मोहपाश के मन्दराचल से शत-शत तरंगें आलोड़ित कर दी थीं। कापी पर निगाह गई तो सूखी स्याही से उत्पन्न सिकुड़नों के कारण प्रोफेसर को अनेक पृष्ठ उभरे हुए दृष्टिगत हुए। वह समझ गए कि आज रमा ने काफी अभ्यास किया है। पर अशान्त मन को इससे कोई सुख-सन्तोष न मिला। प्रोफेसर उलटे झल्ला उठे—"अब इतनी रात बीते कोई इस काम में सिर खपाया जाता है?" भृकुटि तानकर छोह से लाल हुए नेत्र उन्होंने रमा की ओर उठाए और कापी अचानक उनके फड़फड़ाते हाथों में से निकलकर दूर कोने में रखी हुई अलमारी के पास जाकर गिरी। रमा का हृदय काँच की तरह मानो टूक-टूक हो गया। दिन-भर का उसका परिश्रम पानी के रेले में बह गया। सच्चे हृदय से किये गए श्रम का फल भी मीठा नहीं! मन का ज्वार रोककर रमा जब अपने पलंग पर आ लेटी तो उसके निश्वास बहुत गरम हो चुके थे। उसे नहीं पता, प्रोफेसर ने कब 'स्विच' बन्द करके उस नीरव और शान्त वातावरण को निविड़ अंधकार का परिधान दे दिया।

दो

दूसरे दिन जब सुमन मुस्कराती हुई शशिनाथ के पास, उन्हीं के कमरे में, एक प्रश्न लेकर गई तो शशिनाथ को उसकी सूरत ज़हर-सी लगी। वह नहीं देख पाये कि सुमन लम्बी कमीज़ और रेशमी गरारा पहने आज सब दिन से अधिक सुन्दर लग रही है; वह नहीं देख पाये कि उसकी ओढ़नी बहुत मूल्यवान बनारसी काम से जगमगा रही है; वह नहीं देख पाये कि कल की विजय का उल्लास उसके चेहरे को चार चाँद लगा रहा है। सुमन को आज वह 'विष-रस-भरा कनक-घट' समझ रहे थे। क्रोध से उनका मुख तमतमा उठा। नयनों के डोरे रक्तिम हो गए। पर उनकी धनुषाकार भृकुटियों के नीचे लाल नेत्र देखकर भी सुमन सहमी न थी। वह व्यंग्य की हँसी हँसने वाली थी। तभी प्रोफेसर शशिनाथ बोले—"सुमन तुम कोई और ही प्रबन्ध करो। मुझसे कल बड़ी भूल अनजाने में हो गई।...हाँ, गलती मुझसे ही हुई है, मैंने तुम्हें ऐसा अवसर दिया कि तुम मेरी दया और उदारता को कुछ और ही समझ बैठीं। मैं तुम्हारा अध्यापक हूँ, तुम्हारे चरित्र का बोझ मुझ पर..."

"बस-बस, प्रोफेसर साहब!..." सुमन एक ठहाका मारकर हँस पड़ी। प्रोफेसर को यह आशा न थी कि उनका गम्भीर प्रवचन सुनते-सुनते सुमन बीच में ही ज़ोर से हँस पड़ेगी। सुमन कह रही थी—"जो-कुछ आप कह रहे हैं, मैं भली प्रकार जानती हूँ।" और विषय को बदलने की चेष्टा में सुमन बोली, "वह इलियट का नया कविता-संग्रह तो तनिक मुझे दे दीजिए।"

"सुमन," प्रोफेसर का स्वर प्रताड़ना का था, "पहले जो-कुछ मैं कह रहा हूँ, उसे सुन लो। मैंने कल तुम्हें आगे पढ़ाना यदि स्वीकार किया हो, तो उसे सही मत समझना। बस, यही मुझे कहना है। कोई और प्रबन्ध कर लो..."

 सुमन फिर हँस पड़ी। प्रोफेसर शशिनाथ इस बार क्रोध-मिश्रित

विस्मय से बोले—"तुम्हें यह हँसी क्यों आ रही है ?"

"हँसी···!" सुमन खिलखिला पड़ी, "प्रोफेसर साहब, पुरुष की कायरता नारी के लिए सदैव हास्यास्पद रही है और रहेगी।"

"सुमन, जरा सँभलकर बोलो; खयाल करो तुम किससे बात कर रही हो," शशिनाथ चीख पड़े।

"जानती हूँ श्रीमान् ! आज, इस क्षण में अपने आदरणीय, परम-श्रेष्ठ, प्रोफेसर मिस्टर शशिनाथ से सम्भाषण कर रही हूँ," सुमन ने व्यंग्य किया, "लेकिन आप ही बताइए, प्रोफेसर साहब, वचन देकर मुकर जाना क्या हीनता की पराकाष्ठा नहीं है ? आप आख़िर इतने चिन्तित क्यों हैं ? क्या मेरे सहपाठियों ने जो आवाज़ें कसीं, उनसे आप विचलित हो उठे हैं ? यदि यह सही है, तब भी यह आपकी कायरता का द्योतक है।"

"सुमन," खीझकर शशिनाथ चिल्ला उठे, "इस सम्बन्ध में मुझे तुमसे कोई परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं। मैंने जो निर्णय किया है, वह अकाट्य है।"

"लेकिन इस निर्णय का मुझसे सीधा सम्बन्ध है," सुमन के स्वर में भी इस बार चढाव आ गया था, "आप मुझसे यह खिलवाड़ आखिर क्यों कर रहे हैं ? पिछले छः मास से आप बराबर मेरी ट्यूशन कर रहे हैं। अचानक यह व्यवधान कैसे खड़ा हुआ ? तनिक सोचिए तो प्रोफेसर साहब, आप ऐसा निर्णय करके अपनी सत्यता को कलुषित कर रहे हैं। जिस दिन क्लास में यह बात विस्फोट की तरह भयंकर शब्द करके फूटेगी, आप परिहास के दयनीय पात्र बन जायँगे; आपका स्फटिक-सा निर्मल, स्वच्छ चरित्र कलंकित बन जायगा; आप क्लास में पढ़ा न सकेंगे; तमाम कालेज में आपकी प्रतिष्ठा आँच से भस्म हो जायगी। आप समझ लीजिए, इस भावुकता से आपका कार्य-क्षेत्र, कर्म-क्षेत्र नष्ट हो जायगा; आपकी मान-मर्यादा मिट्टी में मिल जायगी···"

"सुमन, यह भय और प्रलोभन मुझे अपने निश्चय से डिगा नहीं सकते। जिसे तुम रण से पीठ मोड़ना समझती हो, मैं उसे साहसपूर्वक पीछे हटकर अपनी स्थिति को मज़बूत बनाना समझता हूँ। अपनी भूल

स्वीकार करना कायरता नहीं, साहस का अन्यतम स्वरूप है।...”

बीच में ही सुमन उपेक्षा भाव से मुस्कराई—“हुँ, साहस इसी का नाम तो है कि छात्रों की आवाजें सुनते ही क्लास ‘डिसपर्स’ कर दी जाय। छात्र अध्यापक की उपस्थिति में अनुशासन की सारी मर्यादाएँ भूल बैठें और उसे पढ़ाने का अवसर ही न दें, क्लास से भगा दें, यही तो साहस है न?” सुमन ने मेज़ के तनिक और निकट आकर प्रोफेसर की आँखों में आँखें डाल तमककर पूछा—“मैंने आपकी दया को कुछ और समझा, लेकिन यह तो बताइए कि जिस मनोविकार को छः मास से आपने सौजन्यता के पट में प्रच्छन्न कर रखा था, आज वह सहसा नियन्त्रण के सारे बाँध तोड़कर कैसे फूट निकला है?”

“सुमन, चुप रहो!” शशिनाथ चिल्लाए।

“मुझे आज कह लेने दो प्रोफेसर, मैं चुप नहीं रह सकती,” उसका स्वर कठोर था, “आप एक युवती को पढ़ाने से क्या इसलिए ही इन्कार नहीं कर रहे कि आप अपने मन की विकृति पर विजय पाने में सन्देहशील हैं? आज तक आप प्रकट में निर्विकार थे। अब तक सदा नित्य डेढ़-दो घण्टे मुझे एकान्त में पढ़ाया है। आज भी मैं वही सुमन हूँ, जो कल थी। आपकी इच्छा-अनिच्छा किसी के भाग्य के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकती। मेरे प्रथम आने में आपका कोई दोष नहीं, इस नाते छात्रों में आप अपमानित या निन्दित नहीं ठहराए जा सकते। लेकिन मेरी ट्यूशन छोड़कर आप हज़ार लड़कों के बीच मुझे अपमान की चट्टान से घृणा के पारावार में गिरा देंगे, प्रोफेसर! सारा विश्वविद्यालय मुझसे अधिक घृणित किसी और को न समझेगा। और तब मैं नहीं कह सकती कि प्रतिक्रिया और प्रतिशोध की ज्वालाओं में कौन किस प्रकार भस्मसात् होगा!...” यह कहते-कहते सुमन का कण्ठ अवरुद्ध हो गया; पलकें भीज गईं। उत्तर की प्रतीक्षा में उसने जब शशिनाथ की ओर आँखें उठाकर ‘अब क्या कहते हो?’ का भाव प्रकट किया तो शशिनाथ कुरसी छोड़कर उठ खड़े हुए। पुस्तकों की अलमारी की ओर बढ़ते हुए वह अविचलित स्वर में कहने लगे—“मैंने सब समझ लिया है, सब सोच लिया है; प्रतिक्रिया और प्रतिशोध की

धमकी मुझे अपने निश्चय से डिगा नहीं सकती।" प्रोफेसर अलमारी खोल चुके थे। पुस्तक ढूँढते हुए वह कह रहे थे, "तुम्हारी वाचालता से मैं प्रभावित हूँ। पर यह समझ लो, जो शशिनाथ कल तुम्हारे लिए मोम था, वही आज पत्थर है। इस सुमन के लिए आज उसके पास कोई सुधा शेष नहीं रह गई है।"

"प्रकृति अपना स्वभाव नहीं छोडती प्रोफेसर साहब ! सूर्य सबको अपनी उष्णता देता है और शशि शीतलता से सबको सुधामय बना देता है। फुलवाड़ी के सभी सुमन उसके लिए एक-से हैं। और मैं देखूँगी कि आप भी अपने उसी स्वभाव को अपनाए रहेंगे, जो अब तक आपकी प्रकृति बना रहा है।"

"यह कविता करने का समय नहीं है, सुमन ! लो, इलियट की नई पुस्तक। काम के बाद लौटा देना। अब जाओ !"

"लेकिन आपने बताया नहीं कि ..."

"मैं सौ बार बता चुका। मैं ट्यूशन नहीं करूँगा, नहीं करूँगा, सौ बार नहीं करूँगा।"

सुमन ने रुक्षता के साथ प्रोफेसर की ओर देखा। जो पुस्तक शशिनाथ ने मेहनत से ढूँढकर अभी अलमारी से निकाली थी, सुमन ने फन्नाकर उसे मेज़ पर फेंक दिया। गर्व से छाती फुलाकर वह बोली—"अपनी मेहनत से मैं अब पास होकर बताऊँगी। लेकिन देखूँगी आप कितने दिन इस क्लास में और पढ़ा सकेंगे। मैं सब सह सकती हूँ प्रोफेसर साहब, पर आपने मेरी आशाओं के शत-खण्ड करके मेरा जो अपमान किया है, वह मेरे लिए असह्य है। मैं आपकी छात्रा हूँ, पर आप यह न भूलिए कि मैं एक नारी भी हूँ। और नारी ऐसी नहीं जो पुरुष द्वारा अपमानित, पद्दलित और भूलुण्ठित होकर भी लानत की जिन्दगी बसर करे। मैं अपना दायित्व समझती हूँ, अपने अधिकारों के लिए लड़ना जानती हूँ। पुरुष की दया पर जीना मैंने नहीं सीखा। मैं देखूँगी कि आप अपने मन का विकार खोकर सही मार्ग पर आते हैं। आप चरित्र-दौर्बल्य से स्वयं पीड़ित हैं प्रोफेसर, यह आपने नहीं समझा। कहते हैं, तुम्हारे चरित्र का दायित्व

मुझ पर है ? आपको गुरू मानकर मैंने जो सम्मान दिया उसे आप क्या समझे थे, प्रोफेसर साहब ? जिस पारिवारिक आत्मीयता का विशुद्ध प्रदर्शन हमारी ओर से हुआ, आप उसे क्या समझे थे प्रोफेसर ?" सुमन हँसी, खिलखिलाकर हँसी, "आखिर आपके मन का कलुष, पाप, पाखण्ड, संकोच, सब-कुछ आज यों प्रकट हुआ..."

"सुमन, इसी वक्त कमरे से बाहर निकल जाओ !" मेज़ पर जोर से हाथ पटकते हुए प्रोफेसर शशिनाथ चिल्लाए ।

"अच्छा; पर जो-कुछ मैंने कहा है उसे भूलियेगा नहीं गुरुदेव !" सुमन कमरे से बाहर चली गई। उसके चेहरे पर अब भी वही ओज था ।

और सुमन के बाहर जाते ही प्रोफेसर शशिनाथ का मस्तिष्क ज़ोर से झनझना उठा, जैसे किसी ने उन्माद में वीणा के सारे तार ज़ोर से झंकृत कर डाले हों। बाएँ हाथ को तकिया बना, उनका सिर मेज़ के हरे कपड़े पर आ टिका। बाँह के नीचे दबा कांच का 'पेपर-वेट' कुछ ठण्डा लग रहा था। पर क्रोध, उद्वेग और मानसिक पराजय से तपते हुए शरीर को उसकी कोई अनुभूति न हुई। सुमन ने जिस उच्छृङ्खलता, साहस और निर्भीकता के साथ प्रोफेसर का सामना किया था, वह सम्भव होकर भी शशिनाथ को असम्भव लग रहा था; घटकर भी अप्रत्याशित जान पड़ता था। विचारों के मन्थन में पड़कर वह इस निष्कर्ष तक न पहुँच सके कि भूल किसकी है—सुमन की पारिवारिक आत्मीयता को मैं गलत समझा या वह मेरी दया-उदारता को कुछ और समझी ? शशिनाथ का मस्तिष्क तेज़ी से घूमता रहा। व्याकुल-मन होकर सहसा उनका हाथ 'अलार्म' पर जा पड़ा। घंटी का स्वर सुनकर वह स्वयं चकित हुए। अगले ही क्षण रामभरोसे चपरासी आ उपस्थित हुआ। शशिनाथ ने आश्चर्य से गरदन ऊपर उठाई, मानो सोते से एकदम जाग गए हों। उनके स्वर में घबराहट थी, बोले – "एक गिलास ठण्डा पानी !"

"अच्छा सरकार !" रामभरोसे ने प्रोफेसर के बाल बिखरे हुए देखे। चेहरे पर हल्की लालिमा थी, जैसे ज्वर में होती है। होठों पर

पपड़ी-सी जम गई थी। गले में बँधी टाई क्षत-विक्षत थी। मेज़ भी अस्त-व्यस्त थी। प्रोफेसर स्वयं अन्यमनस्क-से दीख रहे थे। पानी लेने जब रामभरोसे बाहर निकला तो उसने सोचा—'शायद सरकार को ताप हो गया है।' तभी उसकी दृष्टि सुमन पर पडी। वह भी 'टिफिन-रूम' के पास खडी पानी पी रही थी। उसको अकेले पाकर रामभरोसे ने धीमे स्वर में पूछा—"आप, अभी सरकार के कमरे में गईं थीं बीबी! क्या सरकार को ताप आया है?"

"ताप?" सुमन रामभरोसे की कौतूहलपूर्ण मुद्रा देखकर तनिक मुस्कराई। पर अगले ही क्षण उसने अपने को सँभाला। गम्भीर वाणी में बोली—"हाँ, शायद काम-ज्वर है क्या पानी ले जा रहे हो?"

"हाँ, सरकार ने ठण्डा पानी माँगा है," रामभरोसे ने सुमन का व्यंग्य तनिक भी न समझा।

"नहीं, नहीं! ठण्डे पानी से उन्हें इस स्थिति में सरसाम हो जायगा।" सुमन ने चिन्ता प्रकट की और कृत्रिम सहानुभूति के स्वर में वह फिर बोली—"लो, यह चवन्नी लो। दरवाज़े के बाहर जो हलवाई है, वहाँ से पाव-भर दूध ला दो गरम-गरम। वह पिलाओ अपने प्रोफेसर को।" रामभरोसे सुमन का काश्मीरी डिज़ायन का पर्स देखकर भी उतना ही प्रभावित हुआ जितना कि उसके 'सत्परामर्श' से। वह दौड़कर बाहर की ओर चल दिया। सुमन मुस्कराई। पर वहाँ अकेली होने पर भी उसने रूमाल से मुँह ढक लिया। कहीं उसे हँसते कोई देख न ले। और फिर अपने षड्यंत्र का मज़ा लेने के लिए वह टहलती-टहलती प्रोफेसर के विभागीय कक्ष के पीछे वाली खिड़की के समीप आ खडी हुई। जैसे ही उसने अपने मनोभाव को छिपाने के लिए एक पुस्तक खोलकर देखनी शुरू की, प्रभा गंगोली और राजाराम उसके पास आ खड़े हुए। तब सुमन ने होठों पर अंगुली रखकर उन्हें संकेत से चुप खड़े होने का आदेश दिया। कानाफूसी के स्वर में सुमन ने उन्हें सारी घटना सुना दी। वह सतर्क थी, कहीं शशिनाथ जान न लें कि उनके कमरे की पिछली खिड़की से सटा हुआ कोई खड़ा भी है।

इतने में ही शशिनाथ का क्रोध-भरा स्वर सुनाई पड़ा—"यह पानी है ? बुद्धू ! किसने कहा था दूध लाने के लिए ?"

"सरकार ! मैंने आपके बिखरे बाल, तमतमाता चेहरा, मुड़ी-सिकुड़ी टाई और सूजी हुई लाल आँखें देखीं, तो समझा सरकार को ज्वर है। और ज्वर भी ऐसा भयंकर कि इसमें ठण्डा पानी पीने से सरकार, सरसाम हो जाता है।"

"खामोश उल्लू ! किसने तुमसे कहा कि मुझे ज्वर है ?"

और तब रामभरोसे का भय-विकम्पित स्वर सुनाई पड़ा—"सरकार मैंने खुद ही अनुमान लगाया था। पर टिफिन-रूम के पास वह बंगाली लड़की मिली थी, जौन अभी आपके पास आई रही। उसने भी कहा सरकार, कि प्रोफेसर को काम-ज्वर है। पानी पिलाने से सरसाम···"

"बस, बकवास बंद करो। समझ गया। यह दूध ले जाओ। किसी को भी पिला दो," कड़कड़ाते हुए स्वर में प्रोफेसर कह रहे थे। बाहर खड़े सुमन, प्रभा गंगोली और राजाराम अपनी हँसी न रोक सके। और इसलिए वे वहाँ से पुस्तकालय की ओर बढ़ गए। सुमन का तो हँसते-हँसते पेट फूटा जा रहा था। पुस्तकालय के निकट पहुँचते-पहुँचते तीनों की हँसी जब शान्त हुई तो प्रभा बोली—"ए, चैटर्जी ! कल हमारे यहाँ मिस्टर राजाराम की पार्टी है—यह फर्स्ट आये हैं, इसलिए। तुम पाँच बजे पहुँच जाना; ठीक।"

सुमन ने स्वीकार किया। तब राजाराम बोला—"प्रोफेसर शशिनाथ को भी अपनी गाड़ी में लेती आइए।" यह सुनकर प्रभा ने सुमन के गुलगुली कर दी, दाईं ओर की पसलियों में; और सुमन के 'झेंपू प्रोफेसर' कहते ही तीनों ठहाका मारकर हँस पड़े।

तीन

रमा उस रात सो नहीं सकी। पलंग के सहारे बैठे-बैठे पति के आने से पूर्व जितना ऊँघ सकी थी, बस उससे अधिक उस रात्रि वह आराम नहीं कर सकी। पलंग पर लेटने के साथ ही एक क्षण को जब उसने झपकी ली, तो किसी भय से वह चौंक पड़ी। आँखें खुल गईं और फिर वे लगी नहीं। हृदय-सन्ताप अभी कम न हुआ था। सुखमय गार्हस्थ्य के जो सुनहले सपने उसने बनाए थे आज उनका यथार्थ रूप उसकी कल्पना से भी अधिक तीखा, कड़वा और प्राणघातक था। अपना अस्तित्व उसे व्यर्थ, मूल्यहीन और भार जान पड़ने लगा। माँ-बुआ आदि के आश्वासनों को सुन-सुनकर आसमान के नील वक्ष पर उड़ने वाली सारस की जोड़ी के जिस आनन्दमय जीवन की कल्पना में वह रात-दिन आत्म-विभोर रही थी, आज उसका वह नीड़ आँधी के झंझा में आश्रयविहीन हो चुका था। 'घर में सास नहीं है; एक देवर है, बस। अकण्टक राज्य करेगी—' यह बुआ ने कहा था। सुनने में कितना मधुर लगा था रमा को! पर, वह बुआ अब यहाँ नहीं है। अपने हृदय की असह्य पीड़ा, वेदना को वह किसे बताए? इतने बड़े संसार में आज ऐसा कोई नहीं रमा के पास जो उसका दुःख सुन सके। थोड़े ही अन्तर से बिछे दूसरे पलंग पर सोने वाला उसका सर्वस्व, प्राण-धन, विधाता आज उसके लिए पत्थर बन गया है। पुरोहित ने विदा के समय कहा था—'बिटिया रानी, हिन्दू नारी का सब-कुछ पति है। वही उसका भगवान् है, देवेश है। उसी की सेवा से नारी इस लोक में सुखी रहती है, परलोक में मोक्ष पाती है। पति की सेवा में ही हिन्दू नारी को चारों पदार्थ प्राप्त होते हैं बिटिया!...' और उसके भगवान् आज मूक बन गए हैं। किसी और भक्त की साधना, उपासना, भक्ति पर वह प्रसन्न-मुग्ध हो चुके हैं, उसे वरदान दे चुके हैं और आत्मदान भी... सोचते-सोचते रमा के धैर्य का बाँध करुणा के अविरल प्रवाह से टूट गया। अश्रु-प्लावित नेत्र उस रात्रि के अंधकार में अतीत का प्रकाश देखने

लगे। बाल्यावस्था में जब पिता की मृत्यु हो गई तो उसकी प्रौढ़ा माँ ने संसार की सहस्र-सहस्र विषमताओं को हँस-हँसकर झेला। पति की दो निशानियों—रमा और वैभव को उसने पुतलियों की तरह सहेजा। रूखे-सूखे टुकड़े खाकर उसने रमा को हिन्दी-मिडिल पास कराया और तब उसके विवाह की चिन्ता में वह अहर्निश घुलने लगी थी। समाज के सौ तिरस्कार, अपमान उसने सहन किए, क्योंकि वह निर्धन थी और थी विधवा। फिर भी युवती लड़की का विवाह उसका दायित्व था। इस सामाजिक कर्तव्य का भार उसकी छाती फाड़े डाल रहा था। पति जो थोड़ी पूँजी छोड़ गए थे, उसने उसे प्राणों की तरह सँभालकर रखा। हारी-थकी, भूखी-प्यासी फिर वह महीनों वर की खोज में मारी-मारी फिरी। मोह-ममता का बल-संबल पाकर वह इस कड़ी तपस्या में लीन रही। तब एक दिन गौरी प्रसन्न हुईं और रमा को उसका शिव—शशिनाथ मिला। स्वभाव से जो रमा के लिए शत-प्रतिशत शिव सिद्ध हुआ—अनासक्त, वीतरागी, निर्मोही, कठोर, मूक और जैसे गरल से बुझा हुआ। रमा के नयनों का खारा पानी कर्णफूलों को भिगोता हुआ तकिये में विलीन हो रहा था। अंधकार में भी अब रमा को कमरे की दीवारें धुँधली नजर आने लगी थीं। अतीत के चित्र उसके मानस पर मानो साकार हो उठे थे। प्रथम परिचय में ही जिस पति ने अंग्रेजी के प्रति उसकी अनभिज्ञता का पता लगाकर भौंहें सिकोड़ ली थीं, यदि आज वह मौन होकर पड़ गया है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पर रमा सोच रही थी माँ का वह आश्वासन—'किसी प्रकार का दुःख न पाना। कोई कष्ट हो तो लिख भेजना। कुछ दिन यहाँ रहना, कुछ दिन वहाँ रहना, और फिर धीरे-धीरे दिल बहल जायगा।' सोचते-सोचते रमा की हिचकियाँ बँध गईं। क्या जीवन के लम्बे-लम्बे दिन, मास और वर्ष इसी प्रकार व्यतीत होंगे? क्या उसके शिव किसी तपस्या से कभी प्रसन्न न होंगे? उसके मन में एक क्षण आया कि सोते हुए शशिनाथ को झंझोड़ दे; उनसे पूछे, 'साफ-साफ बता दो, यह सुमन कौन है? उसका तुम्हारा क्या नाता है? क्या सम्बन्ध है? अपनी विवाहिता को धोखा देना ही क्या पुरुष का कर्तव्य रह गया है?' पर रमा

पति की निद्रा में विघ्न डालने का साहस न कर सकी। अपनी असहाय अवस्था पर अश्रु बहाने के अतिरिक्त उससे कुछ न बन पड़ा। मैं घुल-घुलकर इस जीवन का अन्त कर दूँगी, पर तुमसे कुछ न कहूँगी, कुछ न माँगूँगी, तुम्हारे मार्ग में कभी बाधा न बनूँगी। तुम सुखी रहो, तुम्हारी आत्मा प्रसन्न रहे, सन्तुष्ट रहे, इसी में मुझे भी सन्तोष होगा। मैं दासी बनकर आई हूँ; जब तक बन पड़ेगा, तुम्हारी सेवा करूँगी। जिस दिन समझूँगी, मेरी उपस्थिति तुम्हारे पथ में शूल बन रही है उस दिन मैं तुम्हारे लिए मर चुकी होऊँगी। सदा के लिए तुम मुझसे मुक्ति पा जाओगे। पर मेरी एक प्रार्थना है। कभी हृदय से चाहे मुझे याद न करो, पर इन युगल चरणों की सेवा का अधिकार मुझसे न छीनना...' यकायक रमा ने हाथ जोड़े और जैसे अन्तरिक्ष को सम्बोधित करने लगी—'हे ईश्वर, यदि मैं इन्हें प्रसन्न नहीं कर सकती, यदि दूर भविष्य में भी मैं इनके होंठों पर मुस्कराहट नहीं देख सकती, तो मेरी यह जीवन-लीला आज ही समाप्त हो जाय—आज ही समाप्त हो जाय...' रमा अब फूट-फूटकर रोने लगी। काँपते पैरों से वह कमरे से उठकर नीचे की मंज़िल में बैठक में बिछी चौकियों पर आ लेटी। रोते-रोते नेत्र दर्द करने लगे। पर उसका हृदय यह कैसे भूल सकता था कि पति आज सुमन के साथ सिनेमा देखकर लौटे हैं!

रात्रि-जागरण के कारण रमा के नेत्र लाल हो रहे थे और उनकी सूजन देखकर रवि को यह समझते देर न लगी कि भाभी रात-भर शायद रोती ही रही है। नीचे बैठक से जब उसने रमा को बाहर आते देखा, तो वह यह भी समझ गया कि भाभी अपने शयन-कक्ष में भी नहीं गईं; भैया से अलग सोई हैं। उसके मन में अनेकानेक शंकाओं ने घर करना शुरू कर दिया। रवि के लिए सबका एक ही अर्थ था, एक ही संकेत और एक ही निष्कर्ष—भैया ने अन्याय किया है। मेरा सिनेमा जाने का प्रस्ताव ठुकरा दिया और सुमन के साथ रात को देर तक रहने के पश्चात् ही वह घर आये होंगे। और फिर भाभी का अपमान! रवि ने तब भाभी से कुछ भी पूछना उचित न समझा। वह जानता था कि भाभी उससे कुछ भी गुप्त न रख सकेंगी, इसलिए दोपहर जब खाना खाने

आयगा, तभी पूछेगा। पर, इतना जरूर हुआ कि घृणा-व्यञ्जित मुद्रा से उसने दो-तीन बार अग्रज की ओर देखा। देखा, उनका चेहरा म्लान है, सूर्यास्त के बाद कुम्हलाये हुए कमल की तरह आज उन पर कई सिकुड़नें स्पष्ट उभर आई हैं; चित्त में अशान्ति का भास शारीरिक शिथिलता से हो रहा है। रवि ने अवसर पाकर भी भैया से दो बातें करने तक की रुचि प्रकट न की। और शशिनाथ भी जैसे उचाट मन से अपने नित्य-कर्म में लगे हुए थे। विश्वविद्यालय जाने का समय ज्यों-ज्यों निकट आ रहा था, त्यों-त्यों उनका चिड़चिड़ापन बढ़ता जा रहा था। दोपहर को भोजनोपरान्त जब रवि ने भाभी से रात की किसी घटना को जानने की जिज्ञासा प्रकट की तो रमा ने तीन सिनेमा-टिकटों के अर्ध भाग रवि की ओर बढ़ा दिए। भीगे कण्ठ से वह बोली—"कल के 'सूट' पर जब लोहा किया तो कोट की भीतरी जेब से निकले थे।" बस रमा कुछ और न बोल सकी। रवि ने भी जैसे अपने सारे प्रश्नों का उत्तर पा लिया था। उसने देखा, भाभी की आँखों में मोती-से आँसू छलक आये हैं। रवि की सहानुभूति पाकर वह फिर 'परम कृपण का सोना बनकर' लोचनों के कोनों में ही न रह सके। और तब रमा रवि के पास से उठकर अपने कक्ष में आ लेटी—उदास और विस्फारित नेत्र।

चार

सारा प्रबन्ध पूर्ण होने के बाद प्रभा गंगोली हाथ-मुँह धोने के लिए स्नानागार में चली गई, तब आई सुमन। नीले गहन आकाश के रंग की बनारसी साड़ी, जिसका चौड़ा पल्ला कमर पर लहरा रहा था, सुमन के गोरे इकहरे बदन पर बहुत फब रही थी। पैरों में लगा गहरा गुलाबी अलता, एक-एक पट्टी वाली आसमानी रंग की सैण्डल में से बरबस अपनी ओर आँखें खींच रहा था। और सुमन के चौड़े भाल
 पर उस दिन रोली की बड़ी गोल बिंदी ने उसके सौन्दर्य में अत्यधिक

संवर्द्धन किया था। होठों पर उसने लिपस्टिक नहीं लगाई थी, पर दंदासे से उसके रद्-पुट मोती-सी आब ले रहे थे। सुरमे की बारीक सलाई वह भूरी रोमावली वाली कनपटियों तक ले आई थी। नखों पर उसने नेल-पालिश नहीं लगा रखी थी, पर दोनों हाथों की कनिष्ठिका और कनीनिका में मत्स्य आकार की बहुमूल्य मुद्रिकाएं उसकी पतली, कमल-नाल-सी अंगुलियों की शोभा बढ़ा रही थी। फिरोजी रंग के रेशमी जम्पर पर पान के पत्ते वाला लाकेट झूल रहा था। सुमन सीधी स्नानागार की ओर बढ़ गई। बाएँ हाथ की अंगुलियों से स्नानागार का द्वार उसने खटखटाया और चपलता से बोली, "क्यों गंगोली, मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त? जल्दी निकल, नहीं मैंने द्वार खोला।" वह मुस्करा रही थी।

प्रभा उस अवसर का ध्यान करके हाथ-मुँह धोने के बजाय, स्नान करने लगी थी। सुमन कहीं अपनी चंचलतावश द्वार खोल ही न दे, इसलिए उसने प्रार्थना की—"नहीं, नही। मैं अभी बाहर आती हूं। तुम तनिक हॉल में जाओ। देखो मेहमान लोग आते होगे।" सुमन तब द्वार पर लटका हुआ प्रभा का पेटीकोट घसीटकर पीछे हट गई। "कोई, बात नहीं," विवशता से प्रभा बोली, "अभी आकर सब बदला ले लूँगी।"

सुमन जब हॉल में आई तो देखा कि राजाराम और उसके दो-तीन साथी सोफे पर बैठे गप-शप कर रहे हैं। राजाराम ने सुमन की ओर देखा और सुमन ने राजाराम की ओर। निर्निमेष दोनों एक-दूसरे को देखते रह गए। आसमानी 'सर्ज' के नये सूट और कत्थई छींट की रेशमी टाई बाँधे राजाराम का सुडौल शरीर भी अत्यन्त रूपवान लग रहा था। सुमन जब सोफे के समीप पहुँची तो राजाराम आदि ने उसका अभिवादन किया। तब नतशीश सुमन भी एक संकोच से घिर गई। इससे पूर्व कि कोई सहपाठी मित्र उसके इस मनोभाव पर कोई कटाक्ष करता, सुमन ने अपने मधुर भाषण से वातावरण को मिसरी से भी मीठा बना दिया। उसका पहला लक्ष्य बना राजाराम। सुमन ने एक बार उसे सिर से पैर तक देखा और बोली—"आपका व्यक्तित्व आज देखते ही

बनता है। जान पड़ता है किसी कॉलेज के प्रोफेसर हैं।" सुमन की मुस्कराहट अभी समाप्त न हुई थी। मिस शर्मा बीच में ही बोल पड़ी—"और वह भी अंग्रेजी के।" हॉल में जोर की हँसी फैल गई। स्पष्टतः यह संकेत प्रोफेसर शशिनाथ की ओर था।

हरिप्रसन्न तब कहने लगा—"आपने पहचानने में भूल की मिस शर्मा। इनकी यह जुल्फें तो देखिए। ये काम-शास्त्र के प्रोफेसर है। मिस चैटर्जी, अभी-अभी आप प्रवचन कर रहे थे—सांसारिक सुख, भोग, ऐश्वर्य सब क्षणिक हैं; मैं मानता हूँ, पर मेरा विश्वास प्रवृत्ति-मार्ग में है।"

राजाराम सिगरेट सुलगा रहा था। सुमन ने एक मधुर मुस्कान के साथ उसकी ओर देखा और कहने लगी—"जी हाँ, इसीलिए तो यह चाय-पान का आयोजन है। खाओ-पियो, मौज उड़ाओ।" और फिर पीछे की ओर देखते हुए वह बड़बडाई—"ये गंगोली भी अजीब लड़की है। अभी तक तैयार नहीं हो सकी।"

"चलिए, आती ही होगी," हरिप्रसन्न ने सुमन की ओर लक्ष्य करते हुए कहा, "आप निवृत्ति को सत्य मानें और प्रवृत्ति में विश्वास करें, यह भी एक विचित्र बात है मिस्टर राजाराम!"

राजाराम ने सोफे पर तनकर बैठने की चेष्टा करते हुए सिगरेट का एक कश खींचा और बोला—"बात विचित्र नहीं है। हम सब यह जानते हैं कि पंच भूत शरीर का एक दिन विनाश अवश्य होना है। लेकिन यह जान लेने पर हमारे जीवन की सभी क्रियाएँ शून्य नहीं हो जातीं। इस सिगरेट का आनन्द क्षणिक है, इसलिए मैं इसका भोग न करूँ, यह तो कोई बात नहीं हुई। क्षणिक आनन्द का क्रमिक पराभव भी प्रकृति का नियम है। और इस नियम को भली प्रकार समझ लेने पर मैं किसी वस्तु के अभाव में भी दुख अनुभव नहीं करता। दुख का मूल कारण ममत्व है—ममत्व यानी अधिकार। हम जिन वस्तुओं पर अपना स्वत्व मानते हैं उनके प्राप्त न होने पर ही हम दुखी होते हैं। सांसारिक वस्तुओं को भोगने में कोई दुख नहीं, पर उन पर स्वत्व मान लेना ही दुख का मूल कारण है।"

"मेरी समझ में आपकी यह फिलासफी बिलकुल नहीं आ रही। आप तो कहीं उलझ गए हैं, मिस्टर राजाराम!" सुमन ने गरदन को तनिक झटका देते हुए सोफे की पीठ पर रखा अपना हाथ उठा लिया और वह रेडियो खोलने बढ़ गई। वादविवाद समाप्त हुआ। गंगोली भी तब आ गई और कमरा मधुर संगीत-लहरी से गूँज उठा—"मेरे पिया मेरे घट में बसत हैं, ना कहिं आति न जाती···" ध्वनि का बटन ठीक करते-करते सुमन ने राजाराम की ओर देखा और उसके नेत्र झुक गए। मन-ही-मन वह भी गुनगुनाने लगी—'मैं तोरे रँग राती, साँवर, मैं तोरे रंग राती!'

प्रभा ने तब सबको चाय की मेज़ पर निमन्त्रित किया। विशाल अण्डाकार मेज़ पर रखी श्वेत केतलियों से फैलने वाली चाय की भीनी गन्ध सारे हॉल का वातावरण मादक बना चुकी थी। सुमन की उपस्थिति से राजाराम को तब मानो हल्का सा नशा होने लगा था। सुमन और प्रभा का आग्रह था कि वह उन दोनों के बीच वाली कुरसी पर बैठे। पर राजाराम ने यह आग्रह स्वीकार नहीं किया। वह सुमन के सामने वाली कुरसी पर बैठा। सुमन का हृदय तब रेडियो से प्रसारित होने वाली प्रत्येक पंक्ति, प्रत्येक शब्द और ध्वनि के साथ नृत्य कर रहा था। रेडियो की ध्वनि मानो मयूर की पुकार थी—'ओ अभिसारिका, सँभल, मेघ काले आ रहे हैं!' और उसे लगा जैसे स्याम घन में वह बिजली बनकर समा जायगी। तभी उसने सुना—'संग की सखियाँ मधुरा पी-पी, होय रहीं मधुमाती। मैं मधु पीयो प्रेम भटी का मस्त रहूँ दिन-राती।' एक शीतल निःश्वास उसके मुँह से निकल गया। तब प्याले में चाय उँडेलती हुई प्रभा का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ। सुमन राजाराम की ओर टकटकी लगाए थी। "हुँ, ये बात है!" धीरे से प्रभा ने कह दिया।

सुमन की भाव-भंगिमा तब टूटी। "क्या, चीनी? ढाई चम्मच," सँभलते हुए उसने कहा। प्रभा हँस पड़ी। "किस नशे में डूब रही हो। तुम्हें मोटी चीनी पसन्द है। वह रखा तुम्हारा 'पॉट' उसमें से ले लो।"

सुमन ने वही 'पॉट' उठाया और उसमें से चीनी डाल ली। उसकी इच्छा तेज़ मीठे की चाय पीने की थी। अतः उसने चार चम्मच डाले। प्रभा उसकी प्रत्येक चेष्टा-प्रचेष्टा को अब बड़े ध्यान से देख रही थी। सुमन ने जब अपने प्याले में चौथा चम्मच डाला तो प्रभा ने अपनी हँसी रोकने के लिए होठ दबाए। और दूसरे ही क्षण सुमन ने जब एक घूँट पिया तो मुँह बनाकर उबकियाँ लेते हुए वह उठ खड़ी हुई। प्रभा जोर से हँस पड़ी। फिर बोली—"सुमन बहन को चीनी तेज़ पसन्द है।"

प्रभा की शरारत सब पर प्रकट हो चुकी थी। सुमन रुआसी और खिसियानी-सी होकर बोली—"मेहमानों की यही ख़ातिर करती हो? चीनी नहीं थी घर में, तो गुड़ मँगा दिया होता, पर यह ज़हर तो न देतीं।"

प्रभा और सभी साथी जोर से हँस पड़े।

"कभी मेरा भी दाव लगेगा," कहती हुई सुमन खीझ मिटाने के लिए दूसरा 'कप' बनाने लगी। मीरा का पद समाप्त हो गया था। और अन्तिम ट्यून बज रही थी। सुमन गुनगुनाने लगी। जब ट्यून समाप्त हुई और अगला प्रोग्राम घोषित किया जा रहा था तब सुमन की गुनगुनाहट सबको स्पष्ट सुन पड़ी। प्रभा ने फिर उत्साह से कहा कि चाय के बाद सुमन का गाना भी होगा। सुमन मानो एक संकोच से धरती में गड़ गई और उधर सब साथियों में एक उत्साह उमड़ पड़ा। राजाराम ने कई संगीत-सम्मेलनों और रेडियो पर सुमन का गाना सुना था। अपने सुरीले, मनमोहक और मिसरी-से स्वर के लिए वह दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। पर आज इतने समीप से वह उसके कर्ण-प्रिय संगीत का रस-पान कर सकेगा, यह कितना सुखद था!

पर दूसरे ही क्षण सुमन ने आग्रह किया—"पहले मिस्टर राजाराम स्वयं वायलिन बजायँगे।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं," राजाराम ने सुमन का यह आग्रह स्वीकार करके अपना अहोभाग्य माना।

 "तब मुझे भी स्वीकार है।" सुमन ने नीची पलकों से सामने की

कुरसी पर आँखें गड़ा दीं। उसके होठों पर मन्द हास खेल रहा था।

रेडियो ने तब पंजाबी में समाचार सुनाने शुरू किए, अतः स्विच बन्द कर दिया गया। रेडियो का स्वर एकदम बन्द होते ही सुमन का हृदय मानो ज़ोर से गा उठा—'नेह का तेल, प्राण का दिवरा और सुरत की बाती!' तत्काल वह फिर प्रकट में बोली—"मीरा का यह पद कितना सुन्दर था! उसकी प्रेम की अनुभूति कितनी गहन-गम्भीर थी," और कुछ रुककर वह आप-ही-आप बोली—'मीरा के प्रभु गहन गम्भीरा हृदय रहो जी धीरा। आधी रात प्रभु दरसन दीजो जमुनाजी के तीरा।' हृदय के जिस अन्तरतम भाग से यह नैसर्गिक प्रेम निःसृत हो रहा था उसे राजाराम समझे बिना न रह सका। उसे लग रहा था कि जैसे सुमन अपने-आपको खो बैठी है।

हरिप्रसन्न बोला—"तो आप, मिस चैटर्जी, मीरा का यही पद हमें सुनाइये। रेडियो पर भी तो आप भजन गाने में बहुत ख्याति पा चुकी हैं।"

"हाँ, हाँ, यही!" सबने हरिप्रसन्न का एक स्वर से समर्थन किया।

"नहीं! यह तो आप अभी सुन ही चुके हैं," सम्मान पाकर सुमन का स्वर कुछ अधिक विनम्र हो गया था, "मैं आपको सूर का एक पद सुनाऊँगी।"

"लेकिन, पहले वायलिन तो सुनाइए, मिस्टर राजाराम," प्रभा बोली।

और राजाराम ने जब स्वर साधने शुरू किये तो हॉल में नीरवता छा गई थी। जैसे-जैसे वह स्वर चढ़ा-उतार रहा था, सुमन मानो एक नशे में वैसे ही डूबती-उतरती बहने लगी। राजाराम ने एक फिल्मी गीत की लय निकाली थी—"रैन गई अब हुआ सवेरा, याद तेरी ने घेरा है!" गरदन झुकने से राजाराम के ललाट की सिकुड़नें उभर आई थीं। नाड़ियाँ फूल-सी गई थीं। और जब उसने समाप्त किया उसके चेहरे पर हल्के-हल्के स्वेद-कण झलक आये थे। सबने उसको बधाई दी। पर सुमन की गरदन झुक गई है और वह मौन है, यह

केवल राजाराम ने ही देखा। उसकी कलामयी तन्मयता का यदि किसी पर जादू चढ़ा था, तो वह थी सुमन।

चाय का एक दौर और चला। फिर प्रभा सुमन की बाँह खींचकर पियानो पर ले आई। राजाराम के कानों में कोई फिर बोल उठा—'मैं आपको सूर का एक पद सुनाऊँगी।' और सबके साथ पियानो के समीप जाते-जाते राजाराम कह रहा था—'सूर ने तो सौन्दर्य की अद्भुत वर्षा की है। सीमा में उन्होंने निस्सीम की झलक दिखाई है। विविधता में एकता के दर्शन कराये हैं।...'' और जब तक सुमन ने पियानो पर अंगुलियाँ रखीं, राजाराम बोला—''आत्मा का रहस्य ही सरस काव्य है। और महाकवि सूर ने इस रस को वर्षा से जन-जन को तृप्त कर दिया है।'' सुमन को कण्ठ साफ करते देख राजाराम चुप हो गया।

सुमन ने एक बार सभी साथियों पर आँख दौड़ाने के बाद धीरे-धीरे स्वर चढ़ाया—

''चितवन रोकैं हूँ न रही।....''

''वाह! वाह! खूब!'' एक-साथ कई स्वर सुन पड़े। ज्यों-ज्यों सुमन एक पंक्ति के बाद दूसरी गाती गई, राजाराम का हृदय डूबता गया; हृदय मानो स्वयं बोल पड़ा है। हरिप्रसन्न ने उसके कन्धे पर हाथ रख लिया था। राजाराम कब उसे हटाकर शनैः-शनैः पियानो के पीछे, सुमन के बिलकुल सामने आ खड़ा हुआ, यह किसी को पता तक न चला। सुमन का मिसरी-सा स्वर सुनकर सब जैसे चित्रलिखित-से खड़े रह गए थे। राजाराम का रोम-रोम झनझना उठा था। उसका हृदय सुमन के एक-एक स्वर से द्रवीभूत हुआ जा रहा था। वह गा रही थी—

'स्याम सुन्दर-सिन्धु-सनमुख सरित उमंगि बही।

प्रेम-सलिल-प्रवाह भँवरनि मिति न कबहुँ लही॥ चितवन रोकैं...

राजाराम ने देखा—गाते हुए सुमन की पतली सुराई-सी गरदन की नाड़ियाँ फूल गई हैं और उरोजों के बीच झूलता हुआ वह जगमग 'लाकेट' हरेक स्वर के साथ जैसे उठ-बैठ रहा है। राजाराम के भीतर कोई बोल उठा—'इस सौन्दर्य पर हृदय न्योछावर किया जाय तो भी थोड़ा है।' उसे लगा—यह स्वर सूरदास के नहीं, स्वयं सुमन के उर-

अन्तर से ही उद्भूत हो रहे हैं। वह गा रही थी—

लोभ-लहर कटाच्छ घूँघट-पट-कगार ढही।
मिली 'सूर' सुभाव स्यामहिं फेरिहि न चली॥
चितवनि रोकैं हूँ न रही॥

अन्तिम बोल के साथ ही सुमन ने एक बार फिर राजाराम की आँखों में झाँका और समाप्त करते-करते उसके अरुण अधरों पर मन्द मुस्कान की एक हल्की-सी रेखा खेल गई।

"बहुत खूब मिस चैटर्जी," हरिप्रसन्न बोला।

"मैंने बहुत बार तुम्हारा गाना सुना है, पर आज तो तुमने कमाल ही कर दिया।" यह मिस शर्मा ने कहा। और राजाराम शिथिल पग पियानो के पास से हटते हुए कहने लगा—"सरस्वती ने आपकी वाणी में अमृत घोल दिया है—इतना मीठा स्वर, इतना मोहक; मेरा तो हृदय ही आपने बरबस खींच लिया है मिस चैटर्जी!"

प्रभा के अधरों पर मुस्कान थी। वह बोली—"आज की पार्टी, हर मायने में सफल रही; क्यों मिस्टर राजाराम?" और उसने सुमन के दोनों ओर गुलगुली मचा दी। वह हँसकर उठ खडी हुई। और भी सब हँस पड़े। राजाराम ने मुस्कराहट के साथ सुमन को देखा। फिर दोनों की निगाहें स्वतः नीची हो गईं।

सब साथी लौट चुके थे। प्रभा ने सुमन और राजाराम को ऐसे ही गप-शप में रोक लिया था। थोड़ी देर बाद राजाराम जब जाने लगा तो सुमन ने भी प्रभा से विदा ली, बोली "इन्हें भी गाड़ी में लेती जाऊँगी; होस्टल पर उतर जायँगे।"

"अच्छा, खुश रहो—" राजाराम जब द्वार तक पहुँच चुका था, तो प्रभा सुमन स कह रही थी—"परमात्मा दोनो को खुश रखे।"

सुमन ने प्रभा के दाएँ बाजू में चुटकी भर ली। और दोनों हँस पड़ीं।

संकोच से घिरा राजाराम सुमन की बग्घी में आ बैठा। राका-शशि की शीतल चांदनी से कार्तिक मास की वह रात्रि भीग चली थी। सुमन ने कोचवान से कहा—"बेला रोड होकर होस्टल···!"

"नहीं, नहीं ! सुमन मुझे देर हो जायगी। साढ़े नौ बजे के बाद होस्टल पहुँचने पर जवाब-तलबी हो जायगी। सीधे रास्ते चलो।" राजाराम ने स्वर में विवशता भरते हुए कहा।

"अभी बहुत समय है। आपसे कुछ आवश्यक बातें करनी हैं।" अपनी कलाई घड़ी पर आँखें दौड़ाते हुए सुमन बोली—"आपके छात्रावास का द्वार अभी घण्टे-भर बाद बन्द होगा।"

"मैं अपना चैस्टर भी नहीं पहने हूँ, अब ठंड बढ़ रही है। फिर आप नदी-किनारे चलने को कह रही हैं!"

"आप बिना चैस्टर के ही सुन्दर लग रहे हैं...और फिर प्रभा के यहाँ आप इतना नशा कर आए हैं कि सरदी कुछ असर कर नहीं सकेगी।"

राजाराम निरुत्तर हो गया।

सुमन बोली—"आप सचमुच वायलिन बहुत बढ़िया बजाते हैं। मैं सोचने लगी थी, शायद मनमोहन की मनोहारी मुरली-टेर भी राधा को इसी प्रकार विजड़ित कर देती होगी..." सुमन की वाणी और दृष्टि से जैसे आत्मीयता का पावन निर्झर प्रवाहित हो चला था।

राजाराम ने इसका उत्तर सुमन के संगीत की श्लाघा से दिया—"आपका संगीत सुनकर तो मैं उस मृग की तरह उन्मत्त हो गया था, जो बीन का मधुर स्वर सुनकर प्राणों का मोह त्याग आत्मोत्सर्ग के लिए तैयार हो जाता है। वास्तव में आपने सरस्वती का वरदान पाया है..."

अब सुमन ने विषय बदला। राजाराम को अपनी ओर आकर्षित करते हुए वह बोली—'मैं जानती हूँ, आपको कैमरे का बड़ा शौक है..."

"कहिए आपको कब 'शूट' करूँ?" तत्परता से राजाराम ने कहा और हँस पड़ा।

सुमन बोली—"आपको एक ही पत्थर से दो चिड़ियाँ मारनी होंगी।"

 "ये बात?" अचम्भे से राजाराम बोला, "आखिर साफ-साफ

कहो न, क्या बात है।"

"समय आने पर मैं सब बता दूँगी। लेकिन एक शर्त है, यह बात छठे कान में न जा पाए !"

राजाराम ने सुमन के फैले हाथ पर हाथ मारा—"पक्की रही !" और उस क्षण का वह स्पर्श उसे बड़ा विचित्र-सा लगा। रोम-रोम में जैसे बिजली दौड़ गई। हृदय की धड़कन तेज़ हो गई।

अगले ही क्षण सुमन ने राजाराम को अपनी ओर खींचा और स्वयं कुछ उसकी ओर बढ़कर वह उसके कान में कुछ कहने लगी। राजाराम ने सब-कुछ ध्यान से सुना। सुमन के शरीर से 'सैण्ट' की जो सुगन्ध आ रही थी, वह राजाराम की नस-नस में समा गई। होठों की जिस फुसफुसाहट का स्पर्श उसने अनुभव किया उससे उसकी रोमावली खड़ी हो गई। यह कैसा रोमांच हो गया ! वह अपने को एक निमिष के लिए भूल गया—भूल गया कि गाड़ी चली जा रही है; भूल गया कि उसे समय से छात्रावास में पहुँचना है; भूल गया कि वह अभी एक चाय-पार्टी से आ रहा है। सुमन इस बेला उसके मन में समा गई थी। अनन्त संसार में इस सुखद, शीतल चाँदनी में दो ही प्राणी हैं—सुमन और वह स्वयं।

बात-की-बात में गाड़ी छात्रावास के सामने आकर रुक गई। राजा-राम का नशा तब हिरन हुआ। वह उतरने लगा तो सुमन ने स्मरण कराया—"तो कल शिकार खेलने के लिए तैयार रहिए।"

राजाराम ने कहा—"ओके !" उसका उल्लसित मन नाच उठा था। मन में कोई बोल उठा—'शिकार तो आज खेल चुके !' और छात्रा-वास के सिंह-द्वार में प्रवेश करते-करते वह गुनगुना उठा—'सुन्दर नारि सुकुमार, नयन कर चार; समा गई मन में, समा गई मन में !'

पाँच

रवि को जैसे काठ मार गया। रमा ने उसे अकेला छोड़कर उसके सामने एक बड़ा प्रश्न-चिह्न खड़ा कर दिया था। जिसकी विशालता से रवि भयभीत हो गया। भाभी की सुशीलता, सौहार्द्र और स्नेह से उसका मन-प्राण सदैव भरा रहा है। भाभी उसके लिए पौराणिक कथाओं की आदर्श हिन्दू महिला से कम न थी—सती, साध्वी, पतिव्रता। उसके मृगछौने-जैसे नयनों में आँसुओं की बाढ़ देखकर रवि का हृदय सन्ताप से जल उठा। जब से रमा इस घर में आई, उसके हृत्तल में छिपे ममत्व के मान-सर से रवि के लिए स्नेहाञ्जलियाँ सदैव—सर्वदा उलीची जाती रहीं। उसे लगा जैसे माँ का प्यार बरसाने वाले उस निर्झर का अविरल प्रवाह आज अवरुद्ध हो गया है; भयंकर अग्नि-ज्वालाओं से प्रज्वलित किसी ज्वालामुखी ने अपने तप्त आँचल में उसे आज समेट लिया है। हतप्रभ-सा रवि खड़ा-का-खड़ा रह गया—निर्जीव, प्राण-हीन-सा। पत्थर-सी आँखें सिनेमा-टिकटों के अर्धभागों पर ठहर गई थीं—'सिरीन टाकीज़, थर्ड शो, अपर बाक्स,' उसने पढ़ा और जो-कुछ पढ़ा उसने सारे मस्तिष्क को ढक लिया। अक्षर बड़े-बड़े होते गए। फिर आँखों में धुन्ध-सा छा गया। भाभी के हृदय पर जो-कुछ बीत रही है, उसकी कल्पना से रवि का मन भी द्रवित हो उठा। विवाह के बाद जीवन-धन का प्रेम, विश्वास प्राप्त न करना नारी के जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। घोर नरक की पीड़ा से भी अधिक दुःखदायी, कष्ट-कारक!···रवि के मस्तिष्क को जैसे किसी ने जोर से घुमा दिया था। सब-कुछ घूमने लगा। वह स्वयं स्थिर है, पर लगता है जैसे घूम रहा है; उसके चारों ओर जो-कुछ भी है, सब वृत्ताकार होकर गतिमान है। और इस गतिशील वृत्त का केन्द्र-विन्दु है रमा। एक रमा सहस्र-सहस्र बन गई। रवि उससे घिर गया। लड़खड़ाते पैरों से वह कमरे में आ लेटा। और तब फिर एक बार उसने उन टिकटों पर दृष्टि डाली। 'तीसरा कौन था?' एक प्रश्न उसके मन में उठा। 'भैया, सुमन

और···तीसरा कौन ? भैया और सुमन···' बस, आगे गति नहीं है। रवि का मन, विचार, वाणी सुमन पर आकर ठहर गए। उस दिन भाभी ने कहा था, "हर वक्त सुमन की रट लगी रहती है···" हुँ! भैया और सुमन···आखिर रमा में क्या है, जो सुमन में नहीं है ? सुमन में क्या है, जो रमा में नहीं है ? सुमन बंगाली परिवार की सुकुमारी है। भैया को बंगाली फैशन पसन्द है। रमा का वह चित्र रवि की आँखों में घूम गया जिसमें भाभी ने बंगला ढंग की साड़ी पहनी थी। और बंगला की पहली पोथी भी भैया लाए थे। लेकिन इस सबका अर्थ क्या ? वैवाहिक जीवन में कोई-न-कोई अभाव ही पति-पत्नी को मर्यादाएँ, मान्यताएँ और रूढ़ियाँ तोड़कर पथ से विचलित करता है, मैं मानता हूँ। पर चरित्र में नैतिकता का भी तो कोई स्थान है। नैतिकता की असिधार-सी पगडंडी से गिरकर मनुष्य फिर मनुष्य कहाँ रह जाता है ? और जो-कुछ जीवन में अभाव है, क्या उसकी पूर्ति नैतिक पतन के बिना सम्भव नहीं है ? रवि की कल्पना में सुमन का चित्र उभरने लगा। युवती, कुँवारी, शिक्षिता और सुसंस्कृत····नहीं, नहीं, वह सुसंस्कृत नहीं हो सकती। जिस संस्कृति का पाठ प्राचीन परिपाटी वाले परिवारों की कन्याएँ पढ़ती हैं, वह विश्वविद्यालय की एक छात्रा के पास फटक भी नहीं सकता। उसकी भाभी के-से संस्कार सुमन में नहीं हो सकते तब ?···इस सम्बन्ध के बीच क्या है—आकर्षण, चकाचौंध, प्रेम या वासना ? रवि को लगा जैसे वासना ही इस संकट का मूल कारण है—अतृप्त वासना ही अभावों को ढूँढ़ती है; यही वह मृग-तृष्णा है जो कभी शान्त नहीं हो सकती। रवि के सामने सारे नर-नारी, सारा संसार जैसे वासना की भट्टी में जल रहा है; शशिनाथ भी कर्तव्य को पीछे रोता-चीखता छोड़कर इस भट्टी में कूद पड़े हैं। रात्रि को देर तक बाहर रहना और फिर अर्ध-रात्रि तक घर आकर भी भाभी से न बोलना ! जीवन-सहचरी की यह उपेक्षा ? भाभी की सहिष्णुता को ऐसी चुनौती ? क्या भैया दाम्पत्य-जीवन के कर्तव्यों को वासना के होम में समिधा बना चुके हैं ? एक जीवन का दूसरे के साथ यह कैसा खिलवाड़ है ? क्या उन्हें घर की रानी को सुखी गार्हस्थ्य के सिंहासन पर आसीन देखना

नहीं सुहाता ? भाभी, जो मूक है, अपने देवता के सामने जिसकी सरस्वती कुन्द पड़ जाती है, जो नत-नयन अपने जीवन-धन के चरणों का दर्शन पाकर ही सुखी है, जो पति के शरीर को पावनतम मानकर छाया बनी उसका अनुसरण कर रही है, उस पर इतना अत्याचार ? इतना कोप ? आखिर यह वज्रपात क्यों ? क्या भैया अपने समस्त दायित्व को भुला बैठे हैं ? भाभी की ये सूजी हुई आँखें क्या उन्होंने नहीं देखीं ? देखकर भी क्या अनदेखी कर दीं ? इस उपेक्षा का उनके लिए क्या कोई दण्ड है ? समाज के विधान ने पुरुष को सदैव क्षम्य क्यों ठहराया है ? समाज की 'क्षमा' पुरुष के लिए इतनी सस्ती क्यों है ? समाज के पास वह हृदय क्यों नहीं जो करुणा के सागर से सच्ची क्षमा के रत्न को जन्म देता है ? पुरुष को मिलने वाली ये क्षमा, क्षमा नहीं प्रपंच है, पाखण्ड है और हठधर्मी है । रवि का हृदय कठोर हो गया । वह घर के वातावरण को शुद्ध, शान्त कर देगा । भाभी के लिए वह भैया से लड़ेगा, विद्रोह करेगा । भैया के प्रति उसका हृदय घृणा से भर आया । विचार-दोहन से अन्तस्तल में जो तूफान उठा था, उसका वेग शनैः-शनैः शान्त हो चला और तब वह उठकर भाभी के पास आया ।

रमा तकिये में मुँह छिपाए अपने पर्यंक पर उलटी लेटी पड़ी थी । शरीर ऐसा शिथिल था, जैसे सात दिन तक निरन्तर ताप रहा हो । उनींदी आँखों में अब आँसू नहीं रह गए थे । करुणा ने धैर्य को स्थान देकर उसे सहनशील बना दिया था । उसने भली प्रकार सोच-समझ लिया था कि पति के मार्ग में वह बाधा न बनेगी; मूक तपस्विनी बनी वह उस घड़ी की शान्त हृदय से प्रतीक्षा करेगी, जब उसके देवता का पत्थर-सा कठोर मन वरदान लुटाने के लिए आतप्त हिम की नाईं पिघल जायगा । और तब आत्मसंतोष की चिर प्रतीक्षित भावना से उसके शुष्क होठों पर मन्द-मन्द हास खेल जायगा । असंतोष की आग को वह संतोष से शान्त रखेगी । उसके जिस विश्वास को आज धक्का लग रहा है, वही तब अविचल, दृढ़ होगा । दाएँ पैर पर बैठी मक्खी को रमा ने अब बाएँ पैर से उड़ाने की चेष्टा की तो नूपुर बज उठे । उसकी सुनहरी कल्पना में व्यवधान आ पड़ा । तभी आ गया

रवि। भैया पर क्रोध आ रहा था उसे। भाभी ने जो पीड़ा—यातना, अब तक सही है, आज वह सबका बदला लेगा। अग्रज के लिए आज वह हृदय में आग छिपाये है, जिसके शत-शत स्फुलिंगों से वह उन्हें व्याकुल कर देगा। उन्हें उत्पीड़ित देकर ही आज वह ठण्डा पानी पियेगा। रमा ने जब सुना कि रवि उसे पुकार रहा है तो वह आश्चर्य-चकित-सी तकिये पर हाथ टेककर उठ खड़ी हुई।

"आज अभी तक दुकान···" विस्मय से रमा पूछने लगी।

"दुकान नहीं जाऊँगा आज!" दृढ निश्चयात्मकता का भाव प्रकट करते हुए रवि कहने लगा, "भैया की प्रतीक्षा है। उन्हें आज मेरे प्रश्नों का उत्तर देना ही होगा। जब तक मेरी शंकाओं का वह समाधान न कर देंगे, उन्हें चैन न लेने दूँगा। अपने-आप वह चाहें कहीं भी झख मारते फिरें; पर किसी दूसरे की ज़िन्दगी से वह खिलवाड़ नहीं कर सकते।···"

रमा ने रवि के हाथों में उलझे हुए वे सिनेमा-टिकट देखे और कृत्रिम मुस्कराहट से बोली—"सचमुच, आज तो भैया तुम शेषावतार बन गए हो। लेकिन···"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं भाभी! रवि अपना पथ नहीं छोड़ सकता।" उसका स्वर कठोर हो गया था।

"तनिक मेरी भी तो सुनो! मुझ पर दया करो। उनसे कुछ मत कहना। ईश्वर के लिए कुछ मत कहना···"

"नहीं भाभी! सहने की भी कोई सीमा होती है। यों रोते-रोते कब तक आँखें फोड़ती रहोगी तुम?"

"रवि भैया, अब तुम मुझे रोते कभी न देखोगे," रमा के स्वर में याचना थी, "मुझे कोई दुःख नहीं, मैं अब हँसकर सह लूँगी। उनसे कुछ न कहना। उन्हें उनके मार्ग पर जाने दो।···"

"लेकिन घर में यह क्लेश चलने दें···"

"काहे का क्लेश, भैया! अब तुम कोई क्लेश न देखोगे। क्लेश तो वहाँ है, जहाँ हम सोचते हैं कि अमुक भी हमारी तरह खाये, पिये, पहने, बोले, सोये, चले-फिरे। जब हम किसी को अपने रंग में रँगा

देखना चाहते हैं, और वह नहीं रँगता, तभी हमें क्लेश होता है। लेकिन किसी को अपने ढाँचे में ढले देखने की चेष्टा करना भी तो अनधिकारपूर्ण है। उन्हें जिस काम में सुख है, उसमें हमें दुःख दिखाई देता है, तो यह हमारा भ्रम है।"

"बस करो भाभी! जो-कुछ सामने प्रत्यक्ष दीख रहा है, उसे तुम तर्कों के बादलों में विलुप्त करना चाहती हो। आखिर इस विमुखता को तुम कब तक सहन करोगी?"

"मेरा विश्वास है भैया, वह एक दिन अवश्य सही मार्ग पर जायँगे।"

"यही तो अन्ध-विश्वास है···"

"तुम इसे नहीं समझ सकते हो, रवि! और रही बात, ज़िन्दगी के साथ खिलवाड़ की, सो यह जीवन भी तो अब उन्हीं का है। वह इसे बनायें, बिगाड़ें, तुम्हें इससे क्या? उनका इस पर पूर्ण अधिकार है। समाज ने, विधि के विधान ने और मेरे सौभाग्य ने उन्हें ये अधिकार दिये हैं। मैं उनकी पत्नी हूँ, मेरा भी कुछ दायित्व है रवि! जो मुझे कहना होगा, मैं अपने-आप कह लूँगी। पर ईश्वर के लिए, तुम उनकी धारणाओं को धूलि-धूसरित न करना। रवि, मुझे वचन दो, तुम उनसे कुछ न कहोगे। बोलो—बोलो—" रमा ने रवि का कंधा झकझोर दिया।

"यह कैसा धर्म-संकट है! क्या मेरा कोई कर्तव्य ही नहीं है, भाभी? मुझे अपने कर्तव्य से विचलित न होने दो। मैं भैया को बता तो दूँ कि जिस कुरंग के पीछे वह दौड़ रहे हैं, वह सोने का नहीं, माया का है।"

"और वह माया मुझे प्रिय हो तो?"

"तब तो घोर दुःख का पारावार तुम्हारे सामने है, भाभी! उसके परिणामों को भी कभी सोचा है तुमने?"

रमा हँस पड़ी—"मैं ठहरी कुपढ़। तर्क से मैं तुमसे नहीं जीत सकती। रही बात दुःख के पारावार की; सो रवि तुम नहीं जानते जब कन्या अपनी माँ से विदा लेती है तो केवल धैर्य का सम्बल देकर

ही उसे अनन्त पारावार की यात्रा के लिए छोड़ दिया जाता है।" एक क्षण ठहरकर वह फिर बोली, "रवि, तुम मौन रहकर भी मेरा हित कर सकते हो। तुम्हारे भैया के स्वभाव को जितना मैं समझ पाई हूँ, उतना शायद तुम नहीं जानते। मैं तुमसे करबद्ध प्रार्थना करती हूँ रवि, अपनी क्रोधाग्नि से किसी के मन की शान्ति में आग न लगाना। कहो, एक बार कह दो, आज अपनी भाभी की यह छोटी-सी बात भी स्वीकार न करोगे? बोलो रवि!" रमा ने स्नेह भाव से उसकी ठोढ़ी ऊपर उठा दी। रवि ने रमा की ओर देखा। दोनों के नेत्र सजल थे—रमा के करुणा से और रवि के दया से। कुछ क्षणों की स्तब्धता के बाद रमा बोली—"अब दुकान जाओ, अपना काम देखो। मन में जो-कुछ क्रोध रहा हो, उसे यहीं छोड़ देना।"

निरुत्तर रवि कमरे से बाहर निकल आया। मन में आया—'माया-कुरंग के पीछे दौड़ते हुए भैया को समय रहते न रोकने से कहीं भाभी से बिछोह तो न हो जायगा।' और अज्ञात की आशंका से वह सिहर उठा।

छः

पूर्वी बंगाल के दंगा-पीड़ितों की सहायतार्थ विश्वविद्यालय-संघ की ओर से उस दिन सहायता-समिति का उद्‌घाटन हुआ था। शशिनाथ भी वहाँ छात्रों के अनुरोध से रुक गए थे। भाषण देने के लिए भी उनसे आग्रह किया गया था, पर वह भाषण के लिए तैयार नहीं हुए। सुमन को पढ़ाने अथवा टैनिस खेलने भी आज वह गये नहीं थे। फिर भी सन्ध्या समय जब घर लौटे तो प्रायः नित्य का ही समय था। उस दिन कालेज में जो घटना घट चुकी थी, उसका प्रभाव भी अभी दूर न हुआ था। और इसी कारण भाषण के प्रति भी उनमें अरुचि हो गई थी। घर लौटते-लौटते वह सोच रहे थे कि रमा का विश्वास प्राप्त करूँ। पाँच जनों के सामने उसका हाथ पकड़ा है, तो उसे अपना बनाऊँ। उसका

अस्तित्व एक गृह-लक्ष्मी का हो, कहारिन या मिसरानी का नहीं। सोचते-सोचते रमा उनके सामने आ गई। लकड़ी के धुएँ से मटमैली-सी हुई धोती पहने रमा रोटी सेंक रही है। कालेज के 'टाइम' पर रोटी तैयार करके देती है, इसलिए काले लहरे बादल से केश सँवार नहीं सकी है। माँग का सिंदूर भी धूमिल पड़ गया है। ललाट पर अगनित उदोत बढ़ाने वाली बेंदी भी नहीं है। पैरों में पुराने ढंग के चाँदी के बल पड़े हैं। उसकी माँ ने कह दिया था कि सुहागिन नारियाँ 'नंगे' पैर नहीं रहती हैं।···और फिर बर्तन माँजती हुई रमा की चूड़ियाँ जैसे उनके कानों में खनखना उठीं। पीली, सूखी कलाइयों पर मिट्टी-राख के सम्मिश्रण से तैयार हुए गोल-गोल काले धब्बे फैल गए हैं। सिर से धोती का पल्ला फिसलकर कमर पर आ गिरा है। कमर में जैसे कुब्ब निकल आया हो—एक ही क्षण में शशिनाथ ने यह सब देखा, तो जैसे कनवैस पर बने सुन्दर चित्र पर एकदम कालिख पुत गई हो। भीतर से कोई बोल उठा—'वाहियात! बिलकुल बेहूदा। कितनी बार कहा रमा से, कोई महरी लगा लो, रोटी सेंकने के लिए मिसरानी आ जायगी। पर नहीं, उसे आप ही चूल्हे की आँच से, धुएँ से आँख फोड़ना अच्छा लगता है। मूर्खा है। ऐसी औरत को ओढ़े या बिछाये, जो कहना ही न मानती हो? यह भी कोई तहजीब (एटीकेट) है कि दिन-भर घर के काम में लगे रहो; मनोरंजन के लिए तनिक भी अवसर नहीं। सुबह चूल्हा, फिर चौका-बर्तन; तीन-चार बजे से फिर चूल्हा, रात को फिर वही चौका। कुछ अवकाश मिला तो किरोशिया भला या सलाइयाँ? कुछ नहीं···बेहूदा।' शशिनाथ ने कुछ ही क्षणों पहले जिस रमा को निकट लाने की बात सोची थी, उसके नाम से भी अब उन्हें चिड़चिड़ाहट उत्पन्न हो रही थी। घर में जब प्रवेश किया, तो उनकी त्यौरियाँ चढ़ी हुई थीं।

उनके कमरे में टेबल-लैम्प का मन्दा आलोक बिखर रहा था। रमा वहाँ नहीं थी। मेज पर खाना रखा था और बिजली की अँगीठी पर पास ही शाक की एक कटोरी रखी थी। लेकिन अँगीठी गरम न थी।
 शशिनाथ ने संकेत समझा—आवश्यकता हो, तो स्विच खोल दो, शाक

गरम हो जायगा। वह रमा से दो बातें करने के लिए कुछ लालायित नहीं थे। पर उन्हें यह आशा भी न थी कि रमा आज अपने 'सेवा-मार्ग' को छोड़ सो चुकी होगी। अतः रमा का उस कक्ष में न होना, उन्हें खटका। भीतर से मन को जैसे कोई पैने नखों से विदीर्ण करने लगा। रमा ने कभी ऐसा व्यवहार नहीं किया। भोजन खिलाने में उसने सब-कुछ होते हुए भी अपने प्रेम में कमी न आने दी थी। फिर भी आज यह उपेक्षा क्यों? क्या कल के मौन से उसके हृदय को जो धक्का लगा वह असीम था, गहन, गम्भीर? शशिनाथ आत्म-ग्लानि से भर आए थे। अँगीठी का स्विच खोलकर वह द्रुतगति से रमा के कक्ष में घुस गए। बिजली का बटन दबाते-दबाते वह कक्ष में फैली मादक सुगन्ध से पुलकित हो उठे। जगमगाते विद्युत्-आलोक में तब उन्होंने देखा—निद्रा-मग्न रमा के कमनीय शरीर का सौन्दर्य मुखरित हो उठा है। टखनों से तनिक ऊपर तक सिकुड़ी हुई साड़ी में उसके युगल चरण देखकर लगता था जैसे कोई अप्सरा गहन अन्तरिक्ष में उड़ान भरते-भरते थककर शयन कर रही है। जिन पतली कलाइयों पर मिट्टी-राख के धब्बे देखकर उन्हें चिढ़ होती थी, वही आज काइयाँ रंग की चूड़ियों से भरी इन्द्राणी के सौन्दर्य को लजा रही थीं। दाईं भुजा रमा के वक्ष पर रखी थी। प्रत्येक श्वास के साथ उठते-बैठते उरोजों के संग वह भी उठ-गिर रही थी। और मध्यमा अंगुली की मुद्रिका का नीलम विद्युत्-प्रभा में चकाचौंध फैला रहा था। ललाट पर कुन्तल-केश-राशि के बीच रबड़ की गहरी उन्नाबी बिंदी सुशोभित थी। नागिन-सी चोटी रमा के बाएँ पहलू के साथ-साथ शयन कर रही थी। शशिनाथ एकदम ठगे-से रह गए। क्या ये उन्हीं की रमा है? आज तक इस रमा को मैंने नहीं देखा, या अब तक मैं सो रहा था? मन में आया उसे एकदम जगा दें, अंक में भरकर आज तक के सारे अपराधों का प्रायश्चित्त करें। पर नहीं, वह निद्रा में निमग्न है; कैसी सुख की नींद है! तभी रमा की मुँदी हुई पलकों पर सिकुड़न दौड़ गई, वह खुली न थीं। और अलसाई हुई देह तब बाईं ओर लुढ़क गई। शशिनाथ ने समझा—बिजली की रोशनी से शायद निद्रा में विघ्न पड़ रहा है। तब उन्होंने वह बिजली बन्द कर

दी और टेबल-लैम्प जला दिया। संयोगवश वह बाईं ओर रखा था। और रमा की नींद उचट गई। उसने करवट ली।

शशिनाथ ने विनम्रतम स्वर में पुकारा—"रमा !"

"आप ?" आश्चर्य से रमा सिर पर पल्ला ढकती हुई पर्यंक के दक्षिण ओर बैठ गई।

शशिनाथ ने उसके समीप ही बैठते हुए कहा—"शाक गरम हो रहा है, क्या उधर न चलोगी ? क्षमा करना तुम्हें सोते से जगा दिया।"

"ऐसी बातें कहकर आप मुझे पाप में क्यों घसीटते हैं। मैं आपको क्षमा देने वाली कौन ? आप स्वामी हैं, मैं दासी।" कहते-कहते रमा का कण्ठ कुछ गीला हो गया। वह उठ खड़ी हुई। शशिनाथ भी उठ गए। और दूसरे कक्ष की ओर जाते-जाते रमा के मन में आया—'आज यह कृपा क्यों हुई ? क्या ये अकारण है ? नहीं; खाना परोसने के लिए तो कोई चाहिए ही। इस मीठी वाणी पर मैं मुग्ध नहीं हो सकती। धनुष, अंकुश, बिलाव और सर्प का झुकना क्या कभी सुखदायी हुआ है ? अवश्य कोई रहस्य है !' आचरण में जब एक बार असत्यता का भास हो जाता है, तो कई बार का सत्य व्यवहार भी अविश्वसनीय और संदिग्ध हो जाता है।

शशिनाथ ने रूमाल से पकड़कर शाक की कटोरी अँगीठी से उतार ली। फिर रमा की ओर देखकर कहने लगे—"मैं आज तुम्हें जगाने की धृष्टता न करता। पर सोचा कुछ दिन से तुम्हारा चित्त अशान्त जान पड़ता है, उसे शान्ति मिलनी चाहिए। परसों मैंने अपने जीवन में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्णय किया है। और वह जानती हो क्या ?···"

"क्या ?" रमा की मुद्रा पर आश्चर्य टपक रहा था।

और एक ओजस्विता से शशिनाथ बोले—"मैंने परसों सुमन का व्यसन छोड़ दिया।"

रमा ने सुमन का नाम सुना तो एकदम उस पर जैसे वज्र पड़ा। शशिनाथ ने देखा, उसका शुभ्र मुखमण्डल सहसा म्लान हो उठा है तिरस्कार से रमा के होठ कुछ स्मित हो गए। हृदय में जो-कुछ उसने

धैर्य के बाँध से रोक रखा था, वह कड़वा बनकर फूट निकला। पलंग से उठकर वह उपालम्भ भाव से बोली—"और कल से सिनेमा में मिलने का प्रोग्राम बनाया है ?"

शशिनाथ के लिए यह अप्रत्याशित था और रमा के लिए अपरिहार्य। सुनकर वह जैसे आसमान से जमीन पर आ रहे। मुँह एक क्षण के लिए फटा रह गया—'जो रमा आज तक सामने न बोली, वह यह क्या कह रही है ?'

उनका स्वर भी तीखा हो गया—"यह तुमसे किसने कहा ? झूठ है ?"

"झूठ है ?" आत्मविश्वास की दृढता से रमा की वाणी में बल आ गया—"सिरीन टाकीज में कल अपर बॉक्स में कौन था आपके साथ ?"

"वह एक विवशता थी रमा !" अचम्भे में सन्न रह गए शशिनाथ।

"आप सब-कुछ करें, जो आपके मन में आता है आप करें। मैं आपको कभी न रोकूँगी। पर भगवान् के लिए मुझसे झूठ न बोलें। ···मैं आपसे कोई सफाई नहीं माँग रही हूँ।···" रमा कमरे से बाहर जाने लगी।

"लेकिन, मैं कहता तो हूँ, वह तो सुमन के पिता नारायणबाबू उस समय जबरन ही घसीट ले गए," सिटपिटाये हुए स्वर में शशिनाथ ने कहा।

"मैं अपनी इच्छा से यहाँ आई हूँ या आप मुझे जबरन घसीट लाए ? कोई किसी के साथ जबरदस्ती में सफल होता है तो दूसरे की कमजोरी के कारण।···"

"तो तुम्हें मेरा कोई विश्वास नहीं है ?" शशिनाथ ने अन्तिम तीर छोड़ा।

"मन का चोर कायरता से मुँह मोड़कर जब भाग खड़ा होता है, तब किसी को सफाई देने को आवश्यकता नहीं रहती।" तुनककर रमा कमरे से बाहर चली गई।

शशिनाथ का 'बेअक्ल' उसने नहीं सुना। रमा जब चली गई, तो

शशिनाथ का खाना खाना भारी हो गया। जिसको आज वह मनाने चले थे, वही मानिनी रूठकर चली गई। शशिनाथ का मान-घमण्ड रमा के बाहर चले जाने से चूर-चूर हो गया। पलंग पर ही चाहे वह खाना खाने तक मौन बैठी रहती तो शशिनाथ के हृदय को इतनी गहरी ठेस न लगती। और चूँकि रमा उनकी दृष्टि में निर्धन, विधवा माँ की अपढ़ पुत्री थी और उनकी दया पर जोने वाली पत्नी थी, इसलिए रमा के प्रति उनके हृदय में क्रोध की ज्वाला धधक उठी। 'रूढ़ीवादी परिवारों में जन्म लेने वाली कन्याओं की बुद्धि को भगवान् जन्म-काल से ही हर लेता है,' वह बड़बड़ाये। 'सच को झूठ और झूठ को सच समझती है।' और तब सारे कमरे में जैसे गूँज उठा—'मन का चोर जब कायरता से मुख मोड़कर भाग खड़ा होता है तब किसी को सफाई देने की आवश्यकता नहीं रहती।' रमा का यह वाक्य शशिनाथ के कठोर हृदय-पटों को समुद्र की उत्ताल तरंगों का रूप ले बारम्बार ध्वस्त, धराशायी करने के लिए तैयार हो गया। शशिनाथ विचार-मग्न हो गए—'मन का चोर···कायरता···किसी को सफाई देने की आवश्यकता नहीं रहती!' रमा का तात्पर्य क्या है? क्या मेरे मन में कोई चोर है? क्या मैं कायर हूँ····कायर?····' इस समय सुमन का खिलखिलाता हुआ चेहरा उनके सामने आया; वह कह रही थी—'पुरुष की कायरता नारी के लिए सदैव हास्यास्पद है और रहेगी प्रोफेसर साहब!' 'तो क्या मैं वास्तव में कायर हूँ? कायर हूँ।···' उद्विग्न-मन शशिनाथ पलंग से उठ खड़े हुए। 'मैं कायर···कायर हूँ··? कौन कहता है? कौन कहता है कि मैं कायर हूँ? नहीं, नहीं—मैं कायर नहीं हूँ—' शशिनाथ अत्यन्त विक्षिप्त हो उठे थे। मन में आया, रमा को अपने प्रलम्ब बाहुओं से झंझोड़ दें उसे अच्छी तरह हिलाकर कह दें—'रमा, मैं कायर नहीं हूँ।' एव चीख के साथ वह रमा के कमरे की ओर बढ़े—द्वार बन्द थे भीतर से वह चिल्ला रहे थे—"मैं कायर नहीं हूँ! मैं कायर नहीं हूँ।····" पर द क्षण तक भी कोई प्रतिध्वनि न सुन पड़ी। शशिनाथ की मुट्ठियाँ झन झना उठीं। उनका तीक्ष्ण स्वर सुनकर रवि जाग गया। रमा व

 आँख अभी लगी ही थी; वह फिर उठ बैठी। द्वार खोला तो कोई नह

था। खटाखट रवि ऊपर चढ़ आया। और दोनों प्रायः एक साथ ही शशिनाथ के कमरे की ओर दौड़े। वह अचेत-से अपने पलंग पर लेटे थे। दोनों बाहें और लातें परस्पर-विरोधी दिशाओं में फैली हुई थीं। कमीज के बटन खुले थे। आगे के बाल मस्तक पर झुक आए थे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद अत्यन्त धीमे स्वर में वह कह रहे थे—"मैं कायर नहीं हूँ...मेरे मन में चोर नहीं।...."

रवि और रमा की समझ में कुछ न आया। दोनों ने एक-दूसरे की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। रमा उस क्षण दूध गरम करने लगी। अर्धचेतनावस्था में ही उन्हें दूध पिला दिया गया। कुछ देर बाद रवि ने देखा, भैया को नींद आने लगी है। और वह चुपचाप गरदन झुकाए कमरे से बाहर आ गया।

सात

बी० ए० प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों को प्रोफेसर अंग्रेज़ी-कविता पढ़ा रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के एक अंग्रेज सैनिक का लार्ड-सभा के एक सदस्य की पुत्री से प्रेम हो गया था। एक दिन वह अपनी प्रेयसी को अश्व पर बैठाकर ले गया—ठीक वैसे ही जैसे पृथ्वीराज संयुक्ता को स्वयंवर के कुछ ही क्षणों पूर्व अपूर्व साहस के साथ ले भागा था। लेकिन सैनिक का जब वायु-वेग से दौड़ने वाले घोड़ों ने पीछा किया, तो वह भी हवा से बातें कर रहा था। इससे पूर्व कि वह शत्रुओं के हाथ में फँसता, एक नौका पर बैठकर अपनी प्रियतमा के साथ समुद्र की उत्ताल तरंगों का वक्ष चीरता हुआ आगे बढ़ चुका था। तट पर कोई और नौका न थी। लड़की का पिता अपने सहायकों सहित तट पर ही असहाय खड़ा रह गया। पर नियति को उन दो प्रेमियों का मिलन भला नहीं लगा। प्रचण्ड वायु-वेग से जलनिधि अपनी सीमाएँ तोड़कर निस्सीम हो चला। उस झंझावात में वह नौका डगमगा गई और तट पर खड़े असमर्थ पिता के देखते-देखते ही वे दो प्रेमी सदा के लिए नील गहन

जल की समाधि में शयन कर चुके थे। यही उनका चिर-मिलन था। जन्म-जन्मान्तरों के लिए साथ-साथ वे समुद्र के चिर शान्त-क्रोड़ में शयन कर चुके थे। निर्मोही, निर्दय और ईर्ष्यालु संसार से वे सदा के लिए मुँह मोड़कर उस सुखद लोक में विचरण कर रहे थे, जहाँ फिर बिछोह नहीं है, विराग और विरति की कोई सम्भावना नहीं है। ओह! अगाध प्रेम-रज्जु में आबद्ध दो सच्चे प्रेमियों का यह कैसा कारुणिक अन्त!···प्रोफेसर शशिनाथ प्रेम की व्याख्या करते-करते भाव-प्रवण हो उठे थे। छात्र-छात्राओं ने उन्हें पहले कभी इतना भाव-निमज्जित नहीं देखा था। वह कह रहे थे—"मुझे लगता है, हमारे सन्त कवियों ने चाँद-चकोर, दीपक और बाती, मीन और नीर के जिस प्रेम-योग की उपमाएँ दी हैं, वह इस कविता में साकार हो उठी हैं। एक छोटी नौका से समुद्र पार करने की चेष्टा दुःसाहस-मात्र कही जा सकती है। फिर भी उन्होंने समाज का अपमान सहने की अपेक्षा मृत्यु के आलिङ्गन में परमानन्द देखा। अपने साँचे प्रेम को आँच न आने दी। सत्य है, सच्चे प्रेमी को बड़े-से-बड़े उत्सर्ग के लिए तैयार रहना होता है। एक और कवि ने लिखा है—प्रेम सिर के मोल बिकता है। इसमें 'तन, मन धन पहले अरपन करि, जग के सुख न सुहाय' जैसी स्थिति के लिए तैयार रहना होता है। सब ओर से मन हटाकर एक ही में अनुरक्त होना, उसमें ही एकरस हो जाना, अपने प्रियतम को ही सर्वस्व मानना—यही सच्चे प्रेम की प्रधानता है, यही उसके प्रमाण हैं···"

'टन्-टन्-टन्!' पीरियड समाप्त हो गया। एक मन्द मुस्कान के साथ शशिनाथ बोले—"जो अधिक रसिक हैं आपमें से, वह पण्डित जी (हिन्दी के प्रोफेसर) से परामर्श करके संस्कृत और हिन्दी-कवियों की रचनाओं का रसास्वादन करें।···" वह कुरसी से उठ खड़े हुए। और कमरे से बाहर निकलते-निकलते एक छात्र ने उनसे पूछा—"लेकिन प्रोफेसर साहब, जहाँ रूढ़ीवादी परिवारों में बलपूर्वक लड़के-लड़की को एक अत्यन्त लचीले सूत्र में बाँधकर संसार के शूल-भरे पथ पर छोड़ दिया जाता है, वहाँ क्या दो अपरिचितों और भिन्न मति वालों में ऐसा स्निग्ध, शुचितम प्रेम सम्भव है?"

शशिनाथ प्रश्न सुनकर एक क्षण के लिए मौन रह गए। मन में आया—'नहीं।' पर प्रकट में वह बोले—"यह विषय दूसरा है। इसका निरूपण किसी समाज-शास्त्र के ज्ञाता से कराना चाहिए। साहित्य में जिस प्रेम का हृदयग्राही, लालित्यपूर्ण वर्णन है, उसकी सामाजिक पहलू से कोई मीमांसा मैं यहाँ नहीं कर सकता।"

"मैं तो वर्तमान समाज के ढाँचे में, जिसे कुत्सित कहा जा सकता है, ऐसा प्रेम अव्यवहार्य, अशक्य मानता हूँ," वह छात्र फिर बोला।

"हो सकता है, आपकी बात किसी सीमा तक सत्य हो···यह तीसरा पीरियड खत्म हुआ है?" शशिनाथ ने एक-साथ ही विषय बदलते हुए पूछा, और फिर स्वतः बोले, "तो मेरा यह पीरियड खाली है।"

हाथ में रजिस्टर और दो पुस्तकें लिये वह अब अकेले अपने विभागीय कक्ष की ओर जा रहे थे। प्रेम की इस व्याख्या और अन्त में किये गए प्रश्नों ने उनके उर-अन्तर में एक उथल-पुथल मचा दी। चेतना ने छात्र का वही प्रश्न फिर दोहराया और उस चेतना ने दृढ़ता से कहा—'नहीं! वर्तमान समाज के ढाँचे में, जिसे कुत्सित कहा जा सकता है, ऐसा प्रेम अव्यवहार्य है, अशक्य है।' किसी सीमा तक उस छात्र का कथन सत्य था? भिन्न मति वालों में ऐसा स्निग्ध, शुचितम प्रेम क्या सम्भव है? बलपूर्वक लड़के-लड़की को एक लचीले सूत्र में बाँधना, उनके जीवन की सार्थकता को मिट्टी बना देना नहीं तो और क्या है? रमा के और मेरे बीच भी क्या ऐसा ही लचीला सूत्र नहीं है?' कमरे में आकर वह कुरसी पर बैठ गए। पर मन में उठे हज़ारों प्रश्नों ने उन्हें चैन से नहीं बैठने दिया। विचारों की शृङ्खला का कहीं अन्त नहीं है। शशिनाथ की दृष्टि तब मेज पर रखी एक पुस्तक के ऊपरी पृष्ठ पर पड़ी। उस पर बड़े कलात्मक ढंग से दो चरण बनाये गए थे, जिनमें बेड़ियाँ पड़ी थीं। शशिनाथ सोचने लगे—'बलपूर्वक विवाह करके भी बड़े-बूढ़े अपने बच्चों के पैरों में बेड़ियाँ डाल देते हैं। यदि ताई बीच में न पड़तीं, तो सम्भवतः आज रमा मेरे जीवन में न आई होती। ताई···हुँ! और विवाह के बाद आज वह उतनी ही दूर हैं, जितनी दूर कोई अनजान हो

सकता है। दो वर्ष बीत गए। पर उनका एक पत्र भी नहीं मिला। पैरों में पड़ी ये बेड़ियाँ व्यक्ति को कैसा गतिहीन, निष्क्रिय, आलसी और निश्चेष्ट बना डालती हैं। वातावरण में सर्वत्र असन्तोष, अशान्ति, क्षोभ! प्रेम का नितान्त अभाव।....ऐसी स्थिति में मन का भटकना कोई आश्चर्य नहीं, एक अवश्यंभावी सम्भावना है। क्या वह सुमन की ओर इसीलिए नहीं झुके—' और इसी क्षण उनके अन्तर का संघर्ष तीव्रतर हो चला—'नहीं, मैं सुमन की ओर तो नहीं झुका...'

अन्तर से फिर आवाज आई—'स्वीकार कर ही चुके, पीछे नहीं हट सकते!...'

शशिनाथ अपने से जूझ पड़े—'मैंने यह कब स्वीकार किया? कब मैं सुमन की ओर झुका? सुमन मेरी ओर झुकी....'

'नहीं, नहीं, नहीं! तुम गलत कह रहे हो प्रोफेसर! मन तुम्हारा ही पथ-भ्रष्ट हुआ। स्वीकार करते हो? साहस के साथ कहते क्यों नहीं? रमा का फैशन तुम्हें पसन्द नहीं; उसकी शिक्षा-दीक्षा से तुम असन्तुष्ट हो; उसमें तुम्हारी कोई रुचि नहीं; तुम उसे गले पड़ा ढोल समझते हो। सबको धोखा दे सकते हो प्रोफेसर, पर अपने-आपको नहीं...' उपचेतना ने लताड़ दी।

और शशिनाथ तब सोचने लगे—'क्या यह सच है? नहीं—' नकारात्मक भाव प्रकट करते हुए आप-ही-आप उनकी गरदन हिल उठी। 'मैं अपने को धोखा नहीं दे रहा। रमा के प्रति मैं सच्चा हूँ।...'

'देखो, झूठ बोलने का प्रयत्न न करो प्रोफेसर! मैं सब जानता हूँ। तुम्हारी नस-नस का मुझे पता है। रमा के प्रति तुम मन-वचन से सच्चे नहीं हो। कर्म की निष्ठा भी तुममें कहीं-कहीं अपूर्ण है। तन, धन तुमने खुलकर नहीं लुटाये हैं प्रोफेसर!' उनका सूक्ष्म पुरुष जैसे तर्जनी से उन्हें ताड़ने लगा।—'जिस स्निग्ध प्रेम की तुम व्याख्या कर रहे थे, वह तो असि-धार की तरह पैना है। उससे गिरकर तो टूक-टूक हो चुके हो तुम!...' बस, और अधिक शशिनाथ न सोच सके। सिर घूम गया। तब दोनों हाथ मेज पर टेककर उन्होंने सिर झुका लिया। कानों में सुन्न-सुन्न चिउँटियाँ-सी चलने लगीं।

अचानक कमरे में किसी के प्रवेश की ध्वनि सुनकर शशिनाथ ने गरदन ऊपर उठाई। आँखों के सामने सुमन थी, जिसके अधरों पर स्वाभाविक मुस्कान खेल रही थी। रोष से शशिनाथ का रक्त खौल उठा। पूरे जोर से वह चिल्लाये—"इसी वक्त कमरे से बाहर हो जाओ सुमन !"

सुमन ने हँसी रोकने के लिए दाँतों से अपनी जीभ दबाई और मुख पर कृत्रिम उदास भाव लाकर वह बोली—"मैं तो आपसे क्षमा माँगने आई थी प्रोफेसर साहब !"

"क्षमा-वमा कुछ नहीं, जाओ-जाओ बाहर जाओ।" उनके स्वर में घबराहट थी।

सुमन तब कुछ दृढ़ होकर बोली—"जब तक आप मुझे कल के व्यवहार के लिए क्षमा न कर देंगे, मैं जाऊँगी नहीं। कहिए, क्षमा किया आपने ?"

शशिनाथ कुपित तो थे ही, पर पहले सुमन को देखते ही जितना भड़क उठे थे, उतना क्रोध अब नहीं था। "तुम्हारा मतलब क्या है, सुमन ? क्यों तुम जले पर नमक छिड़क रही हो ? जो-कुछ मैं भूल जाना चाहता हूँ, उसे तुम क्यों बार-बार कुरेदना चाहती हो ? मैं चाहता हूँ, इस समय मुझे अकेला ही रहने दो तुम !"

सुमन ने बिलकुल अबोध बनते हुए कहा—"मैं आपका मतलब नहीं समझी। मैं यही चाहती हूँ कि कल के मेरे व्यवहार से यदि आपके हृदय को कोई आघात पहुँचा है, तो मुझे उस अपराध से क्षमा कीजिए। मैं तो आपके सामने अपराधिन बनी खड़ी हूँ।···"

शशिनाथ का रोम-रोम क्रोधाग्नि से जला जा रहा था। उनके मन में आया कि जोर का चाँटा मारकर सुमन को कमरे से बाहर धक्का दे दें। पर वह बोले—"यदि नारायणबाबू से मेरा पुराना परिचय न होता, तो शायद तुम्हारा नाम तक कटा देता। लेकिन अब मैंने तुम पर मामूली-सा फाइन (जुर्माना) भी नहीं किया है।···"

सुमन ने उनका भ्रूविक्षेप देखा और सोचने लगी—ये इनका दम्भ

बोल रहा है। फिर व्यंग भाव से वह बोली—"तो इसे आपकी निष्ठुरता कहा जाय या दया ?"

"मुझे अधिक बोलने की आदत नहीं है। तुमसे कहा न, जाओ इस समय।" शशिनाथ की वाणी में अधिकार था।

"यदि आपने मुझे क्षमा कर दिया है तो मैं चली जाती हूँ। लाइए, मुझे वह पुस्तक दे दीजिए जो कल मैंने बावलेपन में फेंक दी थी।"

शशिनाथ के होठ और बाहु फड़क रहे थे। घृणा का भाव प्रकट करते हुए वह बोले—"ले लो अलमारी में से, और चली जाओ !"

सुमन अलमारी की ओर बढ़ गई। न चाहते हुए भी सुमन की वेश-भूषा पर शशिनाथ की दृष्टि चली गई। गेहूँ के पके सुनहरी खेत-सी साड़ी सुमन ने पहन रखी थी। प्रथम परिचय के दिन भी उसने यही पहनी थी। शशिनाथ का चेहरा एकदम काला-स्याह हो गया। यही साड़ी एक दिन सुमन से माँगकर वह घर ले गए थे। रमा ने इसे ही पहनकर बंगाली वेश-भूषा में फोटो खिंचवाया था। शशिनाथ ने जो साड़ी रमा की बताई थी, उसे वह चुपचाप अलमारी से निकाल ले आए थे और सुमन को लौटा दी थी। शशिनाथ का हृदय पश्चात्ताप से भर आया।

सुमन ने वह पुस्तक देखकर भी अनदेखी कर दी। उसे ढूँढने का अभिनय करते हुए वह बोली—"आपने किधर रख दी प्रोफेसर साहब, मुझे तो मिलती नहीं !"

शशिनाथ तब कुरसी से उठ खड़े हुए; और जब वह पुस्तक निकालने के लिए झुके, तो सुमन चिन्तित होकर बोली—"आपके कन्धे पर मकड़ी चल रही है प्रोफेसर साहब !"

एक घबराहट के साथ प्रोफेसर सीधे खड़े हो गए। दाएँ स्कन्ध की ओर उनकी गरदन घूम गई—"कहाँ है ? किधर है ?"

सुमन ने एक हाथ उनके दाएँ स्कन्ध पर रखा और कृत्रिम मुस्कराहट के साथ एड़ियाँ उचकाकर बाएँ स्कन्ध को अपने बाएँ हाथ से

झाड़ने का अभिनय करती हुई वह बोली—"चली गई। बहुत बड़ी मकड़ी थी।"

"थैंक्स (धन्यवाद) !" कहते-कहते शशिनाथ के अधर भी तनिक फैल गए। पुस्तक देखने के लिए वह फिर झुके, तब सुमन ने प्रोफेसर साहब की कुरसी के बाईं ओर वाली खिड़की में से बाहर झाँका और मुस्करा दी।

सुमन इलियट का नया कविता-संग्रह लेकर जब शशिनाथ के कमरे के पिछवाड़े गई, तो खिड़की से कोई बीस-पच्चीस कदम के अन्तर पर राजाराम उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। सुमन को देखते ही वह खिल-खिलाकर हँस हड़ा और सुमन भी उत्तर में जोर से हँस पड़ी। शशि-नाथ दो-चार पुस्तकें और निकालने के बाद जब कुरसी की ओर बढ़े तो देखा—पीछे लगे मौलसिरी के वृक्ष के नीचे राजाराम और सुमन दोनों हँसकर हाथ मिला रहे हैं।

"यह भी कितनी अजीब लड़की है !" उनके उस कथन में निश्चय ही पराजय का भाव छिपा था।

आठ

"जिलों के भीतरी भागों से जो समाचार आ रहे हैं, उन्हें सुन-सुनकर भय से छाती दहल जाती है। बारीसाल की हमारी और आपकी सारी सम्पत्ति जलकर भस्म हो गई। हमारे पैर यहाँ से उखड़ चुके हैं। कल दिन निकलते-निकलते हम यहाँ से कूच करेंगे। सुन रहे हैं, मार्ग में अंसार और मुस्लिम-गार्ड जो अत्याचार ढा रहे हैं, उन्होंने पशुता को लजा दिया है। कौन जाने, कभी सीमा के पार पहुँचकर अपनों से भेंट होगी भी या नहीं। वाष्प-नौकाओं में भी मल्लाह मुस्लिम हैं। बची-खुची सम्पत्ति भी, सुना है, मार्ग में लूट ली जाती है। सुन-सुनकर जी बैठा जा रहा है। दम सूख गया है। पर दुनिया में विवशता बड़ा दुःख और क्या है! राम का नाम लेकर कल चल पड़ेंगे। ईश्वर

ने जीवन रखा तो फिर भी आपके दर्शन होंगे। कालिपद मुखर्जी की पत्नी को अभी से दिन में चार-छः बार बेहोशी हो जाती है। ऐसे जीने से तो मृत्यु भली। कौन जाने, यह पत्र भी आपको मिलेगा या नहीं। और मिले भी तो इसे अन्तिम ही समझिए। आज तो लगता है कि इस कठिन परीक्षा में कृष्ण भी हमें भूल गए हैं। हमारी उपास्य आराध्य काली आज हमसे रुष्ट हो गई हैं।......" पत्र पढ़ते-पढ़ते नारायणबाबू का हृदय भर आया। अन्तर का रुदन फूट पड़ा। हाथ भी सारे शरीर के साथ-साथ शिथिल हो गए और फिर आराम-कुरसी के दोनों बाजुओं पर फैल गए, निष्प्राण-से। पत्र हाथ से छूटकर भूमि पर आ रहा। मस्तिष्क शून्य से घिर गया। नेत्रों के आगे गहरा अन्धकार था। चालीस हजार की सम्पत्ति नष्ट होने के समाचार ने उन्हें जैसे निराशा के पारावार में धैर्य की नौका छीनकर अकेला ही छोड़ दिया। और फिर मानवता की लूट, सतीत्व की लूट, उसकी नृशंस हत्या और बलात्कार के जो समाचार उन्होंने अभी-अभी 'युगान्तर' में पढ़े थे, उनसे हृदय में दारुण दुःख उद्भूत हुआ। दिन पर-दिन बिगड़ती स्थिति के समाचारों की नारायणबाबू पर जो भयंकर प्रतिक्रिया हुई उसका आघात वह झेल न सके। दस वर्ष से इस विशाल भवन में वह अपनी इकलौती पुत्री के साथ रह रहे थे। पर आज यह अकेलापन सुरसा-सा मुँह फाड़कर जैसे उन्हें खाने दौड़ा। जिसकी कल्पना भी नहीं की थी, वह आज अचानक बिजली की तरह टूट पड़ा। नारायणबाबू अस्वस्थ रहने लगे। ज्वर से जो सिकुड़न-भरा चेहरा दोपहर में तमतमा उठता था, वही प्रातःकाल स्याह, मुरझाया हुआ दिखाई देता था।

ऐसी ही दशा में नारायणबाबू को एक दिन कलकत्ता से एक पत्र मिला। और बारीसाल के मुखर्जी-बन्धुओं के परिवार की निर्मम हत्या के समाचार से वह अपनी सुध-बुध खो बैठे। शरीर में जैसे रक्त नहीं रह गया था। इसी परिवार में सुमन का विवाह करने का वह मन-ही-मन संकल्प कर चुके थे। समाचार ने उन्हें अत्यन्त व्याकुल कर दिया। दूर बैठे उस नरमेध पर आँसू बहाने के अतिरिक्त दूसरा चारा ही क्या था? जीवन के शान्त सरोवर में पूर्वी बंगाल की घटनाओं के बोझल पत्थर

ने दुःख की लहरों को चंचल कर दिया। अपनी रुग्णावस्था के साथ जब वह नर-संहार पर विचार करते तो मन अज्ञात की आशंकाओं से भर जाता। उन्होंने एक सुखद सपना अपने मन में सँजोया था। सुमन बी० ए० की परीक्षा पास कर लेगी और उसके तत्काल बाद ही उसके हाथ पीले कर दिए जायँगे। पर कल्पना जितनी मधुर-सुखद होती है, यथार्थ उतना ही कड़वा और दुःखद। यदि कल को मुझे कुछ हो गया, तो सुमन इस विशाल जगत् में बिलकुल अकेली रह जायगी। और तब कौन जाने उसके सपनों की रँगीली दुनिया उसे उजड़ी हुई मिलेगी या रंगीन; सुख, वैभव, ऐश्वर्य से भरी या विपदाओं, यातनाओं से काली, भयावह! जो होना था, सो हुआ। लेकिन अब जो होना है, अभी हो ले। कल्पना-सा मृदुल-मंजुल अथवा यथार्थ-सा कटु-तिक्त। जो होना है वह इसी क्षण हो जाय। मेरे जीवन की ज्योति अब झपझपाने लगी है। सुमन की सुख-सुहाग-भरी मदमाती सुनहरी दुनिया को देखकर वह कुछ मुस्करा ले तो अच्छा है। उनका हृदय सुमन के प्रति स्नेह से उमड़ आया। उसकी बाल-सुलभ क्रीड़ा देखकर वह जैसे आनन्द-विभोर हो उठते थे, वैसे ही पुलकित अब हो उठे। जर्जर कृश-काया में जैसे नव-प्रभात की चेतना जाग उठी। एक-मात्र पुत्री के जीवन में सारे संसार का सुख उँडेलने के लिए मन विह्वल हो उठा, अधीर हो उठा। उन्होंने सोचा—'वर सुमन की इच्छा के विरुद्ध नहीं चुनना चाहिए। पर वह कितना सकुचाती है? लज्जा ने उसके मुँह पर जो ताला डाल रखा है, वह क्या मेरे सामने कभी खुल सकेगा? कदापि नहीं।...' उनके होठों पर मन्द हास्य खेल गया। मन में सुखद कल्पनाएँ अपना मधुर नृत्य कर उठीं। नारायणबाबू सोचने लगे—'सुमन की माँ ने भी मुझे अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति से पाया था। पर सुमन के मन की घुण्डी कैसे खुले? वह किसे बताये कि उसने अभी अपने मन में किसी को चुना है या नहीं। नहीं, तो उसे क्या पसन्द है? उसकी क्या रुचि है, उसके क्या विचार हैं? यदि आज उसकी माँ होती, तो क्या मुझे कोई चिन्ता सताती?...' और सहसा उनके हारे हुए शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। मन में एक शरारत सूझी—'शायद सुमन की मेज पर, कमरे के

किसी कोने-कुचोल में कोई ऐसी चीज हाथ लग जाय, जिससे उसके मन की गति का कुछ आभास मिल सके।' बेंत का सहारा लेकर वह उठे। खड़े हुए और तब कुरते की जेब से सुंघनी निकालकर उन्होंने दोनों नथनों में हुलास चढ़ाई। धीरे-धीरे वह सुमन के कमरे में आ पहुँचे। मन का चोर सुमन के मन का मनमोहन खोजने लगा। सबसे पहले मेज के दराजों को खोलकर नारायणबाबू ने छान मारा। सेंट की खाली शीशी अठारहवीं वर्ष-गाँठ पर दी गई उपहार की अँगूठी, सिलोलाइड और प्लास्टिक के सैटिस्क्वायर—'डी', रेगमाल के दो-चार टुकड़े और पतली नोटबुक-साइज की एक पेंसिल के अतिरिक्त बाएँ दराज में और कुछ न था। दाएँ ओर की दराज में कलर-बाक्स, ब्रुश, बोर्ड-पिन्स आदि ड्राइंग का कुछ सामान था। सुमन को चित्रकारी का शौक था। फिर नारायणबाबू ने पुस्तकों की अलमारी के कोने झाँके। ऊपर के ताखदान देखे; आले देखे। यहाँ तक कि कमरे में लगे चैतन्य प्रभु, रवीन्द्र, गांधी, सुभाष और अहिल्याबाई के चित्रों के पीछे भी नारायणबाबू झाँके बिना न रहे। थककर फिर वह सुमन की कुरसी पर धम से आ बैठे। मेज पर फैली हुई दो-चार पुस्तकों और कापियों को तब वह देखने लगे। और तब अंग्रेजी कविता के नोट्स वाली कापी में उन्हें एक लिफाफा मिला। उसमें एक फोटो था। फोटो पर आँखें जो गड़ाईं, तो वह अवाक् रह गए। आँखों में खुशी नाच उठी; मन उल्लास से नृत्य कर उठा—'शशिनाथ!' नारायणबाबू देखने लगे—'उनके कन्धों पर हाथ टेकते हुए सुमन की आँखों में समर्पण का भाव खिल उठा है। और शशिनाथ के होठों पर एक मन्दहास खेल रहा है, जैसे देवता ने चरणदासी का हृदय-निर्माल्य स्वीकार कर लिया हो।' नारायणबाबू की निगाह तब लिफाफे में से निकले बिल पर पड़ी। उस पर लिखा था—"यह साधारण 'प्रिण्ट' है, शेष 'प्रिण्ट' कल सन्ध्या तक मिलेंगे। वह बिल नारायणबाबू ने अपनी जेब में रख लिया। फोटो का लिफाफा सँभालकर एक और बड़े लिफाफे में डाल लिया। फिर वह आत्म विभोर-से, धीरे-धीरे चलकर अपनी कुरसी पर आ बैठे। नयनों के सामने शशिनाथ-सुमन खड़े खिलखिला रहे थे। और···दोनों के कण्ठों में ये

सुवासित मालाएँ कौन पहना गया ? और यह क्या ? सुमन का पल्ला पवित्र कलावे से शशिनाथ के दुपट्टे में बँधा है; अग्नि को साक्षी मानकर दोनों उसकी परिक्रमा कर रहे हैं। मन्द मुस्कान के साथ दोनों नतमस्तक नारायणबाबू को प्रणाम कर रहे हैं। और फिर सुमन के दो विशाल नेत्रों में मोती-से उज्ज्वल दो अश्रु डबडबा आए हैं। नारायणबाबू उस विदाई की बेला में अवसाद से भर आए। पिंजरे में बन्द शुक की 'हरि बोल, मिट्ठू' की तीखी आवाज से नारायणबाबू यथार्थ जगत् में आ गए।...'लेकिन, यह जो अन्तर्जातीय विवाह होगा! तो क्या हुआ ? कोई दोष नहीं ! कोई दोष नहीं। सब ठीक है, यदि सुमन को अपने-आपमें इससे सन्तोष है, तो मैं उसकी खुशी की दुनिया छीन नहीं सकता। उसके हृदय को ठेस पहुँचाना, नव-विकसित कमल को जल से बाहर फेंक देने-जैसा होगा। शशिनाथ कुँवारा है, अच्छा पढ़ा-लिखा, शिष्ट, शालीन, सभ्य-सुसंस्कृत और फिर पिछले आठ-दस मास से दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते हैं...' आनन्दमयी तन्मयता से आँखें सजल हो गईं नारायणबाबू की; वह सोच रहे थे—'अब समझा; सुमन क्यों हठ कर रही थी। क्यों चाह रही थी कि शशिनाथ घर पढ़ाने आते रहें। ओह...लड़का-लोग भी क्या इसीलिए कटाक्ष-आक्षेप करता है ? तब तो इस काम में देर नहीं होना चाहिए।...रही बात अन्तर्जातीय विवाह की, सो आजकल के शिक्षित युवकों की तरह शशिनाथ को भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। कोडबिल का जमाना है। धनवान पिता की इकलौती पुत्री बड़े सौभाग्य वालों को मिलती है। सभी शिक्षित समाज, वैसे भी, आजकल जाति-पाँति का विचार और बन्धन तोड़ चुका है। मेरे कई आदर्शवादी सुधारक मित्र स्वयं इस दिशा में नये मोड़ पर घूम गए हैं। जब दो हृदयों के मधुर मिलन को पावन पावक की साक्षी देकर चिरकाल के लिए अमर ही बनाना है, तो समाज इसमें क्या करेगा ?...' नारायणबाबू ने वह फोटो निकाला और पुनः उस पर टकटकी लगा दी, 'सुमन कितनी चंचल है ! और मुझे आज तक कुछ पता भी तो नहीं लगने दिया।' पीपल-पल्लव-सम दोलित उनका मन अब सर में नव-विकसित नलिन की भाँति निश्चल

हो गया था। शरीर में जैसे किसी ने नई जान डाल दी। कोहनूर का फाइन धोती जोड़ा फाड़कर उन्होंने धोती पहनी। नया उन्नाबी सर्ज का कुरता पहना। चार रेखाओं वाले चौड़े ललाट के नीचे काली झाइयों वाली आँखों पर उन्होंने सुनहरी फ्रेम का चश्मा लगाया और अखरोट की लकड़ी की चिकनी, चाँदी की मूठ वाली छड़ी लेकर वह जीना उतर गए। नौकरानी घर में काम कर रही थी। नारायणबाबू ने उसे कुछ न बताया; बस यही कहा—"बिटिया आये तो कहना तबीयत ठीक है। डॉक्टर से सलाह लेने गया है।" नौकरानी मालिक के उत्फुल्ल चेहरे को देखकर विस्मय-विमुग्ध-सी रह गई।

छज्जे में से शशिनाथ ने अपने द्वार पर जब सुमन की गाड़ी रुकती देखी तो मन-ही-मन झल्ला उठे—'यह इस समय क्यों आई है?' और अगले ही क्षण जब उन्होंने नारायणबाबू को बग्घी से उतरते देखा तो उस वृद्ध पिता की बुद्धि पर उन्हें तरस भी आया और क्रोध भी। 'लड़की के हाथों में यह वृद्ध कैसे नाचते हैं? उसने इनके कैसी नकेल डाल रखी है! और आज मैं इन्हें ऐसा निराश लौटाऊँगा कि ये कभी फिर मेरा मुँह न ताकेंगे''''' सोचते हुए जब शशिनाथ छज्जे में से कमरे की ओर पीछे हटे तो अनायास नारायणबाबू से आँखें मिल गईं। नारायणबाबू बिना आवाज दिये ही ज़ीना चढ़ आए। शशिनाथ ने ठंडे हृदय से उन्हें प्रणाम किया। नारायणबाबू ने मन्द हास के साथ उसे स्वीकार किया। और तब दोनों बीच के छोटे हॉल में आ बैठे। हॉल क्या, ऊपर के दालान में एक ओर परदे डालकर उसे हॉल का रूप दे दिया गया था। उसी में एक सोफा सैट पड़ा हुआ था।

रमा ने जब 'आइए, नारायणबाबू; आज आपने कैसे कष्ट किया!' सुना तो वह चौंकी। उसका माथा ठनका। अपने ही विभु के प्रति मन में अनायास घृणा का उद्रेक हुआ और पति जिस कृत्रिम शिष्टाचार का प्रदर्शन कर रहे थे, वह उसे अकृत्रिम जान पड़ा। चूल्हे पर शाक चढ़ाने के बाद वह अपने कक्ष में बैठी पेटीकोट पर बेल काढ़ रही थी। उसे वहीं छोड़कर वह चुपचाप पति और नारायणबाबू के पीछे की तरफ परदे की ओट में एक स्तम्भ से सटकर आ खड़ी हुई। एक क्षण उसने निकट से

नारायणबाबू को देखने का प्रयत्न किया। तब शशिनाथ कह रहे थे—"यदि आप मुझे ट्यूशन के लिए विवश करने ही आये हैं तो मैं तैयार नहीं हूँ।"

पति का यह वाक्य समाप्त होते-होते रमा को लगा जैसे शाक जलने लगा है। वह मन्थर गति से रसोई की ओर बढ़ गई।

नारायणबाबू ने शशिनाथ के भ्रम को दूर करने की चेष्टा की। संयत वाणी से वह बोले—"इसके लिए किसी को बाध्य किया नहीं जा सकता मिस्टर शशिनाथ! जब तक आपका खुशी था, आपने पढाया। मैं इसके लिए आपको मजबूर करने आया नहीं! लेकिन..."

"लेकिन क्या?" आश्चर्य से शशिनाथ बोले।

"अब आपका और सुमन का सम्बन्ध भी ऐसा है कि आप पढ़ा भी नहीं सकता था..." नारायणबाबू की वाणी जैसे रहस्यमय बनती जा जा रही थी।

कौतूहल से शशिनाथ ने प्रश्न किया—"क्या मतलब आपका नारायणबाबू?"

"अभी समझा देगा। अगर लड़का लोग इसमें कोई आवाज उठाता है, तो उनका इसमें कोई अपराध नहीं हो सकता..."

शशिनाथ की मुद्रा आश्चर्य में डूबी जा रही थी। नारायणबाबू धारा-प्रवाह रूप से बोल रहे थे—"मैंने बहुत जमाना देखा है। मैं भी एक दिन आपकी तरह युवक था। तब मैं कुँआरा था। मेरा एक लड़की से प्रेम हो गया। मैं सचमुच उससे प्रेम करता था..."

"आज आप क्या विषय ले बैठे हैं, मिस्टर चैटर्जी?" बीच में रोक-कर शशिनाथ ने पूछा।

"सुनो तो पहला!" नारायणबाबू का दायाँ हाथ जैसे शशिनाथ को मौन करने के लिए उठ गया; इतने में रमा चुपचाप फिर वहीं परदे की ओट में आ खड़ी हुई। नारायणबाबू कह रहे थे—"लेकिन मेरे माता-पिता चाहता था कि मैं एक और लड़की से शादी करूँ, क्योंकि वह अमीर घर का थी और जिससे मुझे प्रेम था वह सुशील, पर निर्धन घर का थी। समाज और घर का मैंने विरोध किया और अपनी प्रेयसी का

तोड़ा, समझे ! तुम्हारा सुमन का प्रेम है तो उसे छिपाते क्यों हो—हमें अन्तर्जातीय विवाह से कोई परहेज नहीं, शादी में देर क्यों किया जाय ?" शशिनाथ के लिए एकदम अप्रत्याशित और उलझन भरी समस्या उपस्थित करके नारायणबाबू के प्रश्न-भरे नेत्र उनके चेहरे पर ठहर गए। और रमा ने जब सुना तो उसकी आँखों के सामने गहन तिमिर के बड़े-बड़े धब्बे आपस में टकरा-टकराकर सारे वातावरण को आच्छादित कर चुके थे। विवेक-शून्य-सी अपने पर्यंक पर वह धम् से आ गिरी। लोचनों से अविरल जल-प्रवाह फूट पड़ा। सहस्रों वृश्चिकों के दंश की पीड़ा से तन-मन ऐंठने लगा।

शशिनाथ सुनकर हतबुद्धि-से रह गए। डुबकी लेता हुआ कोई तैराक जैसे घबराकर अपनी गरदन पानी से बाहर निकालकर जोर से हिला देता है, उसी प्रकार नारायणबाबू के प्रश्न से मुक्ति पाने के लिए शशिनाथ ने संघर्ष शुरू किया—"नारायणबाबू !" वह चीख पड़े—"आपसे किसने कहा कि मैं सुमन से प्रेम करता हूँ ? आपसे किसने कहा कि मैं उससे विवाह करने के लिए लालायित हूँ ? क्या आप नहीं जानते कि आपकी लड़की एक विवाहित युवक को अपने जाल में फँसाने की असफल चेष्टा कर रही थी और इसीलिए मैंने उसकी ट्यूशन छोड़ी है ?"

पुत्री की निन्दा सुनना नारायणबाबू के लिए असह्य था। जर्जर, अस्वस्थ होते हुए भी वह चीखकर बोले—"मैं इस पर विश्वास कर नहीं सकता, विश्वास कर नहीं सकता। आप कल तक उसे पढ़ाता था, उसके साथ टैनिस खेलता था, सिनेमा जाता था; उसकी गाड़ी में ही यूनिवर्सिटी से लौटता था। क्या पता आप उस पर डोरा डालता था या वह ? मुझे अपना लड़की के चरित्र पर पूर्ण विश्वास है, प्रोफेसर ! तुम-जैसा मनचला प्रोफेसर लोग ही छात्राओं को पथ-विचलित करता है। तुम उससे प्रेम करता था, या वासना···"

"बस, बस। नारायणबाबू, खामोश ! मैंने कभी सुमन को प्रेम नहीं किया। और उसने यदि कभी अपने मन में मेरे लिए कुछ रखा है, तो इसका दायित्व मुझ पर नहीं।"

"शशिनाथ, मैं बालक नहीं हूँ। देखो, आँखें खोलकर देखो···" एक आवेश के साथ नारायणबाबू ने जेब से फोटो निकालकर शशिनाथ की ओर फेंका—"यह क्या बताता है? पहले भोली बालिकाओं से प्रेम करना, उनका मन ठगना और फिर कह देना हम कुँआरा नहीं है?" घृणा से नारायणबाबू के होठ फैल गए—"मानवता के साथ बलात्कार करने वाले यवनों से तुम कहीं ज्यादा पतित हो, दुराचारी और पाखण्डी! पिशाच, राक्षस, कामुक!···" हाँफते हुए नारायणबाबू ने कुरसी का सिरहाना लगा लिया।

शशिनाथ के सामने वह फोटो देखते ही एकदम अँधेरा हो गया। ऊपर का श्वास ऊपर और नीचे का नीचे। पराजित भाव से वह बोले—"हाँ, नारायणबाबू! यह फोटो दिखाकर मुझे निन्दित, पापी, दुराचारी, पाखण्डी, पिशाच—कुछ भी कहा जा सकता है। पर इसकी असलियत आप नहीं जानते शायद···" कहते-कहते शशिनाथ के नेत्रों में मौलसिरी के वृक्ष के नीचे हँसकर हाथ मिलाते हुए सुमन और राजाराम का चित्र साकार हो उठा, "···यह सब आपकी लड़की और उसके चहेते राजाराम की शरारत है। मुझे बदनाम करने के लिए ही उन्होंने यह काली करतूत की है।"

"जरा बात दिमाग से करना चाहिए, मिस्टर शशिनाथ! आप क्या यह सोच सकते हैं कि एक कुँआरी लड़की, जिसकी शादी अभी होना है, किसी युवक को बदनाम करने के लिए उसके साथ अपना फोटो उतरवाएगी? ऐसी स्थिति में युवक निन्दित होकर भी समाज की निगाह में दोषी नहीं ठहराया जाता, पर युवती निष्कलंक होकर भी समाज के लिए कोप-भाजन बन जाता है। जैसा आप कहता है प्रोफेसर, क्या कोई लड़की ऐसी खतरा मोल ले सकता है? ··ले न सकता····ले न सकता···"

"ले सकती है, नारायणबाबू! प्रतिहिंसा की आग में जलने वाली नारी सब कुछ-कर सकती है। तब उसे पिता, माता, भगिनी, प्रेमी, पुत्र, पुत्री का कोई भी विवेक नहीं रह जाता; और सुमन ऐसी ही है, मैं जानता हूँ। मेरा ट्यूशन छोड़ देना उसने अपना अपमान समझा है।

इसका वह मुझसे बदला लेने चली है, पगली! पर उसने यह नहीं सोचा कि मुझे चिढ़ाने के लिए उसने स्वयं अपनी नाक काट ली है।" और तनिक आश्वस्त होकर शशिनाथ बोले—"आप मुझ पर विश्वास करें, नारायणबाबू! आपकी धारणाएँ निर्मूल हैं! मैंने केवल इसीलिए ट्यूशन छोड़ी है कि क्लास में जो लड़कों ने भ्रान्ति बना ली है, उसकी जड़ें तमाम यूनीवर्सिटी में न फैलें और सुमन-जैसी चरित्रवान लड़की व्यर्थ में बदनाम न हो। किसी के चरित्र के सम्बन्ध में—विशेषतः कुमारी के—यदि कोई झूठी बात फैल जाती है, तो आज की पापमयी दुनिया में उसे सत्य ही समझा जाता है। और फिर लोगों के मस्तिष्क पर पड़ी झूठ की वह काली छाप कभी धुलती नहीं। सौ मन साबुन से धोने पर भी कोयला सफेद नहीं होता। और यदि उस कलौंस में कुछ सत्यता है तो वह जलाने लगेगी, और सत्यता नहीं है, तो भी वह काला करेगी।...." शशिनाथ के इस प्रवचन को सुनकर नारायणबाबू के चेहरे पर आया क्रोध काफूर हो चुका था। धीरे-धीरे वह सौम्य हो चला। उन्हें लगा जैसे शशिनाथ ही सत्य कह रहे हैं। नारायणबाबू के मन से भ्रम की परतें छिन्न-भिन्न हो चुकी थीं।

और जब शशिनाथ ने कहा—"ये फोटो मेरे पास छोड़ जाइए। मैं सुमन को समझा दूँगा। उसने जो मार्ग अपनाया है, वह उसके अपने ही जीवन को अन्धकार के गहन गर्त में ढकेलने वाला है। नारायणबाबू, आप मुझ पर विश्वास कीजिए। झूठ का रंग जल्दी चढ़ता है, पर वह टिकता नहीं, लेकिन सत्य का शनैः-शनैः चढ़कर भी स्थायी होता है, शाश्वत!..." तो नारायणबाबू जैसे अपने ही अज्ञान पर लज्जित हो उठे।

"आप रख सकता है इसे। पर एक शर्त है, सुमन के अतिरिक्त यह किसी और को न दिखाया जाय। और बाद में मुझे ही लौटा दें," कुछ ठहरकर वह फिर बोले, "लेकिन आप क्या बिना फोटो के उसे नहीं समझा सकता?"

"फिर भी आप छोड़ दीजिए मेरे पास। मैं किसी को न

दिखाऊँगा। आप विश्वास करें।" शशिनाथ के स्वर में आत्म-विश्वास था।

नारायणबाबू उठ खड़े हुए। शशिनाथ उनके पीछे-पीछे जीने तक आये और सीढ़ियाँ उतरते-उतरते बोले—"पर नारायणबाबू, आपने यदि इस सम्बन्ध में सुमन से कुछ भी कह दिया तो असर विपरीत होगा···"

"नहीं, ऐसा भला कभी हो सकता है? हो न सकता···हो न सकता।···" और गाड़ी में बैठते-बैठते जब नारायणबाबू ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया तो वह स्वतः कहने लगे—"क्षमा कीजिए, मिस्टर शशिनाथ! मुझे आज ही पता चला है कि आप विवाहित हैं।"

गाड़ी आगे बढ़ गई। और अकेले जब शशिनाथ जीने की ओर मुड़े तो उनके मन में नारायणबाबू के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी; सुमन के प्रति उनका हृदय असीम घृणा से भर गया था। उसका स्मृति-संदर्शन भी वह अब सहन नहीं कर सकते थे। जितना विष वह पी चुके थे, उससे अधिक का अब समाई न थी। संकल्प-विकल्प के गति-शील चक्रों में घूमते हुए वह अपने कक्ष में आये। फोटो का लिफाफा मेज पर डाल दिया और परिक्लान्त मन को विश्राम देने के लिए पलंग पर लेट गए।

नौ

सद्य-स्नात सुमन का रोम-रोम सुवासित हो उठा। श्वेत गुलाब के रंग की काश्मीरी शॉल लपेटकर वह दर्पण से जगमग मेज के सामने बैठी शृङ्गार कर रही थी। मुख पर सुनहरा प्रातः खेल रहा था और पीछे निशा-सी अलकाएँ कंघी पड़ने से लहरा-लहरा उठती थीं। सौन्दर्य ने जैसे उस नवल तन में साकार रूप पा लिया था। शृङ्गार करते-करते उसका तन-मन, रोम-रोम पुलकित हो गया। हृदय में निर्मल प्रेम का

निर्झर झर-झर प्रवाहित होने लगा। राजाराम की स्मृति ने, सामीप्य ने, मृदुल संसर्ग ने, उसके जीवन की यमुना में मंजुल किलोलें उठा दीं। आत्म-विस्मृत-सी वह बड़ी सुघड़ता से अपने घुँघराले केश सँवारती रही। उसे लगा, मानो चुपचाप राजाराम उसके कक्ष में आ गया है। उसकी आँखें उसने सहसा अपने हाथों से बन्द कर ली हैं। एक मृदुल कोमल स्पर्श-सा वह अनुभव करने लगी और तब मुस्कराहट उसके गुलाब-से होठों पर नाच उठी—'छोड़ो जी! यह छेड़-छाड़ हमें नहीं सुहाती!' मन में जो यह भाव-चित्र बन रहे थे उनसे सुमन के मुख पर लज्जा का भाव मुखरित हो उठा। और तब उसे लगा जैसे 'वह' माँग में सिन्दूर भरकर चुपचाप अपनी चुटकी पीछे हटा चुके हैं। व्रीड़ा से तब वह और भी सकुचा गई। तभी घड़ी ने बजाये साढ़े आठ, और सुमन ने अपने सुखद सुहाने सपने की प्रत्येक सुकोमल पंखड़ी बड़ी सावधानी से सिमेट ली, हृदय में छिपा ली। यूनीवर्सिटी जाने का समय सन्निकट है। गाड़ी द्वार पर आ खड़ी हुई है। घोड़ी तब स्वभावतः हिनहिना उठी। सुमन ने रोली की चौड़ी बिन्दी लगाई। एक बार और केशों पर दोनों ओर हाथ फिर गए, जैसे 'उन्होंने' यह फूल-सी, रेशम-सी केश-राशि अपने हाथों से सहला दी हो। सुमन ने खड़े होते-होते अँगड़ाई ली और तब उसे दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब नहीं, राजाराम का मन्दहास से मुखरित मुख-मण्डल स्पष्ट दिखाई दिया। और वह पुस्तकें छाँटते हुए गुनगुना उठी—"मन-ही-मन में अंग लगाऊँ, दूर खड़ी शरमाऊँ!…"

उस दिन जो पुस्तकें साथ ले जानी थीं, वह सब सुमन ने इकट्ठी कर लीं। केवल अँग्रेज़ी कविता के नोट्स की कापी उठानी शेष रह गई थी और वही जब सुमन ने उठाई तो विस्मय से अवाक् रह गई। फोटो का लिफाफा कहाँ गया? किसने उठाया? या मैंने ही कहीं और रख दिया। घड़ी पौने नौ बजा रही थी। सुमन ने तब चिन्तित हो विद्युत्-गति से दराज़ें देखीं, आले, तापदान, पुस्तकें, कापियाँ यहाँ तक कि जहाँ फोटो मिलने की सम्भावना न थी, वहाँ भी उसने देखा। सुई पाँच मिनट और आगे बढ़ चुकी थी। 'ओह! वह मेरी प्रतीक्षा

में खड़े होंगे···'घबराहट से उसके मुख पर बहुत नन्हे स्वेद-कण झलक आए। मन में अनेक शंकाएँ उठने लगीं। 'किसी अवांछित व्यक्ति के हाथ में तो नहीं पड़ा? क्या बाबू तो इस कमरे में नहीं आये थे?··· नहीं, नहीं वह कभी इस कक्ष में नहीं आते।···और आते भी तो उनके लिए यह फोटो पाना सहज-सुलभ न था।···हाँ, देखते भी तो यहीं छोड़ देते···' सहसा तब उसने एक ही क्षण में देखा—'तापदान पर रखा पुरानी सैंडलों का बंडल अपने स्थान से खिसका हुआ है; यह गांधी जी का चित्र भी यथास्थान नहीं है, तनिक टेढ़ा होने से धूलि-कणों की रेखा ने पीछे की उजली दीवार को स्पष्ट कर दिया है। यह चित्र भी हटा है, और यह भी—सभी चित्र कुछ हिले हुए जान पड़ते हैं।' और तब सुमन को दराज़ में से अँगूठी निकालने की याद आई तो उसने दराज़ खोला। उसने प्लास्टिक की 'डी' के बीचों-बीच वह अँगूठी रखी थी और अब सेंट की पतली, अंगुली बराबर शीशी के पीछे वह दराज़ के कोने में पड़ी है, जैसे दराज़ किसी ने जोर से बन्द कर दिया हो। सुमन विस्मय से खड़ी-की-खड़ी रह गई। 'यहाँ कौन आया?'—मन बार-बार पूछ उठा।

"बिटिया···ओ···बिटिया," कोचवान ने आवाज दी, "इतनी देर आज क्यों लग रही है?" सुमन तब कुम्हला गई। फोटो न मिला तो मन दुर्भय से म्लान हो गया—'क्या बाबू कमरे में आये थे? अगर उनके हाथ फोटो पड़ गया तो क्या होगा?···' सोचते-सोचते वह ज़ीना उतर गई। चिन्तित मन से गाड़ी में आ बैठी। घोड़ी तब हवा से बातें करने लगी। कुछ क्षण बाद ही सुमन ने पूछा—"कोचवान, कल शाम बाबू किस डॉक्टर के यहाँ गये थे?"

"डॉक्टर के?" विस्मय से वह बोला, "डॉक्टर के तो नहीं गये थे बिटिया!"

"तब?" अचम्भे से नेत्र फाड़कर उसने ऊपर गरदन उठाई और दृष्टि तब कोचवान के नीले ब्लेज़र पर रुक गई।

"वहाँ गये थे, आश लेन में, प्रोफेसर साहब के घर···!" सहज भाव से कोचवान ने कह दिया।

"प्रोफेसर साहब के घर ?" सुमन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, "ठीक कह रहे हो ?"

"हाँ, हाँ, बिटिया ! मुझे ठीक पता है। लौटती बेला प्रोफेसर खुद गाड़ी तक विदा करने आये थे, बिटिया !"

"पर शशिनाथ के यहाँ जाने की बाबू को कल क्या आवश्यकता आ पड़ी ?" सुमन सोचने लगी—'क्या बाबू फोटो लेकर तो नहीं आये ?' मन ने पूछा और तब वह तीव्र उत्कण्ठा से प्रश्न कर बैठी—"क्यों गये थे—तुम्हें कुछ मालूम है ?"

"यह तो मुझे कुछ पता नहीं। पर हाँ, जब गाड़ी में बाबू बैठे लौटती बेला, तो प्रोफेसर को नमस्कार करते हुए उन्हें कहा था—'क्षमा कीजिए, मुझे आज ही पता चला है कि आप विवाह कर चुके हैं,' " कोचवान ने कह दिया।

सुमन के मन में उठे प्रश्न ने तब जैसे एक विशाल विराम का रूप ले लिया। सारी गुत्थी सुलझ गई। मन में कोई बोल उठा—'निश्चय ही बाबू को फोटो हाथ लग गया। शशिनाथ के यहाँ वह ही उसे साथ लेकर गए होंगे—' और फिर सुमन ने एक और प्रश्न किया—"क्या बाबू के पास कोई पत्र तो नहीं था ? मतलब उनके हाथ में था कुछ ?"

"नहीं बिटिया, बाबू के हाथ में तो कुछ नहीं था। परन्तु, प्रोफेसर ने जब दोनों हाथ उठाकर नमस्कार किया तो उनके हाथ में एक पीला-सा बड़ा लिफाफा ज़रूर था !"

"हुँः समझ गई !" सुमन खिन्न हो उठी। खीझ-भरा मन फिर पूछ बैठा— 'बाबू ने यह क्या किया ! वह क्यों प्रोफेसर के यहाँ गये ? उन्हें क्या जरूरत थी ?' कोचवान जैसे फिर कहने लगा, 'लौटती बेला बाबू ने कहा था—क्षमा कीजिए, मुझे आज ही पता चला है कि आप विवाह कर चुके हैं···' तो क्या बाबू विवाह का प्रस्ताव लेकर गये थे ? मन में फिर प्रश्न उठा। सुमन तब और भी व्यथित हो उठी—'और शशिनाथ के यहाँ से बाबू निराश लौटे····' मन ने ही फिर प्रश्न का उत्तर भी दे दिया। एक झटके के साथ तब गाड़ी रुक गई। छात्रावास आ

गया था। अगले ही क्षण राजाराम मुस्कराता हुआ गाड़ी में आ बैठा। और बोला— "आज कुछ देर हो गई तुम्हें; मिज़ाज तो ठीक हैं जनाब के?" प्रश्न करते-करते राजाराम ने देखा, प्राची की प्रातःकालीन अरुणिमा पर आज असमय ही मेघों की स्याह झलक क्यों फैल गई है? सदैव उत्फुल्ल रहने वाला मन आज परिश्रान्त क्यों? राजाराम के मन पर भी सुमन का मुरझाया चेहरा देखकर उदासी-सी छा गई। सुमन कुछ देर मौन रही, तब राजाराम सामने की सीट से उठकर सुमन की बगल में ही आ बैठा। उसकी आँखों में आँखें डालकर राजाराम ने फिर पूछा—"बोलती क्यों नहीं हो? आज तुम्हें काठ क्यों मार गया है?"

"अपनी ही मूर्खता पर आज मुझे पश्चात्ताप हो रहा है," सुमन की वाणी दीन थी।

"हुआ क्या आख़िर?" समवेदना से राजाराम बोला।

"वह फोटो जिससे हम प्रोफेसर की नाक काटने चले थे, पहले ही उनके पास पहुँच गया है।"

"हैं? क्या?" राजाराम का मुँह और नेत्र उस क्षण विस्फारित थे।

सुमन ने तब सारी घटना राजाराम को सुना दी। सुनकर वह मूक रह गया। कुछ ठहरकर फिर बोला—"अब?"

"तुम्हीं बताओ! योजनाएँ बनाने में तुम जितने सफल हुए हो, मैं तो नहीं हो सकती।"

"यानी आपकी यह योजना सफलीभूत होने से पूर्व ही अपरिपक्व अवस्था में फूट पड़ी, और अब जो बिगड़ चुका है, उसे मैं बनाऊँ," राजाराम ने सुमन को चिढ़ाया।

"देखो, समय थोड़ा है। यदि प्रोफेसर ने उस फोटो का कोई दुरुपयोग किया तो?" सुमन की वाणी से भय प्रकट था।

"प्रोफेसर इतना मूर्ख नहीं है कि अपने गले में आप फाँसी लगाये। वह कायर है, डरपोक। हमारा वह कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उस पर उल्टा लांछन लगाया जा सकता है," राजाराम ने उसे

विश्वास दिलाया। "इसमें घबराने की कोई बात नहीं। उसे यह तो पता ही नहीं कि फोटो किसने खींचा है।"

बीच में ही सुमन ने उसकी बात काट दी—"पर उसे यह फोटो मेरे बाबू ने दिया है और इससे मेरी शरारत स्पष्ट है।"

राजाराम तब मुस्कराया—"पर हमें अभी तो प्रिण्ट और लेने हैं और उनमें तुम जानती ही हो, फोटोग्राफर किसी और अनजान लड़की का चेहरा 'फिट' करके देगा। बस प्रोफेसर आक्रमण करेंगे तो हम प्रत्याक्रमण के लिए तैयार हैं। हमारे साथ सहपाठियों की कितनी विशाल सेना है; प्रोफेसर हैं एकाकी! एक ही बात उड़ाने से सारी यूनीवर्सिटी में उनके लिए अपयश का जाल बिछ जायगा। वह हर कदम पर गिरेंगे, फँसेंगे और तड़फड़ाएँगे। वह तो उस फोटो को बस शहद लगाकर चाटें। घबराने की कोई बात ही नहीं।" राजाराम के स्वर में साहस, आत्मविश्वास और निश्चय था।

सुमन पर जैसे शीतल जल की फुहार पड़ गई; उसकी एक-एक पंखुड़ी फिर खिल उठी। राजाराम तब कहने लगा—"पर यह समझ लो, उस फोटो के साथ जब तुम उनकी पुस्तक इलियट का कविता-संग्रह उन्हें लौटाओ, तो उनके रौब में न आ जाना?"

"मैं रौब में आ जाऊँ उनके?" दम्भ से सुमन बोली—"देखना, अब यूनीवर्सिटी से बाहर नजर आयेंगे।" दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। और फिर किञ्चित् गम्भीर हो राजाराम ने प्रश्न किया—"क्या बाबू ने तुमसे इस सम्बन्ध में कुछ कहा है?"

"नहीं तो।"

"तब तुम भी उनसे कुछ कहना-सुनना नहीं, समझीं!"

जैसे ही सुमन और राजाराम विश्वविद्यालय के द्वार पर गाड़ी से उतरे वैसे ही प्रोफेसर शशिनाथ की साइकल द्वार के अन्दर घूम गई। राजाराम ने उनकी ओर देखा और प्रोफेसर ने उसकी ओर। राजाराम की आँखों में तब उपेक्षा का हास्य था। शशिनाथ की मुद्रा पर तिरस्कार का भाव खेल गया। सुमन का पल्ला गाड़ी के फाटक में उलझा रह गया था। वह उसे निकालने लगी थी। राजाराम ने जब

तक उसकी कमर मे अँगुली घुपोकर उस ओर देखने का संकेत किया, प्रोफेसर शशिनाथ आगे निकल चुके थे। सुमन-राजाराम एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्करा दिए। घण्टी बजने मे अभी दस मिनट की देर थी। हॉल की ओर जाते-जाते सुमन को प्रभा गंगोली मिल गई और राजाराम तब उनसे अलग हो गया।

कुछ ही क्षणों बाद सुमन की प्रेरणा से प्रभा शशिनाथ के कक्ष में जा पहुँची। उसे देखते ही शशिनाथ ने कृत्रिम हास बिखराते हुए कहा—"क्यों, कोई काम था ?"

"काम ?" प्रभा ने वाणी में शिष्टाचार का भाव लाते हुए कहा, "हाँ, प्रोफेसर साहब !" मन की हँसी को रोककर प्रभा कह रही थी—"आप तो जानते ही हैं, प्रोफेसर साहब, मैं अंग्रेजी-इतिहास में काफी कमजोर हूँ। इस टैस्ट (परीक्षा) में भी मेरे अंक बहुत थोड़े थे।…"

बीच में शशिनाथ बोल पड़े—"तुम्हें किसी प्रकार की सहायता चाहिए तो चौथा पीरियड मेरा खाली रहता है…"

प्रभा भी तब उन्हें बीच में ही रोककर बोली—"मैं चाहती थी प्रोफेसर साहब, कि आपने सुमन का ट्यूशन तो छोड़ दिया; दो मास मुझे ही पढ़ा दें।"

"नहीं, नहीं," प्रोफेसर को जैसे नागिन ने फन मार दिया हो, वह चौंककर कुरसी पर उछल पड़े—"मैं अब ट्यूशन-ट्यूशन के झगड़े में नहीं पड़ता। दूध का जला छाछ को भी फूँककर पीता है। और फिर लड़कियों का ट्यूशन…नहीं, नहीं। मिस प्रभा, जाइए। घण्टी बज गई।"

प्रभा बाहर आते ही अपनी हँसी न रोक सकी। कुछ ही अन्तर पर खड़े सुमन-राजाराम के साथ वह हॉल की ओर चल दी। पर राजाराम रास्ते में अकेला रुक गया। प्रार्थना के समय वह अकेला अपने वर्ग के कक्ष में था।

शशिनाथ जब बी० ए० के वर्ग को पढ़ाने चले तो सोच रहे थे—'ये लड़कियाँ अजीब हैं। जरा पता लगा कि गिड़गिड़ाने चली आईं। कोई छात्र नहीं आता। और फिर मुझे ट्यूशन की आवश्यकता ही क्या ?

सुमन को तो नारायणबाबू के विशेष आग्रह से पढ़ा रहा था।···और विचार-मग्न वह बाएँ द्वार से 'क्लास-रूम' में घुसे। बाईं ओर ही लगा 'ब्लैकबोर्ड' तब पीछे की ओर पड़ गया। उस ओर उनकी दृष्टि न गई। उपस्थिति लेने के बाद वह पढ़ाने लगे। मदाम क्यूरी के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए वह भारतीय नारी की अनुन्नत दशा का वर्णन करने लगे। वह कह रहे थे—"भारतीय नारी साधारणतः चूल्हा-चक्की की ही हो रहती है। विदेशों में नारियों ने शिल्प, कला, कौशल, शिक्षा, विज्ञान, हर क्षेत्र में सराहनीय प्रगति की है।···" और यह प्रवचन करते-करते उन्होंने देखा, जिस छात्र पर भी उनकी दृष्टि जाती है, वही मन्द-मन्द मुस्करा रहा है। लगातार उन्होंने यह देखा, तो मन में शंका हुई। भाषण करते-करते उन्होंने अपनी टाई, वेश-भूषा, जूते, सब पर निगाह डाली। सब-कुछ ठीक है। फिर क्यों हँस रहे हैं आज ये सभी? क्या सुमन का कोई षड्यन्त्र आरम्भ हो गया है? और जब शशिनाथ ने कहा—"हमारी नारियों के पास साधनों का अभाव है, इसमें सन्देह नहीं; पर विदेशी नारियों में हर क्षेत्र में प्रगति करने की जो उत्कण्ठा, लालसा और साहस है, वह भारतीय नारी में देखने को भी नहीं," तो सुमन के पास बैठी एक छात्रा गरदन झुकाकर हँस पड़ी। शशिनाथ ने रुष्ट होकर पूछा—"हँसी क्यों आ रही है, मिस शर्मा?"

मिस शर्मा दाँतों से होठ भींचते हुए खड़ी हो गई। उसने क्षमा माँगी, पर प्रोफेसर शशिनाथ ने उसे कक्षा से बाहर जाने की आज्ञा दे दी। कक्षा में एक क्षण स्तब्धता छा गई। फिर वह पढ़ाने लगे। पर यह क्या? छात्रों के चेहरे अब भी नित्य की भाँति गम्भीर नहीं हैं। उनका मन फिर उचाट हो गया। सहसा उनके मुँह से निकल गया—"आज आप सब कुछ गम्भीर नहीं जान पड़ते। क्या बात है?" इतना प्रश्न करना था कि पीछे की बैंचों से एकदम जोर से हँसने की आवाज़ आई। उसी क्षण उनका चेहरा रोषाग्नि से तमतमा उठा। पीछे की बैंच पर बैठे हरिप्रसन्न को सम्बोधित करते हुए वह चीख पड़े—"क्यों हँसते हो? जवाब दो। क्या अनुशासन नाम की कोई चीज आज यहाँ नहीं रह

गई ? मैं तुम पर पाँच रुपया जुर्माना करता हूँ। क्लास से बाहर चले जाओ, नालायक !"

हरिप्रसन्न जब मुस्कराता हुआ बाहर की ओर चला तो उसकी टकटकी ब्लैकबोर्ड की ओर लगी थी। प्रोफेसर शशिनाथ ने उसकी आँखों का भाव पढ़ा और गरदन अपने पीछे लगे ब्लैकबोर्ड की ओर घुमा दी। शशिनाथ ने पढ़ा, उलटे विरोमों के बीच लिखा था—'दूध का जला छाछ को भी फूँककर पीता है। हमने अब कोमलांगिनियों के व्यूशन करना छोड़ दिया है।' शशिनाथ का एक-एक रोम क्रोध की आग में झुलस गया। "हरिप्रसन्न," वह दहाड़े, "ठहरो, यह किसने लिखा है ?"

हरिप्रसन्न एकदम रुक गया। दृढ स्वर में वह कहने लगा—"मुझे नहीं पता।"

"अच्छा, अपनी जगह बैठो।" और दूसरे ही क्षण वह बोले—"जिसने भी यह लिखा है, खड़ा हो जाय।"

कक्षा में अमावस्या की रात्रि का-सा सन्नाटा छा गया। कोई खड़ा नहीं हुआ। तब प्रोफेसर शशिनाथ ने सब पर एक निगाह डाली। सुमन, गंगोली, मिस कपूर आदि की गरदनें नीचे थीं। प्रोफेसर को कक्षा में राजाराम दिखाई न दिया। लेकिन वह तो उपस्थित था, मन ने कहा। तब प्रोफेसर ने रजिस्टर खोलकर दुबारा उपस्थिति लेनी आरम्भ कर दी। राजाराम का नाम आया तब कोई न बोला। शशिनाथ ने उसका नाम तीन बार पुकारा। फिर भी कोई उत्तर नहीं। तब वह चीख पड़े—"पहले कौन 'प्रॉक्सी' बोला था ?"

पर इसका उत्तर कौन देने वाला था उन्हें ? शशिनाथ ने झींखकर रजिस्टर बन्द कर दिया। वह कुरसी से उठ खड़े हुए और काँपते हाथों से उन्होंने ब्लैकबोर्ड साफ कर दिया; क्लास छोड दी। और उनके जाते ही सब जोर से हँस पड़े।

कुछ देर बाद लड़कों ने नोटिस-बोर्ड पर लगा एक पर्चा पढ़ा, जिसका आशय था, राजाराम पर कक्षा में उपस्थित न रहकर 'प्रॉक्सी' बुलवाने

के लिए प्रोफेसर शशिनाथ ने बीस रुपये जुर्माना किया है। छात्रों में तब एक सनसनी-सी फैल गई।

तीसरा पीरियड समाप्त होने पर जब शशिनाथ बी० ए० प्रथम वर्ष की कक्षा छोड़कर अपने कमरे में आये तो उनका मन बड़ा अशान्त था। मस्तिष्क उस घटना से झनझना उठा था। उद्विग्न मन से वह कमरे में आकर बैठ गए। विचारों के बादल घुमड़ने लगे। सुमन उनमें बिजली बनकर कौंधने लगी। राजाराम के प्रचण्ड झंझा ने मस्तिष्क के जैसे एक-एक तन्तु को झकझोर दिया था—'तो यह राजाराम ने लिखा''''पर मैंने जो-कुछ प्रभा से सुबह कहा था'''वही'''यानी प्रभा भी इस खेल में अपना पार्ट अदा करने लगी है'''और हरिप्रसन्न भी, मिस शर्मा भी''''' धीरे-धीरे सारी कक्षा के छात्र उनके सामने घूम गए। सब हँस रहे हैं—'तो क्या सारी क्लास की सहानुभूति सुमन को प्राप्त हो चुकी है ?'''' दाँत किचकिचा उठे शशिनाथ के। भावावेश में उन्होंने घण्टी बजाई। रामभरोसे उपस्थित हो गया।

गरजकर शशिनाथ बोले—"उस बंगाली लड़की को बुला लाओ, अपने कमरे के बाहर ही अभी कहीं होगी।"

सरल स्वभाव से रामभरोसे बोला—"वही, जौन दूध भिजवाए रही ?"

शशिनाथ तिलमिला उठे—"हाँ, जल्दी बुला लाओ।"

जिज्ञासा से भरी सुमन उनके सामने आ खड़ी हुई। शशिनाथ ने प्रताड़ना के स्वर में उससे पूछा—"यह राजाराम ने लिखा था ?"

"मुझे पता नहीं," सुमन ने तिरस्कार का भाव प्रदर्शित किया।

"अच्छा," प्रोफेसर अपने कोट की जेबें टटोलते हुए कहने लगे, "मुझे तुमसे कुछ और भी काम था'''"

सुमन ने देखा कि जेबें टटोलते हुए प्रोफेसर शशिनाथ कुछ व्यग्र हो उठे हैं। कुछ ठहरकर वह बोले—"खैर ! कल सही। तुम कल इसी समय मुझसे मिलना।" और सुमन गरदन झटकाकर बाहर चली गई। शशिनाथ तब अपने से प्रश्न कर उठे—"क्या मैं फोटो भूल आया ?"

दस

वज्रपातसम दारुण दुःख के वेग से रमा का अविरल अश्रु-प्रवाह रोके न रुका। हृदय-पीड़ा प्रकट करने में जब सारी इन्द्रियाँ अपनी हार मान चुकीं, तो शोक से क्षुब्ध होकर रोने के अतिरिक्त रमा के पास और रह भी क्या गया था! इतने दिनों से वह जो साधना कर रही थी, आज जैसे सब निष्फल हो गई। उसकी मूक तपस्या से देवता पिघला नहीं; पत्थर बन गया। निर्मम कठोर निष्ठुर हृदय में उठे श्रद्धा के भावों की सरिता सूख गई थी। अश्रद्धा की कीच ने जैसे उसका स्थान छीनने की ठान ली थी। नारायणबाबू का प्रस्ताव सुनकर उसके हृदय को जो आघात पहुँचा उससे शोक-सरिता फूट निकली। रोते-रोते रमा के आँसू सूख गए। शिथिल शरीर धीरे-धीरे अचेत-सा हो चला। जिसका प्रेम पाने के लिए वह जीवन हार चुकी है, वही आज विमुख हुआ, किसी और दीप-ज्योति पर शलभ-सा गिर पड़ा है। रमा के कानों ने जो-कुछ सुना है, वह शिलालेख की भाँति हृदय-मस्तिष्क पर अमिट बन अंकित हो गया है। अपने ही घर में रमा आजअकिंचन बन गई है। कौन उसे गृह-लक्ष्मी कहता है? उसका अहिवात आज अचल होकर भी खण्डित है। घर की एक-एक चीज उसका उपहास करने लगी। कमरे की दीवारों से क्रूर अट्टहास का स्वर फूट पड़ा। रमा विह्वल हो उठी। पीड़ा-स्रोत फिर तरल हो गए। पर वह प्रवाह अब कहाँ था?

रवि ने जब आकर पुकारा—"भाभी! फिर अकेली पड़ी रो रही हो न? तुम मुझे क्या अपना दुःख बटाने नहीं दोगी?" तो रमा मशीन-वत् उठ बैठी। "कुछ ऐसी-वैसी बात नहीं भैया! आज दो-तीन उल्टियाँ हो गई थीं; पेट बहुत दर्द कर रहा है। चलो, खाना परोस दूँ।..."

रवि का हृदय सहानुभूति से भर आया—"मैं कैल्शियम की गोलियाँ लेता आया हूँ। आप नियमपूर्वक खानी शुरू कर दें और दूध भी बढ़ा दें। कल से संतरे भिजवा दिया करूँगा। उनका रस पी लिया करना..."

रमा को पलंग से उठते देखकर रवि भाभी की ओर बढ़ गया। र मा की दोनों बाँहें उसने अपनी बलिष्ठ भुजाओं से पकड़ लीं और उसे पलंग पर बैठाते हुए बोला—"तुम्हारे पेट में तकलीफ है भाभी ! खाना तो बना रखा ही है, मैं आप ले लूँ मा ने फिर भी उठने की चेष्टा की। पर रवि के स्नेहपूर्ण आग्रह ने उसे वहाँ से हिलने न दिया। रवि ने देखा, भाभी की देह शिथिल और ठंडी है, नेत्र सूज रहे हैं, जैसे वह अभी-अभी हृदय की आर्त-दीनावस्था पर समवेदना बरसा चुके हों। वह स्तम्भित रह गया। मन में आया—'क्या भाभी रोती रही हैं ?' और उससे पूछे बिना रहा न जा सका।

पर रमा ने मन की घुण्डी न खोली। "नहीं रवि," वह आश्वस्त हो बोली, "बस पेट में अभी बहुत दर्द था। कुछ ऐसी बात नहीं है।" पर रमा रवि की ओर देख न सकी।

रवि उसकी सशंक और विवर्ण मुद्रा देखकर जैसे मनोगत भावों रहस्य जान गया। वह स्वयं भी भाभी के पास पलंग पर ही बैठ गया। स्वर में किंचित् मिठास लाकर रवि बोला—"भाभी, बात कुछ जरूर है, पर मुझसे छिपा रही हो।"

रमा कृत्रिम हँसी हँसकर कहने लगी—"वैसे ही, कोई बात हो तब न !"

"अच्छा न बताओ," रवि ने मुँह बनाया।

तभी रमा को उबकी आई। रोते-रोते उसका जी मिचलाहट से कड़वा हो आया था। रवि भाभी की कमर सहलाने लगा और रमा जब तनिक सँभली तो रवि ने हठ किया—"मैं भी जब तक दिल की बात जान न लूँगा, तब तक खाना नहीं खाऊँगा भाभी !"

रमा असमंजस में पड़ गई। पलंग से नीचे लटके हुए उसके दाएँ पैर का अंगूठा तब फर्श कुरेदने लगा।

इतने में रवि ने फिर आग्रह किया—"देख लो भाभी, तुम्हारा य मौन अब मुझसे नहीं सहा जा रहा है। बताइए, वरना मैं भैया से पूछूँगा।"

 रमा तब काँप गई। "नहीं, नहीं, बताती हूँ; भैया से कुछ न

पूछना। उनके सुनहरे सपनों को गहन-गगन की अबाध उड़ान भरने दो।"

"बोलो फिर, बताओ क्यों रो रही थीं।"

"मैं बता दूँगी। तनिक धीरज रखो भैया! देखो, पहले खाना खाओ···" रमा ने बात टालने का प्रयास किया।

"नहीं, मन को शान्ति नहीं मिलेगी, भाभी! खाना खाया न जा सकेगा।"

"ये तुम्हारा दुराग्रह है रवि! कोई बात बताने की होती है और कोई नहीं। देवरानी होती तो मैं उसे बता भी देती।"

इस देवरानी वाली बात ने रवि को परास्त कर दिया। वह समझा, भाभी के मन में इस समय जो-कुछ गोपनीय है, वह एक नारी को ही बताया जा सकता है। उसे लगा कि जैसे उसकी चेष्टा अनधिकारपूर्ण है। वह अपने पर लज्जित हो उठा।

"कहीं प्रबन्ध करें तुम्हारे भैया तो इस घर में भी शहनाइयाँ बजें," रमा ने मुस्कराकर कहा।

रवि तब लजाता हुआ बाहर चला गया। 'भैया अपना दायित्व जाने कब समझेंगे,' मन-ही-मन वह बड़बड़ाया।

और रमा फिर अकेली रह गई थी। दुःख की घटाएँ फिर घिरने लगीं। रवि उन घिरते मेघों में एक बार अपनी क्षणिक झलक दिखाने फिर आ गया। "यह है कैल्शियम की डिब्बी।" रवि ने मेज पर वह रख दी और विवशता से घिरकर वह बोला, "अकेले-अकेले खाना कुछ अच्छा नहीं लगता···"

"तो दुकेला तलाश क्यों नहीं करते?" रमा बोली।

"बस भाभी, हर वक्त मजाक?" रवि चिढ़कर चला गया।

रमा तब कैल्शियम की डिब्बी देखकर अपने-आपको सँभाल न सकी। अभी-अभी रवि जो प्रेमपूर्ण आग्रह कर गया है, सहानुभूति और समवेदना की जो जीवनदायिनी राशियाँ बिखेर गया है, वह नारायणबाबू और शशिनाथ के संवाद की कटु स्मृति से धूमिल हो गई हैं। रमा के रोम-रोम में वह वाक्य रम गया, समा गया। नारायणबाबू उसके कानों

के अति समीप आकर कह रहे थे—'जब तुम्हारा और सुमन का प्रेम है तो उसे छिपाते क्यों हो ? फिर शादी में देर क्यों ?···' बस, बस अब और सुना नहीं जा सकता। रमा ने दोनों हाथों से अपने कान बन्द कर लिए। पर वह आवाज तब और भी तेज़ हो गई। कानों को पूरी शक्ति से दबा वह धम् से पलंग पर गिर पड़ी। नेत्र फिर डबडबा आए। नियति का क्रूर अट्टहास सुनकर कलेजा छलनी हो गया। विधि को यही अभीष्ट था, तो मुझे इस घर में क्यों भेजा उसने ? क्या यही दिन देखने के लिए मैं जीवित रही हूँ ? भगवान् ने मुझे अभावों की प्रतिमा बनाकर मेरा ऐसा घोर अपमान किया तो क्यों किया ? मुझे धनी परिवार में भेजा होता, तो इतना निरादर न होता।···रमा तब लीलामय की लीला पर अश्रु बहाने लगी। उसका वाष्प-गद्गद् कण्ठ रुँध गया। शरीर जैसे अपनी सत्ता खो चुका था। उसने देखा—शशिनाथ के पीछे-पीछे मन्थर गति से चलती हुई अभी तक जो रमा अग्नि-शिखा की परिक्रमा दे रही थी, पर अब रमा का स्थान सुमन ने ले लिया है। द्वार पर शहनाइयाँ बज र हैं। कदलि-स्तम्भों से सजी वेदी के बीच तब सुमन ने अपने नूतन सौन्दर्य से रति की छवि भी लजा दी है। रमा की वहाँ कोई बात भी नहीं पूछता है। वह कहाँ है, किसी को पता नहीं। सब अपने-अपने काम में बेसुध हैं; मग्न। और यह रवि भी जो अब तक सहानुभूति के ढोल पीटता था, आज कितना आनन्द-वभोर है ! सबके स्वप्नों की रानी सुमन आज साकार होकर इस घर में आ गई है। उसका गृह-प्रवेश अपने साथ जैसे सारे संसार की निधि इस घर में ले आया है—उसके आते ही प्रांगण में सुषमा-सी बिखर गई है। रमा को देखकर कभी न मुस्करानें वाला शशि सुमन पर सुधा बरसाने लगा है। और वह रूपगर्विता घर की सजावट में भारी रद्दोबदल करने के बाद अब अपना शासन अच्छी तरह जमा चुकी है। पलंग से कभी भूमि पर पाँव रखने की आवश्यकता उसे अनुभव नहीं होती। मुँह से आदेश निकले देर नहीं होती है, लगता है नौकर-चाकर पहले से ही वह काम कर चुके होते हैं। श शिनाथ के कमरे में जाने को उसे कोई ज़रूरत नहीं हुई। शशिनाथ ही स्वयं उसके पास आते हैं। कभी

तबियत नहीं लगती, तो पियानो के मिसरी-से स्वर से सारे भवन को मधु-सा मीठा बना डालती है। नित नई रंग-बिरंगी साड़ियों में वह तितली-सी सुकुमार, सुकोमल अपने कक्ष में ही इठलाती फिरती है। जिस दिन से आई है, रसोई में जाकर झाँकी नहीं। रमा रोटी सेकती है और बड़ी सुघड़ता से थाली परोसकर उसके कक्ष में मेज पर धर आती है। फिर भी नित्य-प्रति कोई-न-कोई खोट-बुराई सुमन निकाल देती है। रमा का अपमान करते हुए उसका मुख सौन्दर्य के लावण्य से जैसे और भी मुखरित हो उठता है। होते-होते एक दिन ऐसा आया कि सुमन ने रमा को अपशब्द कहने शुरू कर दिए। शशिनाथ में हस्तक्षेप करने का साहस कहाँ था? फिर सुमन ने एक दिन रमा को चाँटा भी मार दिया। रमा ने कातर हो अपनी जिह्वा खोली तो सुमन ने कोख पर लात मारी। रुष्ट हो कहा—'घर से निकल जा चुड़ैल···' एकदम हड़बड़ाकर रमा उठ बैठी। टन्, टन···टन्-टन! उसने 'बैड-स्विच' दबा दिया। घड़ी चार बजा रही थी। 'सुबह का सपना····' रमा चौंक पड़ी। 'सुबह का सपना सत्य होता है,' फुसफुसाहट के स्वर में उसके मुख से निकला। शरीर पसीने से तर हो रहा था। रमा का हाथ अपनी कोख पर आ गया। कोई पीड़ा नहीं। तब क्या स्वप्न ही में वह पीड़ा से कराह उठी थी? 'मैंने यह क्या देखा? मैंने यह क्या देखा राम?' वह बड़बड़ाने लगी। घर में एकदम सन्नाटा था। बाहर भी गहन अंधकार! नील गगन की असंख्य तारिकाओं ने भी रात्रि के हृदय का तिमिर-पट हटाने में हार मान ली थी। रमा का शरीर फिर और भी शिथिल हो गया। नेत्रों के सामने निराशा का गहन अन्धेरा था। विचारों की शृङ्खला ने उसे जकड़ लिया। मन में कोई बोल उठा—'सौत की सेवा करोगी तो कुत्तों-जैसी रोटी पर पड़ी रहोगी, वरन् धक्के मारकर निकाल दी जाओगी। समझीं?···' नहीं, नहीं, ये अपमान भगवान् नहीं सहाये। मरना भला है। जन्म-भर माँ के यहाँ रह लूँगी। पर सौत की सेवा नहीं करूँगी। जिसकी मूक साधना समीप से की है, उसी की तपस्या अब दूर रहकर कर लूँगी। पर उनकी नवविवाहिता इस घर में आकर मेरा अपमान करे, यह हो नहीं सकता। सुमन को लाकर वह

फिर से घर बसाएं, सुख से रहें, मुझे इससे क्या ! पर मेरे लिए तब यहाँ कोई ठौर नहीं होगा। मैं उनके बीच खटकने वाला काँटा बनकर नहीं रहूँगी…' रमा फूट-फूटकर रो पड़ी थी।

उस स्वर्णिम विहान में सूर्य-रश्मियाँ नित्य की-सी ही प्रभा बिखेरती चली आईं। वसुधा से मंद गंध आ रही थी, जिससे वातावरण में नई स्फूर्ति फैलने लगी थी। विहग-वृन्द क्रीड़ा-कलरव करते हुए गगन में उड़ रहे थे। उनकी मीठी चहक से जागरण फूट पड़ता था। पर रमा का मुरझाया हृदय-जलज कुम्हलाया ही रहा। सूर्य की किरणें सूखे तालाब में कमल नहीं खिला सकतीं। वह मशीनवत् अपने काम में लगी रही। रवि आठ बजते-बजते दुकान को भाग गया। शशिनाथ कालेज की तैयारी में थे। नारायणबाबू के प्रस्ताव की स्मृति ने उनकी वाणी भी कुण्ठित कर दी थी। सुमन को समझाने का जो गुरुतर दायित्व वे अपने कन्धों पर ले बैठे हैं उसे कैसे पूरा किया जाय, यही समस्या उनके मस्तिष्क को उलझाये रखने के लिए पर्याप्त थी। रमा की पीली, दुःख की छाया से आम्लान मुद्रा को देखने का अवकाश उन्हें कहाँ था ? रमा का दिया हुआ पान वह उस दिन की भाँति आज भी यों ही छोड़ गए।

कुछ विलम्ब से रमा जब एक दिन पहले पहने गए सूट को सँभालकर अलमारी में रखने गई तो अनादृत पान देखकर आँखें छलछला आईं। एक प्रतिध्वनि-सी उसे सुन पड़ी—'अब मेरे हाथ का पान क्यों अच्छा लगने लगा ! उसने अपने ही हाथों से वह पान मसल डाला, फेंक दिया। कोट-पैण्ट की तह करने के लिए जब रमा पलंग पर झुकी, तो लगा जैसे कमर दर्द के मारे फट जायगी। हैंगर से उतारी हुई पैण्ट को झाड़कर उसने अलमारी में रख दिया। कोट की तह अब करने लगी। पर तह ठीक नहीं हो रही थी। रमा को तब जेब में कोई चीज रखी अनुभव हुई। एक सफेद लिफाफा अगले ही क्षण उसके हाथ में था। कौतूहल-भरा मन उसे खोलने के लिए उत्सुक हुआ। और रमा ने जब वह फोटो देखा तो उस पर मानो बिजली टूट पड़ी। क्षणमात्र

 तन-मन, रोम-रोम में झुलस गया। इन्द्रियाँ उस क्षण कर्मशून्य हो

गई; विवेक खो गया। अँधेरे ने उसे लपेट लिया। विवाह पक्का हो चुका है। सुमन ने उसके शशिनाथ को अपना बना लिया है···मन में यह विचार आते ही रमा का शरीर कुछ चेष्टा करने लगा। एक बार उसने फोटो को फिर ध्यान से देखा।···और यह तो वही साड़ी है जो मेरे लिए लाये थे?···रमा विद्युत्-गति से अलमारी का वह खन देखने लगी जहाँ उसकी कुछ मूल्यवान साड़ियाँ रखी थीं। उसने तीव्रता से सब खखोड़ मारा। साडी होती तो मिलती। 'तो उसका अभी से इस घर की चीजों पर अधिकार हो गया है।···रमा के तन में निराशाजन्य साहस से स्फूर्ति आ गई। वह अब इस घर में दासी बनकर नहीं रहेगी। पति के लिए मन में जो सेवा-धर्म था, उससे विरति का जन्म हुआ। रमा ने तत्काल शशिनाथ की मेज पर रखे फ्रेम में से अपना वह फोटो निकाल लिया जिसमें उसने बंगला ढंग से साड़ी लपेटी थी। शशिनाथ-सुमन का चित्र उस फ्रेम में उसने लगा दिया। पास ही एक पत्र रख दिया और अपना छोटा अटैची-केस लेकर वह घर से बाहर निकल गई। हृदय में जो तूफान उठा था, वह उसे उड़ा ले चला। निर्जन सड़क पर उसने अपने ओवर कोट की जेब में हाथ डाला। टिंचर आयडीन की शीशी का स्पर्श हुआ और उसका चेहरा पीला पड़ गया। 'नहीं,' मन समझाने लगा, 'तुम तो स्टेशन पहुँचने का संकल्प मन में लेकर निकली हो। उस निर्दोष की भी हत्या क्यों?'···रमा की दृष्टि तब अपने पेट पर गई। हृदय भर आया। उसने जेब से वह शीशी निकालकर पुलिया के नीचे फेंक दी और जल्दी-जल्दी कदम उठाकर स्टेशन को जाने वाली सड़क पर घूम गई।

खाना खाने जब रवि नित्य की भाँति घर आया, तो वहाँ एकदम सन्नाटा था। दहलीज में पैर रखते ही अचानक उसका माथा ठनका। हृदय में शंका ने स्वतः डेरा जमा लिया था। जीना चढ़ते-चढ़ते उसने पुकारा—"भाभी!"

पर कोई उत्तर नहीं मिला। रवि ने और भी जोर से आवाज दी—"भाभी! ओ भाभी! सो गई क्या?" आप-ही-आप बड़बड़ाया। कोई उत्तर नहीं, कोई प्रतिध्वनि है तो यही 'भाभी—ओ भाभी!' रवि

व्याकुल-सा हो एक-एक कमरा झाँकने लगा। रसोई में नहीं, नीचे बैठक में भी नहीं, अपने कक्ष में नहीं, भैया के कक्ष में भी नहीं, स्नानागार में नहीं···कहाँ चली गई···? वह एकदम फिर करुण हो चिल्ला उठा—"कहाँ हो भाभी, बोलती क्यों नहीं? क्या नया मजाक कर रही हो?···" और प्रतिध्वनियाँ लौट-लौटकर उसके कानों से टकराने लगीं। तब वह फिर बावला-सा एक-एक कमरा झाँकने लगा। फिर भैया के कमरे में आया। ठिठककर खड़ा रह गया। कमरा नित्य की भाँति जमा हुआ नहीं, कुछ उखड़ा-सा, अस्त-व्यस्त है। रवि कमरे की एक-एक चीज को ध्यान से देखने लगा। तब उस मेज़ पर रखे फ्रेम ने उसे आकृष्ट किया। जिस फुर्ती से दरिद्र लुटती हुई निधि को समेटता है, ऐसे ही रवि ने वह फ्रेम उठा लिया। देखा तो सन्न रह गया, काटो तो बदन के स्नायुओं में खून नहीं। "भैया!··· यह बंगाली लड़की!" उसके मुँह से चीत्कार निकल गई। अगले ही क्षण उसने मेज पर रखा लिफाफा उठा लिया। खोला, रमा की लिखाई! अवाक्-सा वह पढने लगा—

"रवि भैया! कल तुम बड़ा आग्रह करके पूछ रहे थे। पर लो, अब समय आ गया है, तुम्हें बता दूँ। तुम्हारे भैया ने अब तुम्हारे लिए नई भाभी खोज ली है। जल्दी वह इस घर में आ जायगी। नारायणबाबू कल आये थे। सारा प्रबन्ध कर गए हैं। उसका स्वागत करने के लिए तैयार रहो। मैं भी उपयुक्त अवसर पर उसकी टहल करने आ जाऊँगी। यहाँ रहती तो सम्भवतः मेरी तपस्या में विघ्न पड़ता। मेरे देवता मेरे लिए साकार होकर भी निराकार बन गए हैं। इसीलिए उनके समीप रहने में भी अब कोई लाभ नहीं था। निराकार की उपासना कहीं दूर रहकर ही करनी ठीक है। जिस दिन मेरी भक्ति से मेरे निराकार द्रवित होंगे, मैं उन्हें पा लूँगी। सदा-सर्वदा के लिए वह फिर मेरे हो जायँगे। तुम्हारे भैया और नई भाभी सुखपूर्वक रहें, यही मेरी कामना है। मेरी अभिलाषा और तपस्या के मार्ग में तुम कोई बाधा न डालना। तुमसे इतनी ही विनय-प्रार्थना है।—तुम्हारी भाभी!" पढ़कर रवि पागल की तरह चिल्ला उठा—"भाभी!" वेदना से उसके नेत्र भर आए। घड़ी की ओर उसने देखा—साढ़े ग्यारह बजे हैं। एक विचार बिजली की तरह

चमक गया—'दिल्ली-एक्सप्रेस का टाइम है। क्या भाभी अपने मायके चली गई हैं, दिल्ली ?...' एक क्षण रवि निरुपाय-सा खड़ा रह गया। कुछ देर बाद रवि साइकल उठा स्टेशन की ओर दौड़ रहा था। मन तरह-तरह की शंकाओं से घिरा था। कहीं भाभी ने आत्मघात कर लिया तो ?...भैया ने कितनी बड़ी मूर्खता की है !...भाभी की इस दयनीय, करुण स्थिति पर विचार कर वह भैया के प्रति क्रोध से तिलमिला उठा। पसीने से डूबा हुआ जब वह स्टेशन पहुँचा तो गाड़ी छूटने के लिए तैयार थी। कुछ क्षण पूर्व ही वह इंजन की हृदय-विदारक सीटी सुन चुका था। साइकल-स्टैण्ड पर साइकल पटककर जितनी देर में वह प्लेट-फार्म पर टिकट बिना लिये भी अन्दर पहुँचा, गाड़ी चल दी। उसने प्लेटफार्म पर पहुँचते-पहुँचते भी पहचाना आगे की तरफ एक सैकण्ड क्लास के डिब्बे में कबूतरी रंग की साड़ी पहने अटैची केस हाथ में लिये भाभी-जैसी एक महिला, जिसका क़द, अंग-सौष्ठव सभी भाभी-जैसा है, चढ़ी है।

खिन्न, निराश, सनीर-नयन वह घर की ओर लौट आया। वह भूल गया कि अभी उसने खाना नहीं खाया है। घर उसे खाने दौड़ा। भैया को अभी इसी समय कालेज से वह बुला लायगा। उनसे इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए कहेगा। रवि के रहते वह सुमन से कभी विवाह नहीं कर सकते। 'कल इसी गाड़ी से मैं भाभी को वापस लेने जाऊँगा।' और अब वह सोचने लगा कि—'भाभी कल रात क्यों रो रही थीं, अब समझ में आ गया। किस प्रकार चुप-चुप उन्होंने अब तक सब-कुछ सहन किया। और आज वह अपने धर्म को समझकर, उसका निर्वाह करने के लिए, अपने पति का मार्ग साफ करके चली गई हैं।' रवि यूनी-वर्सिटी की ओर जा रहा था—'काश, भाभी में चुप रहने की आदत न होती। ऐसे पति को सबक सिखाने की प्रवृत्ति नारी में नहीं है, तो उसे गला घोंटकर मर जाना चाहिए। तिल-तिलकर जलना और फिर भी पति-आराधना का गर्व करना, कोरा दम्भ है। कोरा दम्भ !....पर भाभी गयी हैं तो उन्हें लाना ही होगा। भैया की भी भूल कम नहीं है ? मूक रहने वाली साध्वी की तपस्या ठुकराना क्या पुरुषत्व है ? यदि पतिव्रता बनी

वह चुप-चुप सब-कुछ सहन करती है, तो क्या इसलिए कि पुरुष उस सहनशीलता के कूप में अत्याचारों के ढेले भरता रहे। उसकी निष्ठा, नियम, धर्म, सबकी उपेक्षा करके पुरुष कृत्रिम शिष्टाचार, वासना और विषय की दलदल में फँसकर सुख माने, तो वह अन्धा है, हृदयहीन है, अधम है। अपने सामाजिक बन्धनों को तोड़कर, लचीला बनाकर जिस स्वतन्त्रता का उपयोग वह करता है, उसी के लिए नारी का आह्वान करके क्या पुरुष समस्त सामाजिक व्यवस्था को, विधान को, छिन्न-भिन्न करने के लिए उद्यत नहीं है? और जब नारी पुरुष-जैसी स्वतन्त्रता भोगने के लिए उसके ही संकेतों पर चल पड़ती है, तब यह दम्भी पुरुष उसे पतिता, पथ-भ्रष्टा, दुश्चरित्र सब-कुछ कहकर उसके पैर काटने के लिए भी तैयार हो जाता है? क्या इसका कोई निराकरण नहीं है? समाज की यह कैसी दुरवस्था है! कैसा त्रुटिपूर्ण विधान है! और फिर नारी प्रायश्चित्त करके भी उस स्थान को नहीं पाती, जहाँ से पुरुष ने उसे गिरा दिया है। और पुरुष दिन में सौ बार गिरकर भी, वहीं उसी उच्चासन पर विराजमान रहता है। क्यों? ऐसा क्यों है? यह गलत है। पुरुष का बनाया विधान उसके स्वार्थों की रक्षा के लिए है; उसमें परमार्थ की भावना नहीं है। नारी को समान स्तर पर लाकर भी वह स्वार्थ-साधन के लिए तत्पर है।...भैया ने जो-कुछ किया, उसके परिणामों को नहीं सोचा। उन्हें इसका प्रायश्चित्त करना होगा—करना ही होगा।...' भावावेश में रवि भैया के कक्ष में घुसा चला गया। शशिनाथ सिर झुकाये कुछ लिख रहे थे। रवि को देखकर उनके काम में विघ्न पड़ा। चौंक पड़े—"तुम आज कैसे आये जी?"

रवि ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। कठोर कण्ठ से वह कह रहा था—"मेरे साथ घर चलो, इसी वक्त।"

"क्यों? ऐसी क्या बात है? मुझे अभी कुछ ज़रूरी काम था।..."

"आपने सुना नहीं, मैं क्या कह रहा हूँ?" रवि की वाणी में रोष था।

 शशिनाथ कुछ कहना ही चाहते थे कि इतने में सुमन कमरे में आ

गई। रवि ने लाल आँखों से एक पल के लिए उस ओर देखा। सुमन एक अनजान को अपनी ओर इस तरह देखते कुछ सहमी। घबराहट के साथ तभी शशिनाथ कहने लगे—"फिर आना, अभी कुछ ज़रूरी काम है।"

"पर आपसे कहने आई थी कि कल इसी समय मैं नहीं आ सकूँगी। बताऊँ क्यों?" सुमन ने अहम् भाव से कहा।

"समझा करो सुमन, फिर आना।"

'सुमन' नाम सुनकर रवि ने एक बार पुनः कुपित नेत्रों से उसे देखा और एकदम चिल्ला पड़ा—"जाओ, जाओ, तुम्हारा आना अब बहुत गुल खिला चुका, जाओ कृपा करो।"

सुमन यह अपमान कैसे सहती। तुरन्त उसने कोड़ा-सा फटकारा—"शटअप (चुप रहो)! यह कौन गँवार है प्रोफेसर साहब, इसे बोलने की तहज़ीब भी नहीं।"

रवि ने दाँत पीसे। शशिनाथ ने झुँझलाकर हाथ जोड़ने का अभिनय किया—"माफ करो, सुमन, मैं इन्हें समझाऊँगा। तुम अब चली जाओ।"

सुमन चली गई। रवि तब भृकुटि तानकर बोला—"अब मैं भी चला। आप सुमन से ही बातें करें। यही बात न होती, तो आज ऐसी नौबत ही क्यों आती?" रवि द्वार की ओर घूम गया।

शशिनाथ तब विकल हो उठे। "ठहरो रवि मैं भी चलता हूँ। तुम बताओ तो, आखिर हुआ क्या है?"

"मुझे बताने की ज़रूरत क्या है? आप सब-कुछ जानते हैं। जो होना था, सो तो हो चुका। और आगे क्या होगा, यह भी मैं अभी से देख रहा हूँ।..." रवि कमरे से बाहर निकल आया; साइकल उठाकर चल दिया। तब शशिनाथ से रहा न गया। विभाग के अध्यक्ष से अवकाश प्राप्त कर वह घर की ओर चल दिए। सुमन-रवि की झड़प से वह बहुत लज्जित हो रहे थे। रवि ने जो-कुछ कहा, वह उनके लिए गूढ़ रहस्य बन गया। उसका अभिप्राय था क्या आखिर—'जो होना था, सो हो चुका और आगे क्या होगा, यह भी मैं अभी से देख रहा हूँ।'

रवि क्या कह रहा था यह ? घर कौनसा काम है ? क्या रमा ने कुछ कर तो नहीं लिया ? समझ में नहीं आता। मैं किस-किसको मनाऊँ ?···क्या करूँ, क्या न करूँ ? मन में अशान्ति, घर में भी अशान्ति, यहाँ यूनीवर्सिटी में भी अशान्ति ! शशि के चारों ओर ये ज्वालाएँ क्यों धधक रही हैं ?···

शशिनाथ घर पहुँचे तो रवि ताला खोलकर ऊपर चढ़ रहा था। रवि के पीछे-पीछे वह भी एक आतुरता से जीना चढ़ गए।

रवि मौन था। गम्भीर, मंथर गति से वह भैया के कक्ष की ओर बढ़ रहा था। शशिनाथ उसके पीछे-पीछे चले। रवि को मौन देखकर वह स्वयं ही पूछ बैठे—"अब बोलते क्यों नहीं ? क्या हो चुका है ? क्या होना है ? एक पहेली-सी छोड़कर चले आए ?"

"हाँ, जो आप सुलझा चुके हैं, वह मेरे लिए पहेली ही है भैया ! मँगनी हो चुकी, ब्याह होना है ?"

"किसका विवाह ? साफ-साफ कहो, मै अपने काम में हर्ज करके आया हूं।"

"ठीक है, सुमन से भेंट न होना जीवन की सबसे बड़ी हानि है।" और तब रवि ने अपनी कठोर वाणी को और भी गम्भीर बनाते हुए कहा—"साफ-साफ आपको कहना है या मुझे ? साफ-साफ कहो, सुमन इस घर में कब आयगी ताकि मैं भी यहाँ से चला जाऊँ ?"

"रवि !" शशिनाथ एकदम चीख पड़े—"आज तुम होश में नहीं हो क्या ? इस सारी बकवास का मतलब क्या है ?"

"यह रौब आज नहीं चलेगा भैया ! प्रेम ऐसा ही अंधा होता है। इसमें होश बेहोश हो जाता है। मेरा प्रश्न सही है; मैं इसका साफ-साफ उत्तर सुनना चाहता हूं।"

"रवि, मैं तुम्हारा प्रश्न नहीं समझ सका।"

"क्यों समझोगे ? समझ होती तो क्या लड़कियों को पढ़ाते फिरते ?"

"बन्द करो यह बकबास। मैं यह सब नहीं सुनना चाहता। अगर दिमाग ठीक नहीं तो दुकान बन्द करके आराम करो।" आगे-आगे रवि

और पीछे-पीछे शशि, दोनों उस कक्ष में आ गए थे।

"भैया, जो-कुछ मैं कह रहा हूँ उसे खुले कानों से सुनने की कोशिश करो, दिमाग बिगाड़ो नहीं।···यह देखो—"रवि ने फोटो-फ्रेम की ओर संकेत करके होंठ चबाते हुए शशिनाथ को लताड़ा—"जिस पाप को तुम आज तक छिपाते रहे हो, वह आज पके व्रण की नाईं फूट गया है।···"

शशिनाथ अब हतप्रभ और हतबुद्धि-से खड़े रह गए। उन्होंने देखा वहीं मेज के नीचे एक और फोटो के टुकड़े-टुकड़े बिखरे पड़े हैं। मस्तिष्क चकरा गया। रवि कह रहा था—"अब समझ गए? तुम्हारे कर्मों से आज भाभी का जीवन संकट में पड़ गया···"

शशिनाथ विचलित होकर बीच में ही बोल पड़े—"क्या हुआ रमा को? रमा!" उन्होंने पुकारा।

"यह नाटक खेलने का समय अब नहीं रह गया है। इस बनावटी परेशानी और बौखलाहट दिखाने से मैं प्रभावित नहीं हो सकता। न ही मुझे प्रभावित करने की विशेष आवश्यकता है।···अब तो यह बताइए कि सुमन देवी इस घर की शोभा कब बढ़ायँगी और मैं कब तक किनारा कर जाऊँ।···भाभी ने आपका रास्ता साफ कर ही दिया है।"

"जले पर नमक न छिड़को रवि, तुम्हें कोई भ्रम हुआ है!··· रमा!" शशिनाथ ने पत्नी को फिर पुकारा। अब शशिनाथ का स्वर तनिक विचलित था।

रवि ने उस क्षण भाभी का पत्र शशिनाथ की ओर बढ़ा दिया, "लो, पढ़ो इसे, और कहीं मुँह दिखाने का ठौर रह गया हो तो वहीं चले जाओ।" शशिनाथ पत्र पढ़ रहे थे और रवि धारा-प्रवाह कहे जा रहा था—"आज समझ में आया कि आप बंगाली फैशन क्यों पसन्द करते थे, क्यों चाहते थे कि भाभी बंगला सीखें, क्यों सुमन का ट्यूशन किया जाता था, क्यों उसके साथ सिनेमा देखे जाते थे। कल नारायण-बाबू आकर क्या तय कर गए हैं?···"

पत्र पढ़कर शशिनाथ के मुख की हवाइयाँ उड़ गईं। पर रवि के मुख से जो अग्नि-वर्षा हो रही थी, उसे वह सहन नहीं कर सकते थे।

रवि को मौन करने की चेष्टा में उन्होंने कहा –"रमा को बड़ी जबर्दस्त भ्रान्ति हुई है !···और तुम्हें भी ···"

"रहने दो भैया ! अब आपका यह धोखा चल नहीं सकता। भाभी की साड़ी सुमन के पास कैसे पहुँच गई। और अभी-अभी मैं जो-कुछ देख-सुनकर आ रहा हूँ, वह क्या मेरी धारणाओं को झुठला सकता है ? आपको यदि बंगाली लड़की से प्रेम था, तो फिर एक निरीह कुमारी का हाथ क्यों पकड़ा ? आपने क्या रमा को कभी अपना बनाने की चेष्टा की थी ? आप स्वयं चरित्र-भ्रष्ट होकर कहते हैं भाभी को भ्रान्ति हुई। क्या आप भूल गए, भाभी कुछ दिनों बाद माँ बनने वाली हैं ?"

"रवि, सुनते-सुनते मेरा सिर घूम चला है। अपनी जबान बन्द करो। अगर गई तो अच्छा हुआ। लौट आएगी झक मारकर !"

"यह आप क्या कह रहे हैं भैया ? चली गई तो अच्छा हुआ ! और फिर अपने को निष्पाप भी सिद्ध करना चाहते हैं। क्या आपके इस पाप का कोई प्रायश्चित्त है ?"

"मेरी जान ले लो रवि, पर ये तीर मत चलाओ। मेरा दिमाग अब ठिकाने नहीं है," कहते-कहते शशिनाथ की वाणी कातर हो गई।

पर रवि कहता गया—"आपका दिमाग तो तब ठिकाने था जब आप तिल-तिल करके भाभी की जान ले रहे थे। आपने क्या नारायण-बाबू को शादी का वचन नहीं दिया ? सुमन को आप अपने कमरे में अकेली क्या सबक पढ़ाने बुलाते हैं ?"

"रवि, रवि ! चुप रहो। मैं सही कह चुका हूँ, मेरा-सुमन का कोई सम्बन्ध नहीं, कोई सम्बन्ध नहीं ! नारायणबाबू कल विवाह का प्रस्ताव लेकर अवश्य आये थे, लेकिन···"

"बस यह लेकिन ही अविश्वसनीय है। विवाह का प्रस्ताव तुमने ठुकरा दिया, यही तो कहा चाहते हो न ? विवाह तो एक से हो चुका। पर प्रेम सौ से भी हो सकता है। और फिर भी चरित्र निष्कलंक रहा आता है ! क्या यूनीवर्सिटी की पढ़ाई और नौकरी का यही अर्थ है भैया !···अगर प्रेम करते हो तो छिपाते क्यों हो ? बोलो—जवाब दो !"

रवि ने आज जैसे अनुज होकर भी अग्रज का अधिकार प्राप्त कर लिया था।

"जब तुम मुझे दोषी ही ठहरा चुके हो तो फिर मैं क्या जवाब दूँ," शशिनाथ ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा, "पर मैं फिर भी यही कहता हूँ, जो-कुछ तुम्हें दीख रहा है वह असत्य है, मृग-जल की तरह असत्य !···"

"तो क्या कल सुबह की गाड़ी से भाभी की खोज में दिल्ली जाओगे ?" रवि ने जैसे उनकी परीक्षा लेनी चाही।

किंचित् झिझक से शशिनाथ बोले—"एकदम तो छुट्टी का प्रबन्ध होना बहुत कठिन है।"

"बस भैया, देख लिया। यही आपका प्रेम है ? यही दायित्व है ? यही कर्तव्य है ? पत्नी सहसा घर छोड़कर अज्ञात स्थान को चली गई है, और आप कहते हैं, अच्छा हुआ, झक मारकर आयगी। और ढूँढने के लिए छुट्टी नहीं मिल सकती···"

"मैंने यह सब रवि, अपनी परेशानी में कह दिया था। तुम जाओ कल। रमा को लौटा ले आओ। यदि अब तक उसे मेरी ओर से आत्म-दान नहीं मिला, तो अब मिलेगा। अब तक मैं उसके निकट न आया, तो अब वह मेरा सामीप्य पा जायगी। वह मेरी है और रहेगी। मैं उसका हूँ और रहूँगा। वह चाहेगी तो यूनीवर्सिटी छोड़ दूँगा। ये शहर छोड़ दूँगा। पर परमात्मा के लिए वह किसी तरह लौट तो आए, मुझे क्षमा तो कर दे।···" कहते-कहते शशिनाथ द्रवित हो गए। कंठ भर आया। रवि ने तब जैसे अपना उत्तर पा लिया था। वह कल प्रातः भाभी की खोज में चला जाने वाला है, इसका प्रबन्ध करने वह कक्ष से बाहर चला गया।

अकेले पड़े-पड़े तब शशिनाथ सोचने लगे—'क्या मेरे तनिक-से निश्चय ने तमाम जीवन के लिए मेरे मुख पर कालिमा लगा दी है ? यदि छोकरों की आवाजों को अनसुनी करके मैं सुमन को पढ़ाता रहता तो क्या बिगड़ जाता ?···' तभी अन्तर से कोई बोल पड़ा—"नहीं तुम गिर रहे थे। सुमन का व्यसन छोड़कर अच्छा किया। पर आगे

तुमसे बात सँभल न सकी। तुम डरपोक हो, कायर, निकम्मे···पौरुष-विहीन····तुम्हारे मन में चोर है काला।' शशिनाथ आत्म-ग्लानि से भर गए। अन्तर की यह कैसी प्रवंचना ! और तब जैसे वह स्वयं भी स्वीकार करने लगे—'हाँ, तुम्हारे चरित्र में ही कुछ है। नहीं तो सुमन, रवि, रमा, नारायणबाबू, राजाराम, मिस शर्मा, सारी क्लास-की-क्लास, सभी मुझ पर सन्देह क्यों करते हैं ? मुझे सुमन के चरित्र पर शंका क्यों ? राजाराम-सुमन को साथ देखकर मेरे मन में दूषित भावना क्यों आ गई···दोष मेरा है—दोष मेरा है। रमा को मैं अपना न बना न सका—उसके निर्मल प्रेम का मूल्य मै निर्बुद्धि आँक नहीं सका। रमा, तुम जहाँ-कहीं भी हो लौट आओ···मेरे अपराध का तुमने बहुत भारी दण्ड दे दिया है। मुझे क्षमा करो, मुझे क्षमा करो··" अन्तर्द्वन्द्व शान्त होते-होते शशि-नाथ के नेत्रों में पश्चात्ताप के जल-कण छलक आए। और तब सहसा दृष्टि चली गई मेज की ओर, रमा का फोटो टूक-टूक हुआ पड़ा था। 'रमा अपना फोटो क्यों फाड़ गई ? क्या इस घर में उसने फोटो छोड़ना भी उचित न समझा ? ओह !···मैं उसकी निगाह में एक फोटो का अधिकारी भी नहीं रहा। सचमुच उसका हृदय भी क्या इस फोटो की तरह टुकड़े-टुकड़े हो गया है।···' फिर मन में भय, शंका और चिन्ता ने अपना डेरा लगाया····'और यदि रमा कहीं भावना में बहकर आत्म-घात कर बैठी तो ? ओह !···वह माँ बनने वाली थी ! उसने मुझसे पूछा तो होता ? क्या पत्नी होने के नाते अपना इतना भी अधिकार न समझा कि वह अपने मन का भेद खोलकर मुझसे कुछ पूछती ? पर उस मूक तपस्विनी का इसमें क्या दोष ? जब मैंने ही अपना विश्वास खो दिया तो वह मुझसे पूछकर ही क्या करती ? मैंने उसकी उपेक्षा की···वह जितनी उदार बनी मैं उतना ही निष्ठुर बना !···पत्थर ! मेरा विवेक तब कहाँ चला गया था ? मैंने सुमन की साड़ी लाकर उसके सरल हृदय के साथ छल किया, धोखा किया। अपने जीवन में कृत्रि-मता लाने की चेष्टा में मैंने उसका पल-पल दुःखदायी बना दिया। रमा, मैंने जान-बूझकर तुम्हें धोखा दिया हो तो मैं अपराधी हूँ। मुझे क्षमा करो, मेरे मन की कालिमा धो डालो अपने स्वच्छ प्रेम

से···' शशिनाथ पश्चात्ताप से जलने लगे। और तभी अचानक उन्होंने देखा—अलमारी में टिंचर आयडीन की शीशी नहीं है। वह जाल में फँसे विहग की तरह आकुल हो गए, 'क्या रमा सचमुच अब नहीं लौटेगी—पर रवि ने उसे गाड़ी में चढ़ते देखा है; फिर यह शीशी कहाँ गई? रमा···तुम ऐसा न करना—हरगिज न करना। जहाँ भी हो लौट आओ···लौट आओ···' शशिनाथ तब बालकों की तरह रो पड़े।

ग्यारह

दूसरे दिन प्रभा-राजाराम सात बजे से कुछ पूर्व ही सुमन के यहाँ पहुँच गए। सुमन कुछ क्षण पूर्व ही शयन-कक्ष मे बाहर आई थी। घुँघराले केश मुक्त भाव से गौर वर्ण मुख पर झूल रहे थे। साड़ी और चोली भी दोनों कुछ विशेष कसी हुई न थीं। चमकते हुए अलता से जगमग कोमल चरण नीचे फर्श को छूने वाली साड़ी की इठलाती लहरों मे से कभी-कभी चमक जाते थे। रोली की चौड़ी बिंदी को सम्भवतः नींद से अलसाये हाथ का अल्हड़ स्पर्श मिल गया है और वह सारे ललाट पर अपनी रश्मियाँ बिखेर चुकी है। कभी-कभी जब सुमन उबासी लेती है तो कमर जैसे स्वतः बल खा जाती है। नित्य-कर्म से निवृत्त होने के पश्चात् अब चाय पीनी है गरम-गरम—दालचीनी और छोटी इलायची की सुगन्ध से सुवासित।

"तो रानीजी अब सोकर उठी हैं," प्रभा ने उसे देखते ही छेड़ा।

"शी-शीः···!" सुमन ने तब ओठों पर अँगुली रख जैसे प्रभा को धीरे बोलने का संकेत किया। और दूसरे ही क्षण उनके समीप आकर वह बोली—"बाबू रात को बहुत देर से सो पाए हैं; अभी शायद उनकी नींद खुली नहीं है।···तबियत कुछ अच्छी नहीं।··· हाँ, आओ···इधर बैठें ड्राइंग-रूम में।"

सोफे पर बैठते-बैठते सुमन ने आँखों में हास भरकर पूछा—"आज यह सवारी सुबह-सुबह कैसे चली आ रही है?" वह राजाराम की आँखों

में झाँकने लगी, जैसे उसी से अपने प्रश्न का उत्तर चाह रही थी।

राजाराम तैयार था। तत्परता से बोला—"वह संकल्प संकल्प नहीं होता जिसके मूर्त होने का दिन प्रतिदिन टलता जाय। मैं समझता हूँ, आप मेरा आशय समझ गई होंगी।"

"तुम हर जगह पहेलियाँ बुझाया करते हो। साफ-साफ बताते क्यों नहीं, काम क्या है ? क्यों किसी भले आदमी के घर सुबह-सुबह आ धमके हो ?" प्रभा ने सखी का पक्ष सबल बनाने की दृष्टि से कहा।

"यह भी कोई बताने की बात है ? क्या ऐसी कुशाग्र बुद्धि अपने ही मस्तिष्क से उद्भूत योजनाओं को विस्मृत कर सकती है ?" राजाराम ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा।

"हुँः, जाने भी दो," प्रभा उपालम्भ के स्वर में बोली, "ये तो ऐसी ही गड़बड़ बातें करते रहेंगे। चैटर्जी, वक्त थोड़ा है। आज हमें नेताजी स्क्वायर में चन्दा और वस्त्र इकट्ठे करने हैं न! सहायता-समिति के आठ-दस सदस्य हमें वहीं चौराहे पर आठ बजे मिल जायंगे। तुम जल्दी से तैयार हो जाओ···" प्रभा एक ही साँस मे कह गई।

"बात तो ठीक है," सुमन बोली, "पर मैं कैसे चल सकती हूँ ?"

"क्यों ?" राजाराम और प्रभा ने एक साथ प्रश्न किया।

"बाबू की तबियत ठीक नहीं है। सम्भव है, मैं आज कालेज भी न जाऊँ।" सुमन की वाणी में विवशता थी।

"हुआ क्या बाबू को ?" राजाराम ने पूछा।

"बारीसाल में सम्पत्ति नष्ट होने का समाचार जिस दिन से मिला है, बाबू का दिल बैठ गया है। और फिर इनके एक अभिन्न मित्र का परिवार-का-परिवार काल-कवलित हो गया है। इन दोनों सन्देशों को पाकर बाबू के हृदय पर भारी आघात पहुँचा है।·· डॉक्टर घोष कल कहते थे, यदि इन्हें प्रसन्नता देने वाली कोई घटना इधर न हुई तो स्वास्थ्य गिरने का भय है।..." कहते-कहते सुमन उदास हो गई।

समवेदना ने प्रभा-राजाराम को एक क्षण के लिए मौन बना दिया। तभी महाराजिन चाय रख गई। प्रभा उस क्षण सब-कुछ भूलकर उस मूल्यवान क्रॉकरी को देखती रह गई। राजाराम प्यालों में चाय डालते

हुए बोला—"बाबू के स्वास्थ्य का पूरा पूरा ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। रक्त-चाप तो नहीं है ?"

"कुछ मामूली-सा है तो," सुमन ने गम्भीर वाणी में कहा, "डॉक्टर घोष दस बजे तक शायद आएँ भी।"

"तब ठीक है, तुम न चलो। कालेज के बाद मैं भी तुम्हारे पास आ जाऊँगी," प्रभा बोली और चाय का प्याला अपने अधरों से लगाते-लगाते सुमन किंकर्तव्यविमूढ़ की नाईं कह उठी—"आखिर इस पाशविकता का अन्त भी है कहीं ?"

"जब तक दोनों देशों में आर्थिक तन्त्र अत्यन्त सुदृढ़ न होगा, इसकी पुनरावृत्ति रोकना कठिन है।" प्रभा ने जताया कि वह अर्थ-शास्त्र की छात्रा है।

"मैं तो और लोगों की तरह यह मानता हूँ कि अल्पसंख्या को सुरक्षा देने वाले नेहरू-लियाकत-समझौते से स्थिति उत्तरोत्तर सुधरती जायगी," राजाराम बोला।

सुमन बीच में तुनककर बोली—"इन समझौतों से कुछ नहीं बनता। गांधीजी ने इसी पूर्वी बंग की भूमि पर पैदल यात्रा की थी। युग-पुरुष का यह शान्ति-मिशन इतिहास की कसौटी पर सच्चा कहाँ उतरा ?"

"यह कोई बात नहीं मिस चैटर्जी," राजाराम ने कहा, "इस समझौते का परिणाम अभी से ही सामने आने लगा है। दोनों ओर से अल्पसंख्यकों का निष्क्रमण रुक गया है।"

"लेकिन यह कोई स्थायी हल नहीं है, आपको मानना पड़ेगा···" सुमन ने दृढ़ता से कहा। घड़ी ने साढ़े सात बजाये। आगे बढ़ने वाली सुइयों ने राजाराम-प्रभा को भी स्थिर न रहने दिया। "और बहस करना हँसी-खेल भी तो नहीं।" प्रभा भी हँसती हुई खड़ी हो गई।

सुमन उनको द्वार तक विदा करने आई। और राजाराम ने मुस्करा-कर 'नमस्ते' का अभिनय किया, तो वह बोली—"देखिए पास ही प्रोफेसर साहब का मकान भी है।" उसकी आँखों में आँखें डालकर वह मुस्करा दी।

सुमन साथ न आई थी तब भी राजाराम उत्फुल्ल था। प्रभा के साथ जब वह 'नेताजी-स्क्वायर' पहुँचा तो साथियों ने धन एकत्र करने का काम शुरू कर दिया था। छात्रों के हाथों में कपड़े के बोर्ड और चित्रित गत्ते दूर से ही दिखाई दे जाते थे। कुछ छात्र-छात्राओं के पास टीन के छोटे डिब्बे थे, जिनके कुण्डो पर सीलबन्द ताले लटकाकर गुल्लक बना लिया गया था। मोहल्ले के लोग दूर प्रान्त की पीड़ित मानवता के सहायतार्थ हार्दिक उदारता से धन-वस्त्रादि दे रहे थे। रामभरोसे और मैकू यूनीवर्सिटी के दो चपरासियों के कन्धों पर पुराने कपडों की पोटलियाँ भारी होती जा रही थीं। प्रभा और राजाराम के वहाँ पहुँचते ही एक ध्वज उन दोनों को भी सौंप दिया गया। उस पर लिखा था—'नेहरू-लियाकत-समझौते को सफल बनाओ—बंग पीडितों को बसाने के लिए धन दीजिए।' राजाराम ने सुमन के न आने का कारण बताया तो सभी साथी जैसे एक साथ कह उठे—"इस स्क्वायर पर भाषण फिर तुम्हें देना होगा, समझे!"

"हाँ, मिस्टर राजाराम! आप इस चूडीदार पायजामे, कुरते और काली शेरवानी में सचमुच हमारे 'एम्बेसेडर' हैं। आपका प्रभावपूर्ण भाषण होते ही हर मकान की खिड़की से धन बरसेगा," प्रभा ने उसकी पीठ ठोककर कहा।

"भाइयो और बहनो!...." राजाराम ने शुरू किया। स्क्वायर का यातायात धीरे-धीरे रुकने लगा। प्रतिपल बढते हुए जन-समुद्र के बीच खड़ा राजाराम कह रहा था—"अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए, आर्थिक संकट की ओर से जनता का ध्यान विचलित करने के उद्देश्य से पूर्वी पाकिस्तान के धर्मान्ध नेताओं ने असामाजिक तत्वों को भडका-कर वहाँ से हिन्दुओं को खदेड़ा है। दस लाख हिन्दू असहाय अवस्था में भारत-माँ की गोद में शरण लेने आ पड़े हैं। उनके पास खाने को दाना नहीं, तन ढकने को कपडा नहीं। सर्वस्व स्वाहा हो गया उनका। हमारे यहाँ कुछ प्रान्तों में प्रतिशोध की ज्वालाएँ धधकीं। पर उन्हें शीघ्र शान्त कर दिया गया। मानवता के नृशंस संहार की रोक-थाम के लिए नेहरूजी ने पाकिस्तान को विवश किया है। अल्पसंख्यकों की

"हाँ, बाबू," विनम्रता से प्रभा बोली।

"राजाराम ?" नारायणबाबू ने दोहराया—कुछ स्मरण हो आया उन्हें—"यही क्लास में फर्स्ट आया था न ?"

"हाँ बाबू, बहुत कुशाग्र बुद्धि हैं। फ्रेन्च, जर्मन, बंगला, मराठी और गुजराती सारी भाषाएँ जानते हैं।"

"सच ?" श्रद्धा से नारायणबाबू ने पूछा।

"तो सुमन से अच्छी दोस्ती है ?"

"बहुत अच्छा है बाबू !"

"क्या अच्छा है ?" तभी सुमन ने कमरे मे आते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं," नारायणबाबू ने बात टालते हुए कह दिया, "क्या मिस्टर राजाराम चला गया ?"

"हाँ !"

"ओह !" नारायणबाबू की वाणी में खेद था।

"तो अब मुझे भी आज्ञा दीजिए, बाबू," प्रभा ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

"चलोगी ?···अरे सुमन, प्रभा को थोड़ा जल-पान तो कराओ। और देखो, अभी न जाना प्रभा, मेरा मन आज बहुत खुशी-खुशी है। तुम जल-पान करो। फिर सुमन पियानो पर मुझे एक भजन सुनाएगी।"

सुमन और प्रभा दोनों कमरे से बाहर आ गईं। आनन्द-विभोर-से नारायण बाबू बगल का तकिया अंक में रख उस पर अँगुलियाँ नचाने लगे, जैसे कुछ अलाप रहे हों।

बारह

सैकण्ड क्लास के उस डिब्बे में थर्ड क्लास से भी कहीं अधिक भीड़ थी। इतनी भीड़ कि सीट तक पहुँचते-पहुँचते भी रमा की श्वेत रेशमी साड़ी की लाल पाइपिंग पटरी के पास से उधड़ गई। बाएँ कपोल पर केशों की एकाध लट बिखर आई थी। अटैची को सीट के

और आगे की अलमारी में राजाराम ने देखा कि बर्नार्ड शॉ के दस-पन्द्रह नाटक-संग्रह रखे हैं। बीच के खन में स्टीवन्सन का पूरा 'सेट' रखा था। और यहाँ खड़े-खड़े राजाराम की दृष्टि शशिनाथ के कक्ष के भीतर की मेज़ पर चली गई। सुमन और शशिनाथ का फोटो ? अपनी ही कारीगरी के चमत्कार का यह प्रदर्शन देखकर वह स्तम्भित रह गया। दबे पैर तब वह कमरे में घुस गया। पीछे-पीछे प्रभा भी गई। एक ही क्षण में राजाराम ने देखा—कमरा अस्त-व्यस्त है। अभी पौने नौ बजे तक भी सम्भवतः झाड़ू-बुहारी नहीं लग पाई है। मेज के नीचे कोई फोटो फाड़-कर डाला गया है, सो अभी तक ज्यों-का-त्यों पड़ा है। दो पलंग पड़े हैं, पर जान पड़ता है, रात्रि को एक भी इस्तेमाल किया नहीं गया। मिस शर्मा भी तब कमरे में घुस आई और राजाराम ने तब वह फ्रेम आगे की ओर झुकाकर उल्टा कर दिया। तभी वहाँ पड़ा एक पत्र दृष्टिगत हुआ। राजाराम पढने लगा। उसका कन्धा पकड़कर झुकी हुई प्रभा भी पढ़ने में यत्नशील थी। मिस शर्मा राजाराम के सामने खड़ी थी। "क्या है प्रभा ? कुछ मुझे भी बताओ न !" उसने दो-तीन बार पूछा। और पत्र समाप्त करके राजाराम और प्रभा ने गम्भीर हो एक-दूसरे की ओर देखा। राजाराम पत्र यथास्थान रखने ही वाला था कि तभी शशि-नाथ और दूसरे साथी भी कमरे में आ गए। राजाराम ने पीछे हाथ छिपाकर मेज की ओर पीठ कर ली और घिघियाई हुई आवाज़ में बोला— "नमस्ते, प्रोफेसर साहब, नमस्ते !"

शशिनाथ का हृदय कुहरे से धुँधले प्रातःकाल की तरह आशंका से घिर गया। संकुचित मन से वह बोले—"आप क्षमा करें। सोफों पर बैठिये बाहर ! मैं अभी आपकी सेवा में उपस्थित हुआ।" मौन छा गया कमरे में। सब पुनः बाहर आ बैठे। शशिनाथ तब अपराध छिपाने की चेष्टा करने वाले व्यक्ति की तरह मेज की ओर बढ़े। छिपी निगाह से बाहर की ओर देखते हुए उन्होंने रमा का पत्र उठा लिया। शंकित मन पूछ बैठा—'क्या राजाराम ने इसे पढ लिया ? प्रभा भी पढ़ गई ? सब जान गए ? सब जान गए ? रमा मुझे छोड़कर चली गई है, ये सब जान गए ?···ओह ! इस राजाराम को कमरे में किसने बुलाया

था ?…' और तब शशिनाथ ने राजाराम को पुकारा—"तनिक मेरे पास आइए, मिस्टर राजाराम !"

"जी !" नतमस्तक राजाराम कमरे में आ खड़ा हुआ।

"आप नहीं जानते, दूसरे का पत्र पढ़ना अशिष्टता में शामिल किया जाता है ?"

"पर मैंने आपका कोई पत्र नहीं पढ़ा," किंचित् घबराकर राजाराम बोला।

"चोर की दाढ़ी में तिनका। मुझे डर है कि तुमने स्वयं ही नहीं पढ़ा, और साथियों को भी पढ़ाया है।"

और तब अपने अपराध को एक सीमा तक प्रकारान्तर से राजाराम ने स्वीकार किया—"हाँ, यदि अगले ही क्षण आप न आते तो संभवतः पढ़ लिया जाता।"

"खैर," एक खीझ के साथ शशिनाथ बोले, "यदि आपने पढ़ा भी है तो उसे अपने तक ही सीमित रखिए।" अनायास शशिनाथ एक आवेश में मेज से वह फ्रेम उठाकर पूछने लगे—"ये फोटो आपकी ही शरारत है न ?"

"आप भूलते हैं प्रोफेसर साहब," राजाराम ने स्वर में दृढ़ता लाने का असफल प्रयास किया।

"सुमन से कह देना, उसकी विषैली गन्द से मेरे सारे घर का वातावरण गरलमय हो चुका है। अब अधिक विष न उगले…"

"आप फिर भूल करते हैं, प्रोफेसर साहब जो कुछ आप कहना चाह रहे हैं वह मैं सब समझता हूँ। आपके मन के पाप ने ही आपके वातावरण की पवित्रता को नष्ट किया है। सुमन का शुचितम स्नेह और रमा का पावनतम त्याग आप समझ नहीं सके और समझ नहीं सकते …यदि समझ गए होते तो आज यह स्थिति न होती।" राजाराम की गम्भीर वाणी ने प्रोफेसर के मुँह पर ताला लगा दिया। उनके नेत्र झुक गए। स्वाभिमान से राजाराम के मुख पर एक प्रकाश फैल गया, अब सुमन को भी मनाओ और रमा को भी। तभी आपके पौरुष की रक्षा सम्भव है…" कहकर राजाराम कमरे से बाहर आ गया और

अपने साथियों के समीप आते-आते वह जोर से कहने लगा—"चलो भाई, इस समय प्रोफेसर साहब सहायता करने की इच्छा नहीं रखते।" उसके होठों पर मानो विजय की मुस्कान खेल रही थी।

"नहीं, नहीं," प्रोफेसर कमरे से बाहर आते हुए कहने लगे—"ऐसी कोई बात नहीं है। ठहरिए...मैं अभी आपको कुछ देता हूँ।" शंकित मन से उन्होंने राजाराम के नेत्रों का भाव पढ़ा। सहमे हुए वह फिर कमरे में चले गए।

हॉल में तब एक कानाफूसी शुरू हो गई। राजाराम से सब वह गोपनीय संवाद सुनना चाहते थे जो अभी उसके और शशिनाथ के बीच हो चुका है। राजाराम ने तब अपनी वाणी में तिरस्कार भरकर कहा, जिससे शशिनाथ भी सुन लें—"बात यह है, प्रोफेसर साहब के चरित्र पर शंका करने वाली उनकी साध्वी श्रीमतीजी ने उन्हे त्याग दिया है।" इस विस्फोट ने सबको सन्न कर दिया।

शशिनाथ अलमारी से रमा की कुछ पुरानी साड़ियाँ निकालते-निकालते रुक गए; एकदम सन्न! हाथ-पैरों के स्नायु-मण्डल में जैसे रक्त-संचार अवरुद्ध हो गया। मुखमण्डल पर कालिमा छा गई। जो-कुछ निकालना चाह रहे थे अलमारी से, वह निकाल न सके। भारी पैरों वह कमरे से बाहर आकर कहने लगे—"इस समय वस्त्र तो न दे सकूँगा। ये पन्द्रह रुपये ले जाइए।" और वह कुछ कह न सके। उस सन्नाटे को कोई गुञ्जरित न कर सका।... शशिनाथ वहीं मूर्तिवत् खड़े रह गए। चुपचाप जब सब नीचे उतर आए तो एक बार राजाराम को जैसे सबने ही प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा। मिस शर्मा पूछ बैठी—"मेरी समझ में कुछ नहीं आया मिस्टर राजाराम! क्या प्रोफेसर साहब की धर्मपत्नी कहीं चली गई?"

"हाँ उन्हें छोड़ गई," प्रभा बोली।

"घर से भाग गई?" रमेश ने पूछा।

"भाग नहीं गई, प्रोफेसर साहब को त्याग दिया," राजाराम का स्वर गुरुतर था।

 "त्याग दिया?" आश्चर्य से मिस शर्मा ने प्रश्न किया।

"हाँ, पुरुष ही स्त्री को नहीं त्याग सकता, स्त्री भी पुरुष को त्याग सकती है। यदि पुरुष स्त्री से यह अपेक्षा रखता है कि वह पतिव्रता हो; तो नारी भी यह कामना करने की अधिकारिणी है कि उसके पति की पर-स्त्री में कोई निष्ठा न हो। और जब दोनों में से किसी के भी विश्वास को धक्का पहुँचता है तो सब कुछ सम्भव है। क्रूर पति-पत्नी की हत्या तक कर डालते हैं और विदेशों में पत्नी भी कई बार अपने पति की हत्या कर देती है। पर हमारे यहाँ पिछली बात अभी प्रचलित नहीं। भारतीय नारी की सहिष्णुता निस्सीम है। वह कष्ट सह लेगी, पर पति के आगे उसकी गरदन ऊपर उठ नहीं सकती…"

"तो क्या प्रोफेसर चरित्र-भ्रष्ट हैं?"

"हों या न हों, पर अपनी पत्नी की दृष्टि में वह निश्चय ही पति के नैतिक दायित्व को सँभालने में असमर्थ रहे हैं। पत्नी का विश्वास वह प्राप्त नहीं कर सके।" फिर अचानक राजाराम ने कहा, "मुझे अब काम है, आप अपना गश्त पूरा करें…।"

"मुझे भी उधर जरूरी काम है, मिस शर्मा," प्रभा बोली।

और सभी साथियों को रहस्य में डालकर प्रभा और राजाराम चल दिए। स्क्वायर के मोड़ पर घूमते-घूमते प्रभा ने पूछा—"क्षमा कीजिए मिस्टर राजाराम, आप कहाँ तक जा रहे हैं?"

"जहाँ तक आप जा रही हैं," राजाराम ने भौंहें चढ़ाकर प्रभा को देखा।

"आप तो हर वक्त मजाक करते हैं। मैं तो आपके साथ ही आई थी।"

"और मैं आपके साथ आया था," वह मुस्कराया।

"अच्छा, न बताइए।" प्रभा कुछ अन्तर से चलने लगी।

"तो बुरा मान गईं?" राजाराम उसके समीप आकर बोला, "आप तो सुमन के यहाँ चल रही हैं न?"

"जी! आपका मतलब?" प्रभा ने चिढ़कर कहा।

"मतलब तो मेरा भी वही है जो आपका है।"

"देखिए, आपने फिर वही शुरू किया?"

"कुछ तो नहीं ! अरे मिस गंगोली, आप इतना नहीं समझतीं कि यह लम्बा रास्ता आखिर कटेगा कैसे ?"

"मैं सब समझती हूँ; लम्बा रास्ता काटने के लिए साथी की आवश्यकता होती है और आपने ढूँढ लिया है।"

"क्या मतलब ? क्या मतलब ?" राजाराम ने घबराकर पूछा।

"मतलब तो मेरा भी वही है जो आपका," प्रभा मुस्करा दी।

"ओह ! आप तो कान काटने में बहुत ही तेज हैं। मैंने कोई साथी-साथिन अभी नहीं ढूँढी है।"

"पर मैं तो जानती हूँ, आप ढूँढ चुके हैं।"

"देखिए प्रभा देवी, मुझे ऐसी हँसी अच्छी नहीं लगती ! आपको बताना होगा।"

"आप समझ लीजिए," प्रभा फिर मुस्करा दी।

"देखिए, आप किसी गलतफहमी में हैं," खीझकर राजाराम बोला।

"जी नहीं !"

राजाराम परेशान हो उठा। प्रभा की मुस्कान से वह अपने को घिरा हुआ अनुभव करने लगा और तब वह उससे मुक्त होने के लिए तड़प उठा—"सभी सपने सच्चे नहीं होते। किसी-किसी का सुनहला स्वप्न उषा की लालिमा से अधिक सुनहला नहीं होता। मैं फिर पूछता हूँ, आपको कोई गलतफहमी तो नहीं हुई है ?"

"जी नहीं, बिलकुल नहीं," प्रभा इस बार जोर से हँस दी।

"ओह !" राजाराम ने माथा ठोंका, "आपकी यह हँसी तो मुझे तीर-सी लग रही है।"

"तो हार मान गए आप ?"

"पुरुष तो आपके वर्ग से सदैव हारे हुए हैं," और 'सदैव' के साथ राजाराम की बँधी मुट्ठी एक झटके के साथ खुल गई।

"मतलब यह कि कामदेव के बाण से आपके ऊपर भी सुमन बरस पड़े हैं..."

"मैं ऐसी बातें कम समझता हूँ जो साहित्यिक भाषा में कही जायँ; जरा साफ-साफ कहो, तो समझूँ !"

"हुँ," प्रभा ने गरदन हिलाई, "अब मेरे सामने ही लगे भीगी बिल्ली बनने !..."

"चलो छोड़ो इस झगड़े को; देखो, वह सुमन छज्जे से झाँक रही है।"

"सचमुच, बातचीत में रास्ता मालूम ही नहीं दिया !"

इन दोनों ने द्वार तक पहुँचते-पहुँचते देखा, नीले रंग की चमचमाती हुई 'ब्यूक' गाड़ी में अभी कोई आकर बैठा है और फिर हॉर्न देकर मोटर चली गई। छज्जे पर से झाँकती हुई सुमन भी तब अन्दर चली गई। इन्हें आते देखकर वह आश्चर्यचकित-सी नीचे उतर आई।

साक्षात्कार होते ही राजाराम बोल उठा—"गजब हो गया, मिस चैटर्जी !"

"क्या ?" ज़ीना चढते-चढते सुमन ने अचम्भे से पूछा।

"चलो, चलो, ऊपर बैठकर बताऊँगा सब।"

राजाराम ने जब सुमन को सारी घटना सुनाई तो सुमन भी अवाक रह गई। एक क्षण उसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ।

"क्या सचमुच रमा चली गई ?...कब...?"

"मैं समझता हूँ, कल किसी समय चली गई।"

"यह तो बहुत बुरा हुआ; हमने उसे कोई कष्ट पहुँचाने की चेष्टा नहीं की।" सुमन का हृदय प्रोफेसर की पत्नी के प्रति सहानुभूति से भर आया।

"लेकिन सुमन, तुम्हारे बाबू वहाँ विवाह का प्रस्ताव लेकर गये थे...और रमा यह जान गई। एक विवाहिता के मन पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा इसकी तुम सहज ही कल्पना कर सकती हो।"

सुमन का सिर उसके दोनों हाथों पर आकर टिक गया। माथे पर स्वेद-कण झलकने लगे। अधीर होकर उसने पूछा—"क्या अभी तक कुछ पता नहीं लगा, कहाँ गई है ?"

"नहीं, मेरे विचार में तो कुछ पता नहीं लगा।"

"यदि कहीं आत्महत्या कर ली हो तो ?"

"उसके पत्र से प्रकट है कि वह आत्महत्या नहीं करेगी," प्रभा बोली।

राजाराम ने कहा—"तुम जानती हो, प्रोफेसर ने अकेले में मुझसे कहा, 'सुमन की विषैली गन्ध ने मेरे घर के वातावरण को गरलमय बना दिया है।' "

तत्काल प्रभा बोल उठी—"और जानती हो राजाराम ने उन्हें कैसा मुँह-तोड़ उत्तर दिया। इन्होंने कहा—'प्रोफेसर, आप यदि रमा के त्याग और सुमन के सच्चे स्नेह को समझते तो यह नौबत ही न आती, अपने मन का पाप धोकर प्रायश्चित्त करो!' "

सुनकर सुमन को किसी प्रकार की प्रसन्नता न हुई। वह पश्चात्ताप करने लगी और अवरुद्ध कण्ठ से बोली—"यदि मैं वह फोटो न खिचवाती तो यह सब कभी न होता···"

"पर सुमन, इसमें पश्चात्ताप की कौनसी बात है? यदि प्रोफेसर का मन साफ होता, तो ऐसे हजारों फोटो भी उनका कुछ न बिगाड़ पाते। वह अपनी पत्नी को विश्वास दिला सकते थे कि यह मेरे साथ मजाक किया गया है," राजाराम बोला।

"नहीं मिस्टर राजाराम, हम प्रोफेसर को चाहे दोषी मानते रहें, पर निर्दोष रमा का तो हमें पता लगाना ही चाहिए।···मैं समझती हूँ, वह दिल्ली की रहने वाली हैं। उनकी तलाश में हम प्रोफेसर की सहायता करेंगे।"

"पर क्या प्रोफेसर आपकी सहायता लेंगे?"

"तो हमारा प्रयत्न व्यक्तिगत होगा।"

"सुमन ···बेटा!" तभी बराबर के कमरे से नारायणबाबू का भारी स्वर सुन पड़ा।

"कैसी तबियत है? क्या जाग रहे हैं?" राजाराम ने धीरे से पूछा।

"ठीक है आज तो कुछ; अभी डॉक्टर देखकर गया है।"

"तुम्हारे पास प्रभा बैठी है उसे तो भेजो तनिक हमारे पास!" नारायणबाबू ने अपना वाक्य पूरा किया।

सुमन जाते-जाते रुक गई। प्रभा को संकेत से समझाया कि कुछ इस सम्बन्ध में न कहे।

नारायणबाबू का आशीर्वाद पाकर प्रभा पास ही कुरसी खींचकर बैठ गई। नारायणबाबू के पीले चेहरे पर झुर्रियाँ अधिक स्पष्ट होकर उभर आई थीं। आँखों के नीचे जो गहरी झाइयाँ थीं, उनसे समझ में आता था कि वे आजीवन ऐनक का प्रयोग करते रहे हैं। प्रभा के पास बैठते ही वह गाव तकिए का सहारा लेकर आराम से बैठ गए।

तभी प्रभा ने पूछा—"अब तो स्वास्थ्य कुछ ठीक है न, बाबू ?"

"हाँ, बेटा !" सन्तोष के साथ नारायणबाबू बोले, "मैं तुमसे एक बात पूछता था। किसी से बोलना मत।"

'नहीं' का भाव प्रकट करने के लिए प्रभा ने गरदन हिला दी।

नारायणबाबू बोले—"हमारा तो अब मरने का दिन नजीक आता जाता है··"

"ऐसा न कहें बाबू," प्रभा ने आतुर-सी वाणी में कहा।

"सुनो तो पहले ! मैं ठीक कहता हूँ। सुमन अब बहुत बडा हो गया है। अब उसका माँ होता तो कोई बात नहीं था; तुमने अपना सखी के वास्ते कुछ सोचा है ?"

प्रभा ने व्रीड़ा से सकुचाकर गरदन नीचे झुका ली। वह स्वयं एक युवती है। उसके सुविकसित अवयव भी किसी का मृदुल स्पर्श पाने के लिए उत्कंठित हैं। वह भी अवगुण्ठन में सिमट जाना चाहती है। बाबू के प्रश्न ने उसके हृदय का एक-एक तार छू दिया। वह क्या उत्तर दे ? उन्होंने उससे ऐसा प्रश्न क्यों किया है ? ···उसकी झुकी हुई गरदन ऊपर न उठी।

नारायणबाबू तब तनिक और सँभलकर बैठ गए—"अरे, तुमको शरम आ गया ? ठीक है, तुमने अपना जीजा नहीं ढूँढा···" नारायण-बाबू आप-ही-आप हँस पड़े। एक क्षण रुककर वह फिर बोले—"दूसरा कौन है कमरे में ?"

"मिस्टर राजाराम—हमारे सहपाठी !"

"अच्छा, तुम लोगों का मित्रता है ?"

नीचे फँसाने के प्रयत्न में उसके दाएँ हाथ की एक चूड़ी टूट गई। पर उसने यह कोई अपशकुन नहीं माना। और इतने पर भी उसे बैठने के लिए चार इंच ठौर नहीं मिला। ऊपर की सीट की जंजीर पकड़कर जब वह स्थिर, शान्त हो गई तब उसके सामने अनिश्चित भविष्य का अन्धकार गहरा हो गया। दिल्ली का टिकट उसके पास है। पर दिल्ली अभी दूर है। दिन-भर यात्रा में बीतेगा। इंजन ने सीटी दी। रमा के हृदय को उसने विदीर्ण कर दिया। इंजन का चक्र घूमा, पटरियाँ कराह उठीं। पहियों ने अपना आपा धुनना शुरू कर दिया। रमा का हृदय उस खटखटाहट के स्वर को अपने में आत्मसात् करने लगा। रेल की गति के साथ-साथ उसके हृदय की गति बढ़ती गई। स्टेशन पीछे छूट गया। अपना कोई पीछे छूट गया। कल इसी समय गाड़ी फिर इसी स्टेशन को इसी तरह छोड़ देगी। पर रमा आज जाकर कल पुनः नहीं लौटेगी। जो भी आज जा रहा है, वह कल लौटेगा नहीं। रमा भी फिर कैसे लौट सकती है? स्नेह के बन्धन अब उसे कब अपने में कसेंगे, कौन जाने? आज तो वह दीपक का नेह चुक जाने पर झंझा में उड़ चली है। नौका केवट से बिछुड़कर उत्ताल तरंगों पर बह चली है। गन्तव्य ज्ञात होकर भी अज्ञात बन गया है। चारों ओर यदि कुछ है तो शून्य है। गहन अन्धकार में अपनी सत्ता शेष हो गई है। रमा के डबडबाये हुए नेत्रों में बुढ़िया माँ का सिकुड़नों-भरा चेहरा समा गया। श्वेतकेशी वृद्धा धुएँ से घुटी हुई रसोई में रोटी सेंकती है, बेटे को स्कूल के समय पर खाना देना है। कुएँ से पानी भी भरना होता है। आटा भी पीसना होता है।···रमा की आँख में इंजन के उड़ते हुए धुएँ ने एक कोयले की कंकड़ी ला रखी। आँख तभी झपझपा गई। जो-कुछ वह एक क्षण पूर्व देख रही थी, सब अदृश्य हो गया। वह आँख मसलने लगी। तब ऊपर की सीट पर सोने वाली महिला, जो वास्तव में लेट रही थी, उठ कर बैठ गई। रमा को कष्ट से खड़ी देखकर उसका हृदय पसीज गया। रमा को उसने अपने पास ही ऊपर बैठने के लिए आमंत्रित किया; पर ऊपर चढ़ने में रमा ने कुछ संकोच किया, तो थोड़ी-सी जगह नीचे की

सीट पर ही बन गई। रमा बैठी तो बराबर वाली महिला बोली—"आप कहाँ जाइएगा ?"

"दिल्ली।"

"सारे दिन का सफर है।"

ऊपर की सीट पर बैठी हुई महिला ने रमा के मुँह से दिल्ली सुनकर कुछ उत्सुकता प्रकट की—"दिल्ली, कहाँ ?"

"नई सड़क; मेरी माँ रहती है वहाँ।" रमा ने सरल स्वभाव से कह दिया। ऊपर देखा नहीं। पर ऊपर वाली महिला बार-बार उसे देखने लगी। वह चेहरा उसने पहले कहीं देखा है—अच्छी अवस्था में देखा है। इन कपोलों पर तब लालिमा थी, पीत वर्ण नहीं। नासिका के दोनों ओर, अधरों तक तब कोई सिकुड़न न थी। कलाइयों में पड़ी खनखनाहट का मृदुल स्वर करने वाली चूड़ियाँ तब कोहनियों तक नहीं आती थीं।

रमा मौन थी। अन्तर्दाह से निर्मल हृदय तपकर कुन्दन बन गया था। जो कुछ वह त्याग आई है, उससे उसे शान्ति मिली है। जो पीछे छूट गया, सो छूट गया। उसकी चिन्ता ही अशान्ति है। आगे जो आना है, उसे देखना है। उसकी सुखद कल्पना में शान्ति है। यथार्थ में वह मृगतृष्णा निकले तो भी दुःख की बात क्या ? रमा ने सब-कुछ सहन किया है, आगे भी सहन करेगी। माँ की गोद दरिद्रता में भी सिकुड़ती नहीं। वहाँ वही आनन्द है, वही शैशव है, वही ममत्व है, वही दया है, वही क्षमा है। आज वह बड़ी हो गई है तो क्या ? विवाहिता है तो क्या ? और पति को त्यागकर चली आई है तो भी क्या ? माँ के हृदय की थाह कौन ले सका है ? वह कितना विशाल है, कितना गहन-गम्भीर और कितना करुण, जिसकी निष्ठुरता में भी ममत्व छिपा रहता है।...रमा के पेट में तब बराबर वाली महिला की कोहनी लग गई। रमा कुछ सिकुड़ी। तब उस महिला को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। और भूल पर परदा डालने के लिए उसने पूछा—"डेढ़-दो महीने की ही देर होगी ?"

 "जी !"

"लड़का होगा," उसने शुभकामना प्रकट की।

"लड़के ही क्या निहाल कर देते हैं आजकल?" सामने बैठी नीली साड़ी वाली स्थूलकाय महिला बोली, "पढ़ाया-लिखाया, उम्र हुई तो शादी कर दी। जब कुछ सहारा देने लायक हुआ तो अपनी मेम साहिबा को लेकर अलग चूल्हा कर बैठे।"

"बात तो सही है आपकी, बहन जी!"

"सास-बहू का झगड़ा इसका मूल कारण है। लड़का शादी के बाद माँ की कम सुनता है," ऊपर की सीट पर बैठी महिला ने कहा।

रमा अब मौन न रह सकी। उसने अनुभव किया कि सब उसके मुँह से भी सुनना चाहती हैं। तब उसने जैसे एक निष्कर्ष सामने रखा—"संयुक्त परिवार की व्यवस्था आज के युग में सड़ चुकी है। इससे चिपटे रहेंगे तो यह गृह-कलह किसी-न-किसी रूप में आग जलाता ही रहेगा।"

"मैं यह नहीं मानती," रमा के बराबर से एक बारीक आवाज आई, "मेरी लड़की अपने घर में अकेली थी। पति उसका कई दुर्व्यसनों में फँसा था। एक दिन उसने बहुत दुखी होकर आत्महत्या कर ली।"

"च्...च्...च्...!" सब ओर जैसे जिह्वाएँ तालुओं से लग गईं। रमा की स्मृति सोते से जाग गई—वह तेजी से स्टेशन की ओर घूम गई है। टिंचर आयडीन की शीशी पुलिया के नीचे पड़ी अपने फूटे भाग्य पर रो रही होगी।

"आपकी लड़की ने भूल की," ऊपर की सीट से सुन पड़ा, "ऐसे पति के लिए सबसे बड़ा दण्ड यही है कि पत्नी उसे त्याग दे और स्वतन्त्र जीवन-निर्वाह करे।"

रमा के हृदय को जैसे ढाढ़स मिला। सहसा उसने कह दिया, "हाँ, मैं भी यही मानती हूँ। स्वतन्त्र निर्वाह का मार्ग यद्यपि बड़ा कठिन है, फिर भी ऐसी परिस्थितियों में उस पर चलने में संकोच नहीं होना चाहिए।"

"पर जो पढ़ी-लिखी नहीं है वह क्या करे ?" नीली साड़ी वाली स्थूलकाय महिला फिर बोली।

"सैकड़ों दस्तकारी के धन्धे हैं—कताई-बुनाई, सीना-पिरोना, काटना, दरी, टोकरी, चिक बनाना।...पर इतना साहस तो हो ? जो पद्-दलित होकर जीवन बिताने में सुख मानती हैं, वे यह मार्ग नहीं अपना सकतीं।"

"पद्-दलित होकर भी जीवन में सुख वही मानती हैं जो दुराचारी पति की सेवा करने में भी मोक्ष के दर्शन करती हैं। ऐसे कहीं मोक्ष मिलता है ? आत्मा में तो घृणा भर रही है और ऊपरी मन से श्रद्धा दिखाई जा रही है," ऊपर की सीट वाली महिला ने कहा।

रमा तब बोली—"नारी अपने को पद्-दलित समझे ही क्यों ? यह तो समाज के ठेकेदारों का ढकोसला है। जिस दायित्व की डोर से पति-पत्नी को बाँध दिया जाता है, उसे ये ठेकेदार समझते हैं कि हम एक चरणदासी को नकेल डालकर ले आए। जब तक मन स्वीकार करता है कि पति दान कर रहा है, इसलिए प्रतिदान का भागी है, तब तक नारी भी अपना कर्तव्य पूरा करती चले; और जब दान नहीं, तो प्रति-दान कहाँ ? यहाँ पर आता है त्याग ! यह कोई आदर्श नहीं कि पति तो तुम्हारे लिए बन जाय पत्थर, और तुम उसे मनुष्य मानकर उसकी सेवा करती रहो। ऐसे पति को बारम्बार नमस्कार है। सीधे रास्ते आ जाय तो आ जाय, नहीं तो सम्मान से रोटी कमाने के लिए भगवान् ने नारी को भी दो हाथ दिये हैं।..."

"बिलकुल ठीक, बिलकुल ठीक !" ऊपरी सीट पर बैठी महिला रमा के इस कथन से बड़ी प्रभावित हुई और बोली—"मैं विवाह के एक वर्ष बाद ही सिन्दूर पोंछवा बैठी थी। जेठ के यहाँ कहारी-मिसरानी बनकर अपमानित जीवन नहीं बिता सकी। माँ के यहाँ चली गई—पढ़ी, मेहनत की और उस परिश्रम का फल अब मिला है; चार साल से लड़कियों के स्कूल में पढ़ा रही हूँ।..."

रमा ने चौंककर एक बार फिर ऊपर बैठी प्रौढ़ा को देखा। उसे
 स्मरण हो आया था—अपनी एक मौसेरी बहन की ठीक ऐसी ही कहानी

उसने सुनी थी। वह प्रौढ़ा कह रही थी—"यह देखो, कोने में यह अबोध लड़की बैठी है। सात साल की उम्र है, बहू बन गई है। इसे क्या दुनिया का होश और क्या अपना? लड़का दस साल का है। दर्जी की दुकान पर लोहा गर्म करता है। क्या पढ़ेगा, क्या करेगा और बड़ा होकर कैसे जीवन का बोझ उठाएगा? दोनों के माता-पिताओं ने भाँग खाकर ब्याह कर दिया। शारदा-एक्ट लागू है, यह कैसे माना जा सकता है? जवानी से पूर्व ही, न करे परमात्मा, लड़के को कुछ हो जाय, तो यह किसे रोएगी?"

सबकी दृष्टि उस ओर कोने वाली सीट पर चली गई। दो-तीन समवयस्क बालक-बालिकाओं से घिरी एक सात वर्षीया बालिका गोटे की धोती में लिपटी बैठी थी। घूँघट लम्बा था। और धीरे-धीरे वह बालकों से हँस-बोल रही थी, रो नहीं रही थी। रमा ने उसे देखा तो अपना ब्याह याद आ गया। विदा के समय वह कितनी रोई थी। गले से लगाकर उसे माँ, बुआ, मौसी, भाभी, भाई, सबने रुदन किया था। और ऐसा ही लम्बा घूँघट मारकर वह चली आई थी। कलावे की लचीली डोर से बँधी—'उनके' पीछे-पीछे!···रमा के नेत्र छलछला आए।

"अब यह कोडबिल का लोग व्यर्थ विरोध कर रहे हैं," ऊपरी सीट पर बैठी अध्यापिका बोली, "आजकल होता क्या नहीं? बड़े-बड़े सम्भ्रान्त परिवारों में सगोत्र विवाह भी हो रहे हैं, दामादों को घर-जमाई बनाकर भी रखा जाता है। असन्तुष्ट होने पर एक-दूसरे को छोड़ भी देते हैं। पिछले दिनों तो एक लडकी ने दिल्ली में अपने पिता को विष भी दिया था, केवल सम्पत्ति के लिए ही।"

स्थूलकाय नीली साड़ी वाली स्त्री कहने लगी - "पास हो जायगा तो नारी में समान अधिकार पाने की लालसा तो जागेगी!"

"अजी, जिनकी वाणी मे बल है, वे तो अब भी प्राप्त कर ही लेती हैं। मैं तो सौ बात की एक बात जानती हूँ," अध्यापिका बोली, "एक-दूसरे का स्वभाव जान लें, तब करें ब्याह और यदि उस पर भी पति की ओर से सम्मानजनक व्यवहार न मिले, तो दूसरा घर

बसाने की अपेक्षा स्वतन्त्र जीवन-निर्वाह करना ही श्रेयस्कर है।…"

"हाँ, ऐसा होने में कोई हानि नहीं," नीचे की सीट से दो-तीन महिलाएँ एक-साथ बोलीं।

तभी गाड़ी उत्तरोत्तर धीमी होते-होते रुक गई। स्टेशन था। नीचे की सीट पर बैठी हुई स्थूलकाय नारी उतर गई। रमा के पास जगह हो गई। तब ऊपर की सीट से अध्यापिका नीचे आ बैठी। रमा के समीप बैठते-बैठते उसने तपाक से कहा—"ऐसा प्रतीत होता है, तुम्हें कहीं देखा है; तुम्हारा नाम रामवती… राम…या रमा तो नहीं है?"

"हाँ, रमा है मेरा नाम। क्या आप मथुरा वाली मौसी की लड़की गौरी तो नहीं हैं?" रमा का कण्ठ गद्गद् हो गया।

"अरी, रमा तू कहाँ?" कहकर गौरी ने उसे गले लगा लिया। दोनों के अश्रु-प्लावित नेत्रों से कन्धे भीगने लगे। "तुझे ब्याह से पहले देखा था… और अब तू माँ बनने वाली है? कोई है मर्दाने डिब्बे में?… या अकेली चली है मौसी के पास?" गौरी ने प्यार से पूछा।

रोमांचित रमा का कण्ठ भी गीला था। वह कुछ न बोली; बोल ही न सकी। गौरी फिर कहने लगी—"इलाहाबाद से बैठी हो न तुम? इलाहाबाद में हैं शशिनाथ? क्या साथ चल रहे हैं? बोलो न?… मैंने तो उन्हें भी देखा नहीं। तुम दोनों को आज गाजियाबाद ही उतार लूँ। कल चले जाना दिल्ली…."

मौन रमा की आँखों से तब अविरल अश्रु प्रवाहित होते देखकर, गौरी चौंक गई। मन में सोचने लगी, जरूर कुछ दाल में काला है। और तब गौरी से रमा ने अभी-अभी जो कुछ जोरदार शब्दों में वकालत की थी उसके पीछे गौरी यथार्थ को ढूँढ़ने लगी। उसने रमा की आँखों का भाव पढ़कर हृदय का रहस्य जानने की चेष्टा की। मन फिर बोल उठा—'दाल में कुछ काला जरूर है।…'

गौरी ने रमा के गले में बाँह डाल ली। धीरे से बोली—"तुमसे पाँच-छः साल बाद मिली हूँ। पर इतने दिनों में ही हम अनजान नहीं बन गए हैं। तुम मेरी छोटी बहन हो। बहन के आँसू देखकर बहन का हृदय रो पड़ा है, रमा!…" गौरी का कण्ठ भर आया।

और तब रमा ने एक ही वाक्य में सब बता दिया—"अब स्वतन्त्र जीवन-निर्वाह ही करना है। उन्होंने दूसरी शादी का प्रबन्ध कर लिया।···" उसकी आवाज भर्राई हुई थी।

गौरी ने तब उसे ढाढस बँधाया—"इसमें रोने की क्या बात है, जैसी मैं वैसी तुम! हमारे स्कूल में जगह खाली है। पाँचवीं-छठी तक हिन्दी तो पढ़ा ही लोगी। हमारी प्रिन्सिपल बड़ी अच्छी हैं। साथ रहना। बुढ़ापे में मौसी को यह सब सुनाकर उनके दिल को ठेस पहुँचाने से यही अच्छा है कि मेरे साथ चलो। समझीं?" गौरी रमा का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाने लगी। रमा ने तब गौरी की ओर देखा। अनजाने वह मुस्करा दी। आँखों में आँसू ढुलके, तेजी से अधरों को छूते हुए नीचे गिर गए। नई उमंगें और आशाएँ रमा के हृदय में उल्लास की एक प्रकाश-किरण बिखेरने लगीं। खिड़की से बाहर गेहूँ के लहलहाते सुनहरी खेतों का 'स्वर्ण' जैसे उसके मुखमंडल पर बिखर गया। आँधी में उड़े नीड़ के तिनके कपोती फिर चयन करने लगी। रमा ने देखा वह बड़े लाड़ से छोटी-छोटी बालिकाओं को पाठ पढ़ा रही है। "बहनजी, बहनजी!" की प्यार और ममत्वभरी बारीक आवाज़ें सुनकर उसके हृदय में स्नेह की तरंगें लहरा उठीं। गौरी कह रही थी, "स्कूल की महरी, बरतन माँज देती है; रविवार की छुट्टी में कुछ कपड़े-लत्ते भी धो जाती है। मन कभी अकेलापन अनुभव नहीं करता। काम में कुछ अधिक मेहनत नहीं। थकान भी नहीं होती। सौ-सवा सौ वेतन और कुछ घर पर पढ़ाने से भी हो ही जाता है।···मौज से गुजरेगी, रमा!···धीरे-धीरे फिर तुम ट्रेनिंग ले लेना। वेतन बढ़ जायगा···"

रमा को बहन की ये बातें सुनकर आत्मसंतोष मिल रहा था। वह सोचने लगी—'माँ के पास जाऊँगी तो उनका कष्ट निश्चय ही और बढ़ जायगा। उनकी ममता मुझसे कोई परिश्रम न करा सकेगी। आप कष्ट सहकर वह मुझे सुख देंगी। नहीं, मुझे इस आयु में उन्हें अब कोई दुःख नहीं देना चाहिए···माँ के पास नहीं जाऊँगी। मेरे दुःख से वह पागल-सी हो जायँगी। मैं वहाँ पहुँचकर यह छिपा न सकूँगी कि उन्होंने अपने हृदय पर किसी और को अधिकार की छूट दे दी है।

बसाने की अपेक्षा स्वतन्त्र जीवन-निर्वाह करना ही श्रेयस्कर है।…"

"हाँ, ऐसा होने में कोई हानि नहीं," नीचे की सीट से दो-तीन महिलाएँ एक-साथ बोलीं।

तभी गाडी उत्तरोत्तर धीमी होते-होते रुक गई। स्टेशन था। नीचे की सीट पर बैठी हुई स्थूलकाय नारी उतर गई। रमा के पास जगह हो गई। तब ऊपर की सीट से अध्यापिका नीचे आ बैठी। रमा के समीप बैठते-बैठते उसने तपाक से कहा—"ऐसा प्रतीत होता है, तुम्हें कहीं देखा है; तुम्हारा नाम रामवती‥ राम…या रमा तो नहीं है?"

"हाँ, रमा है मेरा नाम। क्या आप मथुरा वाली मौसी की लड़की गौरी तो नहीं हैं?" रमा का कण्ठ गद्‌गद् हो गया।

"अरी, रमा तू कहाँ?" कहकर गौरी ने उसे गले लगा लिया। दोनों के अश्रु-प्लावित नेत्रों से कन्धे भीगने लगे। "तुझे ब्याह से पहले देखा था और अब तू माँ बनने वाली है? कोई है मर्दाने डिब्बे में?…. या अकेली चली है मौसी के पास?" गौरी ने प्यार से पूछा।

रोमांचित रमा का कण्ठ भी गीला था। वह कुछ न बोली; बोल ही न सकी। गौरी फिर कहने लगी—"इलाहाबाद से बैठी हो न तुम? इलाहाबाद में हैं शशिनाथ? क्या साथ चल रहे हैं? बोलो न?…. मैंने तो उन्हें भी देखा नहीं। तुम दोनों को आज गाजियाबाद ही उतार लूँ। कल चले जाना निर्जला…."

मौन रमा की आँखों से तब अविरल अश्रु प्रवाहित होते देखकर, गौरी चौंक गई। मन में सोचने लगी, जरूर कुछ दाल में काला है। और तब गौरी से रमा ने अभी-अभी जो कुछ जोरदार शब्दों में वकालत की थी उसके पीछे गौरी यथार्थ को ढूँढ़ने लगी। उसने रमा की आँखों का भाव पढकर हृदय का रहस्य जानने की चेष्टा की। मन फिर बोल उठा—'दाल में कुछ काला जरूर है।…'

गौरी ने रमा के गले में बाँह डाल ली। धीरे से बोली—"तुमसे पाँच-छः साल बाद मिली हूँ। पर इतने दिनों में ही हम अनजान नहीं बन गए हैं। तुम मेरी छोटी बहन हो। बहन के आँसू देखकर बहन का हृदय रो पड़ा है, रमा!…" गौरी का कण्ठ भर आया।

और तब रमा ने एक ही वाक्य में सब बता दिया—"अब स्वतन्त्र जीवन-निर्वाह ही करना है। उन्होंने दूसरी शादी का प्रबन्ध कर लिया।···" उसकी आवाज भर्राई हुई थी।

गौरी ने तब उसे ढाढस बँधाया—"इसमें रोने की क्या बात है, जैसी मैं वैसी तुम! हमारे स्कूल में जगह खाली है। पाँचवीं-छठी तक हिन्दी तो पढ़ा ही लोगी। हमारी प्रिन्सिपल बड़ी अच्छी हैं। साथ रहना। बुढ़ापे में मौसी को यह सब सुनाकर उनके दिल को ठेस पहुँचाने से यही अच्छा है कि मेरे साथ चलो। समझीं?" गौरी रमा का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाने लगी। रमा ने तब गौरी की ओर देखा। अनजाने वह मुस्करा दी। आँखों में आंसू ढुलके, तेजी से अधरों को छूते हुए नीचे गिर गए। नई उमंगें और आशाएँ रमा के हृदय में उल्लास की एक प्रकाश-किरण बिखेरने लगीं। खिड़की से बाहर गेहूँ के लहलहाते सुनहरी खेतों का 'स्वर्ण' जैसे उसके मुखमंडल पर बिखर गया। आँधी में उड़े नीड़ के तिनके कपोती फिर चयन करने लगी। रमा ने देखा वह बड़े लाड़ से छोटी-छोटी बालिकाओं को पाठ पढ़ा रही है। "बहनजी, बहनजी!" की प्यार और ममत्वभरी बारीक आवाज़ें सुनकर उसके हृदय में स्नेह की तरंगें लहरा उठीं। गौरी कह रही थी, "स्कूल की महरी, बरतन माँज देती है; रविवार की छुट्टी में कुछ कपड़े-लत्ते भी धो जाती है। मन कभी अकेलापन अनुभव नहीं करता। काम में कुछ अधिक मेहनत नहीं। थकान भी नहीं होती। सौ-सवा सौ वेतन और कुछ घर पर पढ़ाने से भी हो ही जाता है।···मौज से गुजरेगी, रमा!···धीरे-धीरे फिर तुम ट्रेनिंग ले लेना। वेतन बढ़ जायगा···"

रमा को बहन की ये बातें सुनकर आत्मसंतोष मिल रहा था। वह सोचने लगी—'माँ के पास जाऊँगी तो उनका कष्ट निश्चय ही और बढ़ जायगा। उनकी ममता मुझसे कोई परिश्रम न करा सकेगी। आप कष्ट सहकर वह मुझे सुख देंगी। नहीं, मुझे इस आयु में उन्हें अब कोई दुःख नहीं देना चाहिए···माँ के पास नहीं जाऊँगी। मेरे दुःख से वह पागल-सी हो जायँगी। मैं वहाँ पहुँचकर यह छिपा न सकूँगी कि उन्होंने अपने हृदय पर किसी और को अधिकार की छूट दे दी है।

माँ इस दुःखद संवाद को सहन न कर सकेंगी। इस दिन के लिए उन्होंने निश्चय ही मेरा विवाह नहीं किया था।....मैं यदि गौरी के साथ रही तो किसी को पीड़ा न पहुँचेगी। मैं सबसे दूर एकान्तवास में इस आर्त मन को बहला सकूँगी। माँ का हाल जानने के लिए कभी-कभी गौरी पत्र मँगा लिया करेगी...' पवन से डोलते हुए पौधों की तरह ही रमा भी तब प्रसन्न हो चली। जीवन के अनिश्चिततापूर्ण पारावार में मिलने वाली इस लहर का उसने स्वागत किया। एक चाह से वह पूछने लगी—"क्यों बहन, क्या तुम्हारे प्रयत्न से मुझे काम मिल जायगा?"

"तो क्या मुझ पर विश्वास नहीं?"

"मैंने तो ऐसा नहीं कहा। मैं तो यही जानना चाहती थी कि जगह है न तुम्हारे स्कूल में।"

"तभी तो मै कहती थी।...और एक क्षण को मान लो यदि जगह न भी मिली, इस बीच रुक गई हो, तो मैं कुछ ट्यूशन का प्रबन्ध कर दूँगी।...किसी का मुँह तो न ताकोगी!"

और यह 'ट्यूशन' के चार अक्षर जब रमा के कानों में पड़े, तो मन में एक आन्दोलन-सा उठ खड़ा हुआ। छुई मुई की हरी पत्तियों को जैसे किसी ने छू दिया; वह सूख गई। खिला हुआ चेहरा मुरझा गया। उसकी गम्भीर मुद्रा देखकर गौरी बोली, "ट्यूशन नहीं पसन्द हैं तो मत करना। तुम्हें मैं स्कूल में ही लगवा दूँगी," कुछ ठहर-कर वह फिर कहने लगी, "तुम चलो तो; तुम्हें पसन्द हो तो पढ़ाना, वरना कुछ दिन या महीने मेरे पास भी रहोगी तो क्या बुराई है? सब-कुछ देखना, फिर रुचि करे तो स्वीकार कर लेना।"

अब रमा कुछ सँभली। भारी मन क्रमशः हल्का होता जा रहा था। मंजिल समीप आ रही थी। रमा फिर नये स्वप्न सँजोने लगी। खण्ड-खण्ड हुए महल का फिर निर्माण होने लगा। इस निर्माण की गति में चमत्कार था। सामने की सीट पर सोते हुए बड़े-बड़े नेत्रों और काले गहरे बादल-से बालों वाले गौर वर्ण बालक ने उसकी कल्पना के पत्थर खोलकर उसे पंख दे दिए।

लेकिन तभी गौरी धीरे-से पूछ बैठी—"तुम आप ही चली आई हो या कुछ झगड़ा···"

"हृदयहीन व्यक्ति से झगड़ा भी नहीं किया जाता। मैं तो स्वयं ही चली आई हूँ," नारी-सुलभ गर्व की भावना से रमा बोली।

"तो वह दूसरी है कौन ?"

"यह सब बहन घर चलकर फुरसत में बताऊँगी। बस इतना जान लो, धनिक परिवार है; इकलौती लड़की है शायद। पढ़ाते-पढ़ाते आँखें···। और शादी की बात मैंने कानों से सुनी है।···" रमा का स्वर दब-सा गया।

"इकलौती है, धनी है, इसीलिए प्रेम हुआ होगा। सम्पत्ति पर अधिकार आप ही मिल जायगा।···यह कोड बिल जो कराये सो थोड़ा है! पास होने से पूर्व ही इसका पाखण्ड फैलने लगा है।"

"चलो छोड़ो बहन इस प्रसंग को," रमा बोली, "एक शर्त मेरी मान लोगी तो मैं चली चलूँगी।"

"क्या ?" उत्सुकता से गौरी ने प्रश्न किया।

"अपनी मौसी को अथवा 'उन्हें' मेरे बारे में कोई सूचना तो नहीं दोगी ?"

"नहीं," दृढ़ता से गौरी कहने लगी, "पर एक-न-एक दिन तो यह बात पता चलेगी ही।"

"मैं ऐसा न होने दूँगी।"

"तो क्या तुम मौसी को नवासे का शुभ समाचार भी न भेजोगी ?" गौरी ने हँसकर पूछा।

"आग लगी नवासे में। तुम्हें अभी से आफत मची है," रमा ने मुँह बनाकर कहा।

"मन में तो लड्डू फूट रहे होंगे बीवीजी के!" गौरी हँस पड़ी।

"लड्डू फूटने की तो बात ही है न!" रमा से कुछ और कहते न बन पड़ा।

"चलो, लड्डू बाँटने का सौभाग्य तो मुझे ही प्राप्त होगा।"

रमा ने गरदन झुका ली। होठों पर मन्द हास था। आँखों में

उल्लास जाग रहा था। और मन में सचमुच उसके लड्डू फूट रहे थे।

गौरी ने तब सीट के नीचे से रमा की अटैची निकाली और उसे ऊपर की सीट पर अपने सूटकेस पर रख दिया।

तेरह

चन्दा इकट्ठा करने वाले शशिनाथ को एक भूल-भुलैयां में छोड़कर चले गए। व्याकुल मन वह तब घर में अकेले रह गए, अकेले! बड़े मकान से वह अकेलापन भय का क्रीडा-स्थल बन गया। शशिनाथ व्यथित हो कुरसी पर बैठ रहे, पर बैठ न सके। फिर उठकर कमरे से हॉल में, हॉल से कमरे में व्यग्रता से घूमने लगे; स्वतन्त्र होकर भी जैसे वह पिंजरे में बन्द हिंसक पशु की तरह उत्तेजित हो टहल रहे थे। कुछ देर बीतने पर वह पलंग पर आ बैठे। कमर लचक गई। स्नान के बाद जो रीढ़ स्फूर्ति से तन गई थी, वही आकुल मन की लू से झुलसकर टूट चुकी थी। धम्म् से लेट गए। पर विरही पंछी को गुदगुदे फूल-से नीड के तिनके शूल बनकर चुभे। मुद्रा म्लान हो गई। होठों पर शुष्क सरोवर की फटी छाती-सी तरेड़ें पड गईं। लू के थपेड़ों से सिकुडी हुई आमी की तरह मुँह पिट गया। पश्चात्ताप की आग से नेत्र जलने लगे। 'कल रवि से इतनी बातचीत होने पर भी मैंने यह फ्रेम मेज़ पर छोड़ दिया? जो-कुछ असल था, वह मनुष्यजन्य परिस्थितियों ने सत्य बना दिया। क्या मैं सदैव भूलें करने के लिए हूँ?···नहीं···मैं छल-कपट नहीं जानता, यही मेरी कमी है। यही वह अभाव है जो मुझे, मेरे अस्तित्व को, विवेक को चुनौती दे रहा है। पर अब छल करने से भी क्या? आज सारी यूनीवर्सिटी में हर लड़के-लड़की की ज़बान पर सुमन का और मेरा नाम होगा। उस फोटो की ही आज जगह-जगह चर्चा होगी। यह प्रमाण बनकर अप्रकट को प्रकट, असत्य को सत्य और घृणा को प्रेम सिद्ध करेगा····' सोचते-सोचते शशिनाथ के शरीर पर स्वेद-कण चमक

 आए। अतीत के सूखे सरोवर पर स्मृतियों के बगुले आज फिर चक्कर

काटने लगे। 'रमा के हाथ की बुनी जरसी सुमन माँगकर ले गई है''' किलकारियों से बग्घी का सीमित वातावरण भी मधुमय हो उठा। मिस्टर रस्तोगी ने उस दिन पूछा था—आज तुम्हारा पार्टनर नहीं आया, मिस्टर शर्मा'' ' और फिर 'पार्टनर' का एक-एक छल-प्रपंच, मोहनी मुस्कान, हवा में झूलती प्रेम-डोर पर थिरकने वाली चितवन—सब-कुछ शशिनाथ के मन-प्राण में कड़वाहट बनकर घुल गए। विषाद से मुख स्याह हो चला। रमा ने जैसे कान के अति समीप आकर कह दिया—'हर-दम सुमन की रटना लगती रहती है''' शशिनाथ के नेत्रों में तब रमा का चित्र मूर्त हो उठा—सबको प्रेम से भोजन कराने वाली नारी तब रसोई के एक कोने में बैठी हाथ पर ही पराँठे लेकर खाने लगी है। उसे पटरे-चौकी की, मेज-कुरसी की आवश्यकता नहीं।'''जल-संकोच से व्याकुल मीन की नाईं शशिनाथ तड़प उठे। पिंजरे की एक छड़ टूटने पर भी पत्ती जैसे मुक्त होने के लिए सारी शक्ति से पंख फड़-फड़ाकर उड़ने को सचेष्ट होता है, उसी फुरती से शशिनाथ पलंग से कूदकर उठ बैठे। एक क्षण में मेज से वह फ्रेम नीचे पटक दिया और दाएँ पैर की खड़ाऊँ से उसे कुचलने लगे। एक ही प्रहार में फ्रेम का शीशा विधवा के हृदय की तरह शतखण्ड हो गया। फिर भी वह 'कचाकच' प्रहार करते रहे। काँच पिसने लगा। फोटो की पिद्दी-सी पिस गई। तब शशिनाथ ने आँखों पर गिरे हुए बाल समेटे। दम फूल रहा था; धम् से फिर पलंग पर आ बैठे। एक क्रूर दृष्टि उस अवशेष पर फेंकी। अनायास फिर उठ खड़े हुए और एक जोर की लात मारी उस पर। खड़ाऊँ की ठोकर से चकनाचूर फ्रेम 'सन्न'-से कमरे से बाहर हॉल में जाकर बिखर गया।

नौ के बाद का अद्धा बजा। शशिनाथ को 'डायल' में कक्षा के दर्शन हुए। फोटो का मान-मर्दन करने के पश्चात् आकुल मन तनिक शान्त हुआ था, वह फिर तवे पर पानी की तरह जल उठा। सुमन, राजाराम, मिस शर्मा, हरिप्रसन्न – सब हँस रहे हैं; सारी क्लास उपहास कर रही है; सारी यूनीवर्सिटी तिरस्कार से अट्टहास कर रही है'''नहीं, यह नहीं हो सकता। यूनीवर्सिटी नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा। उनकी

निगाह में सत्य का कोई मूल्य नहीं। सत्य को घुटकर रहना पड़ेगा। वहाँ सब असत्य के सेनानी हैं। वह क्षेत्र असत्य जीत चुका है। सत्य को भी वे असत्य ठहरा चुके हैं। सत्य कलंकित होने के लिए वहाँ नहीं जायगा। उसकी स्वच्छता को वे नहीं पहचानते; असत्य ने उन्हें अन्धा कर दिया है। सुमन की विषैली गन्ध ने सबके मस्तिष्क का विवेक मार डाला है। सुमन की छाया के पास मैं फटकूँगा भी नहीं। ओह··· रमा···! रमा··!!' शशिनाथ पलंग से उठते-उठते चिल्लाने लगे, 'तुम जहाँ कहीं भी हो, लौट आओ। यह घर तुम्हारा है। मेरे हृदय में तुम्हारा वास है। मैंने कभी सुमन को ओर झुकने की कोशिश नहीं की। रमा, मुझे क्षमा कर दो।···' मस्तक से स्वेद-कण ढुलककर फर्श पर आ गिरे। शशिनाथ पागल को तरह फर्श पर बैठ गए। मेज के समीप से रमा के फटे हुए फोटो के टुकड़े समेट लिए, जैसे किसी भक्त ने भगवान् का गिरा हुआ प्रसाद आदर से मस्तक पर लगा लिया हो। शशिनाथ सजलनयन उन्हें आपस में मिलाने लगे।···साड़ी का छोर है, मेंहदी-लगा अँगूठा चमक रहा है; हाथ की केवल अँगुलियाँ हैं इसमें; ये ऊपर का भाग है; चूड़ियों के बीच बटन-सी छोटी कलाई-घड़ी बँधी है। नुकीली पतली नासिका का यह ऊर्ध्व भाग है। गौर मुख पर परस्पर मिली हुई काली नागिन-सी भृकुटियाँ शयन कर रही हैं। बाएँ उरोज पर यह साड़ी का चौड़ा पल्ला आ गया है। धीरे-धीरे शशिनाथ के सामने वह फोटो, जिसमें निबल शरीर पर चमकने वाले स्नायुओं की भाँति दराड़ें स्पष्ट चमक रही थीं, मूर्त हो उठा। उसको वह कृत्रिम मुस्कान भी गुलाबी अधरों पर जैसे जीवित बन गई। शशिनाथ के सजल नयनों से तब अश्रु ढुलकने लगे। आर्द्रनयन वह अवरुद्ध कण्ठ से बड़बड़ाये—'मैंने तुम्हारे साथ सबसे बड़ा छल यह साड़ी लाकर ही किया था रमा! सुमन के फैशन की चकाचौंध ने मुझे तब अन्धा बना दिया था। उस छद्मवेश ने मुझे ठग लिया; सरल सौन्दर्य को मैंने नहीं पहचाना। लावण्य, कान्ति का बनावटी रूप मेरी आँखों में समाया था। रमा, बस मेरी इतनी ही भूल है···इतनी ही भूल है। मुझे क्षमा कर दो। मैं अकेला नहीं रह सकता। रमा, मैं अकेला नहीं रह सकता···' शशिनाथ कमरे

से बाहर आकर रवि के फोटो के नीचे आकर गिड़गिड़ाने लगे—'रवि, मैं अकेला नहीं रह सकता। तुम भाभी की खोज में निकले हो तो उन्हें लेकर ही लौटना। तुम कहोगे तो यूनीवर्सिटी छोड़ दूँगा। यह शहर छोड़ दूँगा, प्रोफेसरी छोड़ दूँगा—पर रमा अब मिलकर मुझसे कभी न बिछुड़ सकेगी। रवि, मैं शहर छोड़ने को तैयार हूँ ·· सुमन से मैं सब सम्बन्ध तोड़ चुका हूँ ··जो तुम कहोगे, सो करूँगा। मुझ पर विश्वास करो, तुम्हारी भाभी को अब रूठने का अवसर नहीं मिलेगा। घर की लक्ष्मी का मेरे हाथों अब कदापि निरादर न होगा रवि !··· रमा ···!' शशिनाथ लम्बा श्वास छोड़कर सोफे पर आ बैठे।

घड़ी में दस बजे; साढ़े दस बजे। शशिनाथ ने देखा वह क्लास पढ़ाकर लौट रहे हैं। मैदान में मौलसिरी के वृक्ष के नीचे खड़े सुमन और राजाराम मुस्करा रहे हैं। सब शशिनाथ को उत्सुक नेत्रों से देख रहे हैं। गरदन झुकाये वह अपने कमरे की ओर बढ़े जा रहे हैं। जब कभी वह अपराधी की भाँति निगाहें ऊपर उठाते हैं, तो देखते हैं, चारों ओर से हँसी का दैत्य अपने लम्बे दाँत और जिह्वा निकालकर उन्हें खाने को दौड़े आ रहा है। शशिनाथ ने दोनों बाँहों में अपना मुँह छिपा लिया। 'नहीं, यूनीवर्सिटी नहीं जाऊँगा···मैं यूनीवर्सिटी हरगिज नहीं जाऊँगा। मैं लड़कियों को नहीं पढ़ा सकता···' वह बड़बड़ाते रहे। किसी के ज़ीना चढ़ने की ध्वनि सुन पड़ी। पर शशिनाथ को कुछ पता न चला। रामभरोसे दूसरे क्षण सामने खड़ा हुआ था। पर शशिनाथ उसी प्रकार बड़बड़ाये जा रहे थे—'न लड़के पढ़ा सकता हूँ—न लड़कियाँ ··मुझसे यूनीवर्सिटी की नौकरी अब नहीं हो सकती !····'

एक बार तो रामभरोसे ने सोचा—लौट चलूँ; साहब की तबियत ठीक नहीं जान पड़ती। फिर भी काँपती आवाज़ में डरते-डरते उसने पूछ ही लिया—"कैसी तबियत है सरकार, अध्यक्ष साहब याद किये थे।"

पर शशिनाथ ने कुछ जैसे सुना ही नहीं। "नौकरी अब नहीं हो सकती।" कहते-कहते उन्हें पहली बार अनुभव हुआ कि कोई समीप ही आ खड़ा हुआ है। तन्द्रावस्था में जैसे किसी ने मुँह पर हिम से

ठण्डे जल के छींटे डाल दिए हों, उन्होंने एकदम चौंककर मुँह ऊपर उठाया। खाकी कोट-पाजामा और खाकी साफा बाँधे चेचक के काले दागों से भरे मुँह वाला रामभरोसे सामने खड़ा था। जुड़े हुए हाथों से कोट के कालर के समीप हो खुँसी हुई 'यूनीवर्सिटी-पियन' की पीतल वाली पट्टी कुछ ढक गई थी। शशिनाथ उसे देखते ही एकदम चिल्लाये—"तुम्हें किसने बुलाया? मुझे कुछ नहीं चाहिए! जाओ-जाओ बाहर बैठो!..."

पर रामभरोसे अवाक्-सा खड़ा रह गया—पत्थर की तरह, ज्यों-का-त्यों, न हिला, न डुला। परस्पर-आबद्ध कर उसी प्रकार विकम्पित थे। शशिनाथ गरज पड़े—"सुना नहीं? क्या कान फूट गए हैं? जाओ, घण्टी बजाऊँ तभी कमरे में आया करो..." कहते-कहते शशिनाथ की आँखें घण्टी ढूँढ़ने लगीं। वह निराश हुईं। मुक्त रूप से गगन में विचरने वाला पक्षी सहसा जाल में फँसकर गिर पड़ा। घबराकर शशिनाथ ने तब अपने चारों ओर देखा—सूना घर। मैं अकेला हूँ। सामने ये भूत-सा रामभरोसे क्यों आ खड़ा हुआ है? उनके चेहरे पर रोष से जो खिंचाव आया था, एकदम शिथिल पड़ गया। रामभरोसे को देखा। एक बार ऊपर से नीचे तक फिर निगाह दौड़ाई। पूछा—"कैसे आये थे?"

डरते-डरते रामभरोसे ने जबान खोली—"साहब, आज आप यूनीवर्सिटी नहीं पहुँचे न, कोई खबर भी नहीं मिली रही, इसी से अध्यक्ष साहब पठै हैं, खबर लेन वास्ते।"

सुनकर शशिनाथ का हृदय स्विच दबाते ही कड़क के साथ चल पड़ने वाली विशाल, भीमकाय मशीन की तरह धड़कने लगा। जोर से कोई उनके भीतर बोल उठा—'आज यूनीवर्सिटी नहीं जाऊँगा। रमा के स्वागत की पहली तैयारी यूनीवर्सिटी का परित्याग है।' तब वह प्रकट में बोले—"समझा! ठीक तो है। थोड़ा ठहरो। मैं पुर्जा देता हूँ। लेते जाना।" इतना कहकर शशिनाथ कक्ष की ओर बढ़े कागज लेने के लिए।

 रामभरोसे तब आप-ही-आप कहने लगा—'इतने में बीबीजी के

पास से दो रोटी ही ले लूँ।' वह रसोई की ओर बढ़ा। बस, आगे नहीं। शशिनाथ ने उसे रोक दिया। "अरे, वहाँ कोई नहीं है। मायके गई हैं अपनी···" शशिनाथ की जबान भी ऐसे ही ठिठक गई जैसे रामभरोसे के चरण। किसी ने कलेजा नोंच लिया—'फिर झूठ !'

रामभरोसे ने तब देखा कमरे में धूल का फर्श बिछा पड़ा है। अलमारी के शीशे को रज-कण जमकर ऐसे ही मैला कर चुके हैं जैसे पसीने पर धूल जम जाती है। जहाँ-जहाँ फर्श पर चला गया है, हल्के पद-चिह्न बन गए हैं। रामभरोसे के मन में आया—'बाबू से कुछ मिल ही जायगा। सुबह आकर मैं ही झाड़ू-बुहारी कर जाया करूँगा।···' और शशिनाथ तब बाहर आये। रामभरोसे की ओर पुर्जा बढ़ाकर बोले, "अध्यक्ष साहब को कह देना—मैं स्वयं देखकर आया हूँ। बड़ा जोर का ताप है। मियादी बुखार लिखा है मैंने इसमें। समझे ? कुछ अंट-संट मत बक देना वहाँ जाकर···क्या कहा मैंने ? लो···यह इनाम है तुम्हारा !"

शशिनाथ से चमकता, नाम-मात्र की चाँदी वाला रुपया पाकर रामभरोसे हर्ष से फूला नहीं समाया। प्रोफेसर के अहसान को तभी चुकाने के भाव से वह बोला—"जब तक सरकार अकेले हैं मैं रोज झाड़ू-बुहारी दे जाया करूँ ?"

विचारमग्न हो शशिनाथ ने कहा—"हुँ :"

रामभरोसे तब बोला—"सरकार मैं रोटी भी अच्छी बना लेता हूँ।"

"रोटी तो मैं आज से होटल में खाऊँगा···तुम जाओ, देर होती है।"

रामभरोसे चला गया। मुख पर तब उसके निराशा और असन्तोष की छाप थी। 'रुपए में अब क्या बनता है ? इस तपती धूप के दिनों मे बच्चों के पास रबड़ के जूते भी नहीं हैं। और मेरे "सोलहवें" भी अब चल दिए।····' शशिनाथ अन्यमनस्क-से तब घर के सिंह-द्वार पर ताला डाल 'कोस्मोपोलिटन' की ओर चल दिए। पैर भारी हो रहे थे, मन-मन भर के। राह में दो-तीन जगह टकराते-टकराते भी बचे। होटल

में पहुँचे तो दाईं ओर साफ मेज पड़ी रहने पर भी वह एक ऐसी मेज पर जा बैठे जो अभी-अभी खाली हुई थी। उच्छिष्ट पदार्थ उसकी छाती पर अभी मूँग दल रहे थे। असभ्य ग्रामीण की तरह वह हर कोना, और हरेक मेज अपनी निगाहों से तोलने लगे। पीछे की ओर परदे डालकर छोटे-छोटे कक्ष बना दिये गए थे। अंडई रंग के रेशमी परदों ने उन्हें सम्भ्रान्त परिवारों के बैठने योग्य स्थान का रूप दे दिया था। दूध-सी श्वेत वर्दी पर लाल 'तागड़ी' बाँधे गृहिणी की नाईं परसने वाले 'बैरे' मशीनी पुतलों की तरह इधर-उधर चक्कर लगा रहे थे। शशिनाथ की अगल-बगल से भी कई बैरे निकले। पर वह किसी को आवाज़ न दे सके। फुरसत पाकर ही जब एक बैरा स्वयं उनके पास आ खड़ा हुआ तब उनके सूखे कण्ठ से मुरझाये हुए शब्द निकले—"रोटी! चार ले आना।"

उनके इस एक ही वाक्य से बैरे ने पता लगा लिया कि सूटेड-बूटेड होते हुए भी इन महाशय को कभी होटलों में बैठने-खाने की खुशकिस्मती से वास्ता नहीं हुआ है। और मुस्कराते हुए बैरे ने पूछा—"सब्ज़ी 'हाफ़' प्लेट या 'फुल' प्लेट ?"

"जैसी समझ में आए," शशिनाथ ने बैरे से आँखें मिलाने का साहस न किया।

खाते-खाते शशिनाथ की दृष्टि उधर पीले गुलाब के रंग वाले परदे के पीछे वाली कुरसी पर गई। छोटे कक्ष पर पड़ा हुआ वह परदा तनिक खुला रह गया था। उस कुरसी पर बैठी नारी को देखकर वह सोचने लगे—शायद दूसरी ओर इसके पति बैठे होंगे। दिन में भी जलने वाली 'न्योन ट्यूब' के नीले प्रकाश से वह छोटा कक्ष जैसे राकेश की किरणों से धुल गया था। उस गुलाबी कपोल वाली नारी की आँखों पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा था। अनायास एक बार उसने बाहर की ओर देखा। रोली की चटक लाल चौड़ी बिन्दी आभा बिखेर रही थी। सिर पर पल्ला नहीं था। गहरी काली अलकों के बीच लाल नागिन सुख की नींद सो रही थी। प्रोफेसर एक क्षण विस्मय-विमुग्ध-से रह

 गए। रमणी ने एक बार फिर बाहर की ओर झाँका। इस बार

शशिनाथ के काटो तो खून नहीं। 'यह सुमन आज ऐनक लगाये कैसे बैठी है?' मन ने डरते-डरते पूछा। गले में जो कौर था, वह गले में ही रह गया। शशिनाथ के नेत्र झुक गए। सोचा—'उठ चलूँ। अब खाया नहीं जा सकता।···' कौर जैसे-तैसे सटकाकर उन्होंने बैरे को पास बुलाया; पाँच का नोट उसके हाथ पर धर दिया। बैरा, जो उन्हें पहले ही मूर्ख समझ बैठा था, एक क्षण तो आश्चर्यचकित रह गया, "अभी तो एक रोटी भी खत्म नहीं हुई है, फिर कैसे रुपये?"···दूसरे ही क्षण वह किंचित् मुस्कराकर कहने लगा, "बाबू अभी खा लीजिए! जल्दी क्या है?"

"नहीं, नहीं, मैं जाता हूँ," कहकर घबराते हुए शशिनाथ उठ खड़े हुए।

बैरे ने अब निःसंकोच उनके कन्धे पर हाथ टेककर शशिनाथ को पुनः बैठाने की चेष्टा की—"अच्छा, बाकी पैसे लाता हूँ, ज़रा ठहरिए!"

शशिनाथ न चाहते हुए भी बैठे। तब अनायास उस ओर फिर दृष्टि चली गई। देखा, सुमन की बगल में आकर राजाराम झाँक रहा है। शशिनाथ अब बैठे न रह सके। पैसों की प्रतीक्षा उन्होंने नहीं की। 'ये कमबख्त भी आज यूनीवर्सिटी नहीं गए···!' बाहर निकलते हुए वह सोचने लगे—'तो क्या आज यूनीवर्सिटी न जाकर मैंने भूल की?' लड़खड़ाते हुए वह होटल की तीन सीढ़ियाँ उतरकर जब पटरी पर आये तो उन्होंने सुना, पीछे से कोई पुकार रहा है—"प्रोफेसर साहब!" शशिनाथ तेजी से चलने लगे। '···ये पीछे क्यों आ रहे हैं?' तब आवाज कुछ और निकट आती जान पड़ी—"ठहरिये तो, शशिनाथ जी!"

विवेकशून्य-से शशिनाथ दौड़ने लगे। पर दौड़ना शुरू ही किया था कि गप् से उनका बायाँ हाथ पकड़ लिया गया। हाँफते हुए पसीने से लथपथ शशिनाथ ने डरते हुए पीछे देखा तो सामने गोकुल था, उनका सहपाठी, रेडियो-स्टेशन पर डिप्टी डायरेक्टर। शशिनाथ के होठों पर कृत्रिम मुस्कान की रेखा खेल गई—"अरे तुम कहाँ?" कहकर उन्होंने गोकुल को बाहुओं में कसने का अभिनय किया।

स्थूलकाय, साँवले रंग का गोकुल प्रोफेसर की बाँहों में भरकर नहीं

आया। सफेद सिल्क के सूट पर उनके हाथ फिसल गए। और तभी गोकुल ने अपने मित्र की 'मूर्खता' पर उपहास करते हुए पूछा—"तुम आखिर इतने घबराये हुए क्यों हो? मेरी आवाज सुनकर ऐसे भागे जैसे कोई भूत पीछा कर रहा हो! क्या गोल-माल है आखिर?···"

"कुछ नहीं···कुछ नहीं···मैं जरा ऐसे ही···"

"ऐसे ही नहीं शशि, कुछ गोल-माल है जरूर! छिपा रहे हो। एक ही शहर में रहते हुए मुद्दतों तुम्हारे दर्शन नहीं होते और आज मिले भी तो ढीली काँच में? आखिर हुआ क्या, कुछ हम भी तो जानें?"

"कुछ नहीं यार···कुछ भी तो नहीं, मैं समझा···मेरे पीछे···"

"संकोच न करो; दाई से पेट नहीं छिपाया जाता!"

"यार क्या बताऊँ! एक आफत पीछे लगी है।···"

"क्या—पुलिस?"

"हाँ, पुलिस से तो कम भी क्या कहूँ? उससे तो मुझे पुलिस से भी ज्यादा डर लगता है।" शशिनाथ ने हठात् मुस्कराने की चेष्टा की।

गोकुल ने शशिनाथ का हाथ अपने हाथ में लेते हुए पूछा—"देखो भाई, साफ-साफ कह दो अब, मामला क्या है?"

दोनों फुटपॉथ पर चले जा रहे थे। शशिनाथ ने फिर कुछ संकोच अनुभव किया। इतनी देर में गोकुल फिर पूछ बैठा—"क्या कोई फौजदारी कर बैठे? या कोई नशीली आँखों के तीर छोड़ती चली आ रही है पीछे से?"

"कुछ ही समझ लो।"

"अच्छा समझ लिया? पर आज होटल में···"

"यह न पूछो," शशिनाथ उदास हो गए, "सबका एक ही कारण है। एक ही जड़ है। और वही जड़ अब काट डालना चाहता हूँ! ··"

गोकुल ने इस गम्भीर वाणी से अपनी हँसोड़ वृत्ति पर रोक लगी अनुभव की। वह भी तब गम्भीर हो गया, "तुम मुझे तो बताओ,

किसी झंझट से मुक्ति पाना, मैंने अच्छी तरह देखा है, तुम्हारे वश की बात नहीं।"

"अच्छा यह बताओ, तुम्हारे रेडियो-स्टेशन पर कोई 'पोस्ट' भी खाली है?"

"किसके लिए?" चौंककर गोकुल ने पूछा।

"मैं अब यूनीवर्सिटी की नौकरी छोड़ना चाहता हूँ।"

"समझा," गोकुल ने शशिनाथ की आँखों का रहस्य जान लेने की चेष्टा की, "तो कालेज में आप कुछ काण्ड कर बैठे हैं..."

"नहीं, नहीं, मैंने कुछ नहीं किया," घबराहट के स्वर में प्रोफेसर बोले, "मेरे सिर तो व्यर्थ की बला आ पड़ी है। बताओ, कोई जगह है खाली?"

"जगह तो है। पर यह सम्मान का स्थान है, इसे क्यों छोड़ते हो? अपनी समस्या बताओ तो उसे सुलझाने का प्रयत्न भी किया जाय।"

"समस्या तो सुलझ चुकी! मैंने पक्का इरादा कर लिया है। यूनीवर्सिटी की नौकरी में मुझे मानसिक शान्ति नहीं मिली।..."

"उद्घोषक का स्थान है!" उपेक्षा के स्वर में गोकुल बोला—"जितना अब पाते हो, भत्ता आदि मिलाकर उतना ही पड़ जायगा। ...पर शशिनाथ, मेरी अब भी यही सलाह है तुम यूनीवर्सिटी की नौकरी न छोड़ो।..."

"तुम्हारी बात मान ली। रेडियो की सर्विस दिला दो। किसी और यूनीवर्सिटी में बाद में देखूँगा। समस्या तो आज ही अपना हल चाहती है।"

"यह बात की न समझदारों की-सी!" गोकुल ने शशिनाथ की पीठ पर हाथ मारा। "ऐसा करो फिर सोमवार को मेरे पास आना।" और विषय बदलते हुए तब गोकुल ने पूछा—"अब सुनाओ, हमारी भाभी के क्या हाल-चाल हैं?"

शशिनाथ के लिए यह प्रश्न प्रत्याशित नहीं था। वह इसका उत्तर देने के लिए तैयार भी नहीं थे। संकोच से घिर गए। गोकुल ने उनका

भाव समझा और वह तब आप ही कहने लगा—"अच्छा रेडियो पर आ जाओ, फिर तुम्हारे यहाँ आयंगे एक दिन चाय पीने।"

फिर गोकुल शशिनाथ से विदा लेकर चला गया। शशिनाथ घर के द्वार पर आये तो ताला खोलकर घर में जाने की कोई इच्छा नहीं हुई। घर अपना ही था, पर पराया-सा लगा। और तब वह उलटे पैर निरुद्देश्य ही बाजार मे आ गए। जन-समुद्र की लहरें जिधर ले चलीं, उधर चल दिए।

चौदह

सुमन ने उन्हें देखा तो सोचने लगी—'प्रोफेसर आज यूनीवर्सिटी नहीं गये। हम स्वाद के लिए होटल में आये हैं और यह सम्भवतः गृहिणी की उपेक्षा करने के बाद अब होटल झाँकते फिर रहे हैं। नारी का सही-सही मूल्यांकन न करने वाले पुरुष की यही गति होनी चाहिए।...' प्रोफेसर को इस स्थिति में देखकर सुमन का हठीला हृदय क्रूरता से भर उठा था। मुख पर उस क्षण घृणा ने अभिव्यक्ति पा ली। राजाराम से उसने पूछा—"यूनीवर्सिटी गये थे न आप तो? क्या यह महाशय आज पहुँचे नहीं थे?"

"तभी तो मैं इस समय तुम्हारे साथ हूँ," राजाराम मुस्कराया। और उसने अपनी ओर से परदा हटाकर तनिक झाँका। आश्चर्य से वह एकदम चिल्ला-सा उठा, "अरे सुमन, यह क्या? प्रोफेसर टेबल को खाली कर गए? सब-कुछ ऐसे ही यहाँ रह गया।"

"सच?" सुमन ने भी झाँका। बैरा वहाँ हाथ में पाँच रुपये की बाकी लिये किंकर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा था। उसने हरेक मेज पर आँखें दौड़ाईं। तब राजाराम ने इंगित किया और बैरा उस कक्ष में पहुँच गया।

 उसकी वाणी से प्रोफेसर की विवशता का हाल सुनकर राजाराम

और सुमन एक बार तो खिलखिलाकर हँस पड़े। बैरा कह रहा था—"अजीब ऊल-जलूल-सा आदमी था। नये ग्राहक भी खूब आते हैं, पर इसने देहातियों को भी मात कर दिया। होटल के पैसों से भी ऐसा डरकर भागा जैसे भूत से।"

"हम समझते हैं। उनका मस्तिष्क आजकल ठीक ठिकाने नहीं। ऐसी कोई बात नहीं है जैसी तुम समझते हो।" राजाराम ने बैरे की भ्रांति को निमूर्ल सिद्ध करने का प्रयास किया। सुनकर वह चला गया। उसके जाते ही राजाराम ने सुमन की विचारमग्न मुद्रा को देखा, हँसकर कहा—"प्रोफेसर तुम्हारे सामने टिक नहीं सकता अब; तुमसे डरकर भागा है।"

"मैंने उनके क्या बैल मार दिए। यह भ्रम का डर है मिस्टर राजाराम! जिसका मन शुद्ध है, वह सदैव निर्भय है। प्रोफेसर एक बार मेरी ओर झुके अवश्य हैं, पर उनका उद्देश्य क्या था, मैं नहीं जानती। और जब ट्यूशन छोड़ने लगे तो उन्होंने मेरे ही चरित्र पर शंका प्रकट की थी। मैं जाने-अनजाने उनका सामीप्य पाने के लिए कभी लालायित नहीं हुई। इसीलिए मैंने चाहा भी कि मुझ पर प्रोफेसर किसी प्रकार की शंका न करते हुए पढ़ाते रहें। पर जब वह तैयार न हुए, तो मैंने सोचा किसी भी प्रकार उनके मन का चोर निकल जाय। उन्हें कलंकित होना पड़े, यह मैंने कभी नहीं चाहा। और इसीलिए यह बात फैल नहीं सकी है कि प्रोफेसर साहब की पत्नी उन्हें त्यागकर चली गई है।..."

"पर सुमन, तुम्हारा तीर गलत निशाने पर बैठा।... इसमें थोड़ी भूल बाबूजी की ओर से हो गई। वरना प्रोफेसर की आज इतनी दयनीय अवस्था न होती।"

राजाराम ने कोई आक्षेप-आरोप न लगाया था। पर यथार्थ तो यही था। सुमन के हृदय को बात छू गई। वह तनिक गम्भीर होकर बोली—"इसीलिए तो मैं आज रमा का पता लगाने के लिए उत्सुक हूँ। मैं यह नहीं चाहती थी कि रमा किसी प्रकार संकट में पड़ जाय। और यहाँ फिर मुझे यह विश्वास हो रहा है कि यह आग अचानक ही

नहीं फूट पड़ी है। इसकी चिंगारियाँ बहुत दिनों से सुलगती रही होंगी, मिस्टर राजाराम ! आपने ही तो एक दिन कहा था—'प्रणय-सूत्र चाहे कितना भी पक्का क्यों न हो, जब उस पर शंका की कैंची चलती है तो वह खण्ड-खण्ड हो जाता है। पति-पत्नी के बीच में जब शंका की काई बिछनी शुरू होती है, तो हृदय-मस्तिष्क उससे पूर्णत: आच्छादित हो जाते हैं। प्रेम का सम्यक् प्रदर्शन उसे फाड़ने के लिए एक सीकर-बूँद बनकर रह जाता है।' "

"यह दार्शनिकता से सुलझने वाली समस्या नहीं है, सुमन ! ईस्टर की छुट्टियों में दिल्ली चली जाओ, और रमा को मनाकर लाओ। परीक्षा के दिन हैं। चिन्तित रहीं तो पर्चे बिगड़ने का डर रहेगा। दिल्ली का पता मालूम है ?"

"पता ?" सुमन जैसे स्मरण-शक्ति को पैना करने लगी—"पता शायद मेरे पास कहीं था तो !···हाँ, याद आया। एक बार प्रोफेसर साहब की जरसी मैंने माँगी थी, बुनाई सीखने के लिए। अचानक उसकी जेब में एक पर्चा मिल गया था। उस पर रमा के भाई का पता था।···"

"तब ठीक है। रमा लौट आए और प्रोफेसर को पता न लगे कि कैसे लौट आई ?"

"लेकिन, एक बात याद आई," राजाराम ने सुमन की पलकों का हल्का स्पन्दन देखा, "प्रोफेसर साहब का एक भाई भी है।"

"वही क्या, जिसके साथ तुमने अपनी मुठभेड़ की बात सुनाई थी ?" राजाराम ने हँसकर पूछा।

"हाँ, हाँ ! वह भी शायद गया होगा भाभी की खोज में।"

"हो सकता है। हम लोग जब चन्दा इकट्ठा करने गए थे, वह घर में नहीं था। तब तुम चार-पाँच दिन प्रतीक्षा करो।···" राजाराम ने कहते-कहते बैरे को बिल चुका दिया। चार आने 'टिप' देकर वह उठ खड़ा हुआ। कक्ष में अगल-बगल लगे दर्पणों में सुमन ने निमिष-भर में अपना चेहरा देखा। केश ठीक हैं, कुंकुम फैला नहीं है, होठों पर

लगी लिपस्टिक से अधर उसी प्रकार अनुरंजित हैं, पल्ला भी ठीक है। तब वह उठ खड़ी हुई।

बाहर आते-आते राजाराम ने पूछा—"सीधी घर?...चलो मैटिनी 'सिन्दूर' देख लें।"

"ऊँ हुँ :" सुमन ने प्रस्ताव पसन्द करते हुए भी गरदन हिलाई—"बाबू ने नींद खुलते ही याद किया होगा।" कुछ रुककर वह फिर आप-ही-आप बोली—"आपने भी कभी किसी की माँग में सिन्दूर भरा है?"

राजाराम के अन्तर में यह प्रश्न मधु-रस घोल गया। होठों पर मृदुल हास की रेखा बिखर गई। वाणी में शृङ्गार भर गया। वह बोला—"भरा तो नहीं, पर सुपात्र कोई मिलेगा, तो भरा भी जायगा।" उसने सुमन की सीपी-सी आँखों में झाँका तो वह नत हो गई। फिर भी चुलबुली सुमन ने मुस्कराकर कहा—"सकल पदारथ हैं जग माहीं। कर्महीन नर पावत नाहीं।"

"यह तो समय ही बतायगा कि हम कर्महीन हैं या कर्मवान्! पर इतना तो मैं अब भी मानता हूँ कि यदि मनुष्य अन्याय और असत्य पर आधारित उपकरणों एवं साधनों का प्रयोग करता है, तो आज की इस प्रपंचपूर्ण जगती में उसे सिद्धि देर से नहीं मिलती। लेकिन सुमन, मैं अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए कभी भी सत्य न त्यागने के लिए अविचल-दृढ़ हूँ..."

"मतलब यह कि आप इस दिशा में निष्क्रिय हैं," सुमन ने तिरछे लोचनों से राजाराम की ओर निहारा।

"निष्क्रियता से तुम्हारा क्या मतलब? उस समुद्र को हम निष्क्रिय कैसे मान लें जिसमें नदियाँ स्वतः आकर्षित होकर आ मिलती हैं। उसका स्वभावतः गहन-गम्भीर होना उसे क्रियाशून्य तो नहीं बना देता! वहाँ तो मन्थन-प्रमंथन की चिरन्तन प्रक्रिया विद्यमान है।"

"यदि आप व्यवहार-जगत् में भी यही माने बैठे हैं, तो मुँह धो लीजिए! कोई किसी की तरफ आप-ही-आप कैसे खिंचा आ सकता है?"

राजाराम जोर से हँस पड़ा—"जानते-बूझते भी आज हमसे ये

मज़ाक ? दीपक पर पतंगा आप-ही-आप कैसे खिचा आ जाता है ? पूर्ण चन्द्र को देखकर रत्नाकर की उत्ताल तरंगें मर्यादा कैसे छोड़ बैठती हैं ? क्या तुम जगत् के शाश्वत नियमों को भी चुनौती देने चली हो ?"···और फिर वह अत्यन्त शान्त स्वर में बोला—"हृदय में जो भाव उत्पन्न होते हैं, वह कहीं-न-कहीं अपना रूप अवश्य पा जाते हैं। हृदय में उठी उमंगों के मेघ सदैव सूखे निकल जाने वाले श्यामवर्ण नहीं होते। उनमें कभी-कभी सत्यता की बिजली भी कौंधती है, और वे जीवनदायी स्वाति बूँद भी बरसाते हैं, सुमन! उनकी गरज से विरहिणी मोरनी की तरह तड़प भी उठती है और उस बरसात की परिसमाप्ति पर बिछुड़े हुओं का मिलन भी होता है।"

सुनते-सुनते सुमन जैसे अपने-आपको भूल गई। सरिता समुद्र की ओर बह चली। आन्तरिक सुख की अनुभूति से वाणी मूक हो गई।

राजाराम ने सुमन के चेहरे का भाव पढा। उस सौम्य मुद्रा पर पराजय का नहीं, समर्पण का भाव था। कमल-नयन अब भी नत थे। पलकें जैसे व्रीड़ा के बोझ से झुक गई हो। चाल और भी मंथर हो गई थी। और धोती के पल्ले का एक छोर दोनों हाथों की अँगुलियों में बार-बार बल खा रहा था। उसे मौन देखकर वह स्वतः बोला—"अब तुम्हारी क्या राय है ? क्या हम एकदम निठल्ले हैं ?"

सुमन ने अर्ध-निमीलित नयनों से राजाराम को देखा और हँस दी। राजाराम भी मुस्कराया।

सुमन तब बोली—"मैं मानती हूँ। आप हर क्षेत्र में यथेष्ट विद्वान् हैं।"

"मेरे प्रश्न का यह सही उत्तर नहीं।"

"जरूरी नहीं कि आपके हर प्रश्न का उत्तर दिया जाय। जो मुझे कहना था···"

"मैं कह चुकी," राजाराम ने वाक्य पूरा करते हुए कहा, "और जो वाणी से नहीं कहना चाहती थीं, उसे नयनों ने प्रकट कर दिया। यही न ?" राजाराम फिर मुस्कराया।

"हाँ ठीक तो है," अनजाने ही सुमन के मुँह से निकल गया और सुनकर जब आश्चर्यचकित राजाराम ने उस ओर देखा, तो सुमन ऊपर की दंत-पंक्ति से अपना निचला होठ काट रही थी। देखकर राजाराम हँस पड़ा। सुमन के कपोलों पर हल्की लालिमा दौड़ गई।

चौराहे पर आकर राजाराम जब कालेज जाने वाली सड़क पर घूम गया, तो सुमन अकेली रह गई। एकान्त मन में वर्तमान, अतीत और भविष्य का मेला जुड़ने लगा। आसपास आने-जाने वाले लोग, गाड़ी, मोटर, दृश्य सब सजीव होकर भी जैसे उसके लिए निर्जीव हो गए थे। चारों ओर सब-कुछ निराकार था, और उसमें साकार यदि कोई हो उठा था, तो वह था राजाराम—उसकी उमंगों का अतीत, वर्तमान और भविष्य; निर्मल प्रेम की सरिता में वह तिरोहित हो चली। कानों में कोई बोल उठा—'दीपक पर पतंग आप-ही-आप कैसे खिंचा आता है? पूर्ण चन्द्र को देखकर रत्नाकर की उत्ताल तरंगें मर्यादा कैसे छोड़ बैठती हैं?...तो क्या मैं उन्हें · यह कैसी आसक्ति? कैसा अनुराग? आकर्षण? ये समर्पण है या उत्सर्ग? क्या स्वप्नों ने अपना साकार रूप पा लिया है? क्या साधना को उसका साध्य प्राप्त हो गया? नहीं, नहीं! यह सब मिथ्या है। वह बंगाली नहीं है...यह हो नहीं सकता।...' सुमन के आशा-अंतरिक्ष पर निराशा की काली बदली छा गई। एक विवशता ने उसे जकड़ लिया। वह सोचने लगी—'समाज के यह बन्धन कितने कड़े और घातक हैं? जहाँ जीवन-साथी को चुनने की भी स्वतन्त्रता नहीं, वह कोई समाज है? नारी के मुँह पर यहाँ सदैव ताले पड़े रहते हैं। अपनी इच्छा से वह किसी को चुनती भी है, तो पग-पग पर कोटि-कोटि बाधाएँ उपस्थित कर दी जाती हैं; मधु-से जीवन को विषादमय बना दिया जाता है; उसे निर्लज्ज कहा जाता है, कुल-कलंकिनी ठहराया जाता है। वह अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाती है, तो सब ओर से उस पर आघात किये जाते हैं। जाति-पाँति की झूठी प्राचीरों को पाखण्ड की सीमेंट से दृढ़ बनाया जाता है और उसमें घुटकर जब अभावों के विष से वह घुलती है, तो समाज आँखें मूँद लेता है, मुँह फेरकर बैठ जाता है। सुधारों

के इस संक्रमण काल में भी इन पत्थर-सी दीवारों की जड़ें कितनी गहरी हैं! इस चहारदीवारी में घुटकर मरने से तो कुँवारी रहकर ही हृदय-मस्तिष्क का विकास किया जाय तो अच्छा है।' तभी अन्तर से एक और आवाज़ आई—'लेकिन कुँवारेपन का जो अभाव है, वह हृदय-मस्तिष्क का पूर्ण विकास होने नहीं देगा, सुमन!···' तब? उसने पूछा। अन्तरवाणी बोली— 'तू तो विद्रोहिणी है। दुर्गा की शक्ति तेरे पास है। पार्वती की तपस्या तेरे पास है। सीता की सच्ची प्रीति तेरे हृदय में है। सावित्री की प्रतीति तुझे मिली है। दमयन्ती का धीरज तुझे प्राप्त है? शकुन्तला का स्वच्छतम प्रेम उर में आलोड़ित हो रहा है। तेरे पास दुर्धर्ष शक्ति है। तू जो चाहती है, वह कर सकती है? तुझे पराजित करने का बल किसमें है? पानी की धारा की तरह तू सदैव उन्मुक्त होकर बहती रह। समुद्र की ओर बढ़ने से तुझे कोई भी बन्धन रोक नहीं सकता। तू आँधी है, जो कभी बाँधी नहीं जा सकती। तेरे अधिकार छीनने वाला कौन? तेरे आगे आज सबको नत होना पड़ेगा, बस तेरी दिशा सही होनी चाहिए। तेरा मार्ग कुपथ नहीं हो। दृढ़ता से तू उसका वरण कर।····अपना इष्ट पाने के लिए विद्रोह कर। जो तेरा है उस पर कोई दूसरा अधिकार कर नहीं सकता!···परिस्थितियाँ अनुकूल न हों तब भी विवश होकर झुकना मत···!'

इसी उधेड़-बुन में सुमन कब घर आ गई उसे पता भी न चला। वह सीधी बाबू के कमरे में गई। उनकी आँखें झपकी हुई थीं। सन्तोष के साथ सुमन ने देखा, नारायणबाबू के चेहरे पर थकान नहीं है। वह आज कनेर के फूल-सा पीला नहीं रह गया है। श्वास के बहिरागमन के साथ कफ़ का मन्द स्वर सुनाई नहीं दे रहा है। वह उलटे पैरों लौटी; आहट से बाबू की यह सुखी नींद उचट न जाय। पर द्वार तक आते-आते उसने सुना बाबू पुकार रहे हैं—"आ गई बेटा?"

"हाँ, बाबू!" स्नेह भरे स्वर में सुमन बोली। बाबू के पास ही तब वह पलंग की दायीं पट्टी पर आ बैठी।

 उसकी कमर सहलाते हुए नारायणबाबू पूछने लगे—"आज तुम

इस वक्त कहाँ गई थीं ?" सुमन के अधर स्पन्दित होकर रह गए। कुछ कहते न बन पड़ा। बाबू की बात को अनसुना करके वह उनके वक्ष पर गरदन झुकाकर अत्यन्त सुकोमल स्वर में बोली—"मेरा बाबू अब बिलकुल अच्छा हो गया!—क्यों बाबू, ठीक हो न ?"

"हाँ, हाँ, ठीक।''' पर बेटा, अभी तुम किधर गई थीं ?" नारायण बाबू की उत्सुकता ज्यों-की-त्यों बनी देखकर अब सुमन उत्तर देने के लिए बाध्य हो गई। हिचकिचाहट के साथ वह बोली—"बाबू, प्रभा गंगोलो आ गई थी।'''उसी के साथ तनिक 'कोस्मोपोलिटन' में चली गई थी।"

सुनकर नारायणबाबू जोर से हँस पड़े। सुमन को बड़ा अचम्भा हुआ। वह सोचने लगी, 'क्या बाबू सही बात जान गए हैं ?' उत्सुक नेत्रों से वह पिता की ओर देखने लगी। श्रोत्र उस हास का रहस्य जान लेना चाहते थे।

नारायण बाबू को महाराजिन ने बता दिया था कि प्रभा बीबी के साथ जो बाबू जी उस दिन आए थे, उन्हीं के साथ बिटिया तनिक बाहर चली गई हैं। और सुमन ने राजाराम का नाम प्रकट करते हुए स्वाभाविक लज्जा का जो प्रदर्शन किया, उससे नारायणबाबू का अन्तर प्रसन्न हो गया। नारायणबाबू ने सुमन के मुँह से फिर भी सही बात सुनने की लालसा प्रकट की। मुस्कराते हुए वह बोले—"तो आज प्रभा नीला सूट पहनकर मर्द बन गया था, क्यों ?"

सुमन एकदम हक्की-बक्की-सी रह गई। "नहीं तो बाबू," घबराहट के साथ वह बोली, "प्रभा तो जारजट की गुलाबी साड़ी पहने थी।"

नारायणबाबू हँस पड़े। "अरी पगली, मैं समझता हूँ तुम मुझे सही बात नहीं बता रही हो। मैं नहीं मान सकता कि मिस्टर राजाराम ने साड़ी पहनी होगी।"

सुमन समझ गई कि बाबू के लिए रहस्य का पट अनावरित हो चुका है। उस क्षण उसका मुख पीत वर्ण हो गया। गरदन झुक गई। नारायणबाबू कह रहे थे—"बाबू को जो तुम नहीं बताना चाहतीं, वह

महाराजिन पहले बता चुकी हैं। पर तुमने जो कुछ, जैसा भी बोला, ठीक तो था।··" मन-ही-मन नारायणबाबू सोचने लगे—'सुमन ने जो कुछ छिपाव किया, वह नारी-सुलभ है। प्रभा ने उस दिन जो बताया था, उसका कुछ अर्थ है; उसमें सत्यता है।···'

अपना 'अपराध' स्वीकार करते हुए सुमन कहने लगी—"बाबू, आज के दिन वहाँ विशेष भोजन तैयार होता है। वह इधर आ निकले थे। बात की बात में वहाँ जाने का प्रोग्राम बन गया···"

"ठीक तो है, बेटा! ठीक तो है!···राजाराम बहुत अच्छा लड़का है। मैंने उसके विषय में बहुत-कुछ सुन रखा है।"

पिता के मुँह से अनायास राजाराम की यह प्रशस्ति सुनकर सुमन व्रीडा अनुभव करने लगी। उसे यह सब सुनकर आश्चर्य भी हुआ। "क्या बाबू ने मेरे मन की अभिलाषा जान ली है? क्या दुर्गा मनोरथ पूर्ण करेंगी?"

इतने में ही नारायणबाबू फिर बोले—"बेटा, यह चित्र देखा तुमने?" उन्होंने दीवार पर लटकी हुई एक तस्वीर की ओर संकेत किया।

सुमन ने उस ओर देखा तो मौन रह गई।

नारायणबाबू कहने लगे—"धनुष-भंग के बाद राम का मुख कितना तेजोमय हो गया है? हाथ में जय-माल उठाए, सीता कैसी मंथर-गति से राम की ओर बढ़ रही है? उसकी मुख-श्री का चित्रकार ने कैसा सुन्दर चित्रण किया है, बेटा! पीछे की ओर बैठे हुए नरेशों के मुख कैसे म्लान हो गए हैं। उषा के प्रकाश में जैसे उडुगन श्रीविहीन हो गए हों।···"

सुमन चित्रलिखित-सी उस चित्र को देख रही थी। देखते-देखते वह जैसे अपने-आपको खो बैठी। राम की सलोनी मूरत में राजाराम झाँकने लगा। नारायणबाबू कह रहे थे—"और देखो बेटा, राजा जनक की मुद्रा पर आत्मसन्तोष का कैसा भाव है। मही को वीर-विहीन समझकर जो नरेश अत्यन्त व्याकुल हो गया था, वही अब

धनुष भंग होने पर कैसा शान्त, सौम्य और ब्रह्मानन्द में लीन दिखाई पड़ रहा है।"

बेसुध-सी सुमन के मुँह से निकल गया—"हाँ, बाबू !"

"बेटा, यह अवसर ही ऐसा होता है। विवाह-योग्य कुमारी को जब सुन्दर, सुशील वर मिलता नहीं तो माता-पिता व्याकुल हो जाता है। और जब लड़की का हाथ पीले होता है, तो सचमुच उनका ब्रह्मानन्द में लीन हो जाना स्वाभाविक ही तो है···।" कुछ रुककर नारायण बाबू फिर बोले—"आज हमारे सामने भी यही प्रश्न है, बेटा ! आज यदि तुम्हारा माँ जीवित होता ····"नारायण बाबू का कण्ठ आर्द्र हो गया। नेत्र सनीर हो गए।

सुमन भी तब सजल-नयन पिता के वक्ष पर मुँह छिपाकर गिर पड़ी। नारायणबाबू उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले—"जहाँ तुम्हारा सम्बन्ध किया चाहता था, वहाँ पशुता ने प्रलय-सा हाहाकार मचा दिया। इधर मैं तुम्हारे मन की भावनाओं के स्वरूप को उतना ही मधुर देखना चाहता हूँ, जितनी मधुर कि वे स्वयं हैं।···अन्तर्जातीय विवाह से मेरा कोई विरोध नहीं। पहले तुम्हारी उमंगों के संसार का प्रश्न है; दूसरों पर कीचड़ उछालने वाले स्वयं कलुषित समाज का मुझे कोई भय नहीं।···मैं जान चुका हूँ कि तुम्हारा मिस्टर राजाराम से अच्छा मेल-जोल है। तुम दोनों को यदि यह पसन्द है, तो महाराजिन ने तुम्हारे थाल में आज चमचम परोसी है, वह खा लेना। जाओ, मुझे अब कुछ और नहीं कहना है।" सुमन यह सब सुनकर सन्न रह गई। यद्यपि जो-कुछ बाबू ने कहा था, सब सुख देने वाला था, हृदय का डर उसने नष्ट कर दिया था, फिर भी एक क्षण वह मृत-श्वेत पड़ गई। लोचनों से अश्रु-प्रवाह होने लगा। नारायण-बाबू का वक्षस्थल गीला हो चला। वह स्वयं भी तब करुण हो उठे, जैसे सुमन आज ही उनसे विदा ले रही है। धरोहर, पराई वस्तु, आज जिसकी है उसे ही सौंप दी जाने वाली है। आर्द्र कण्ठ से वह बोले—"तुम तो रोती हो बेटा ? मैं कोई तुम्हें अपनी आँखों से कहीं दूर होने दूँगा ?" पर उनकी वाणी में सच्चा धैर्य कहाँ था !

सुमन सोचने लगी—'यह बाबू भी आज कैसी विचित्रतापूर्ण बातें करने लगे हैं। इन्हें यह सब किसने बताया ? यदि यह सब होना ही है, तो हो जाय। पर बाबू इतना मानते थे तो भी प्रोफेसर साहब के पास क्यों गये ? मेरे कक्ष से वह फोटो क्यों उठाया गया ?···' और सुमन को अकिंचन रमा का स्मरण हो आया। एक आत्मग्लानि से वह भर आई। अन्तर को कोई खुरचने लगा—'तेरे सुख-सुहाग का इतना ध्यान रखने वाले यह बाबू अनजाने किसी की दुनिया उजाड़ बैठे हैं, क्या यह इन्हें मालूम है ?··· पर इस सबका कारण मैं ही तो हूँ। मेरा कुँआरापन आज कैसा अभिशाप बनकर उदित हुआ है ?···बाबू ने ऐसा क्यों किया ?' सुमन और जोर से रो पड़ी।

महाराजिन तब उसका स्वर सुनकर कमरे में आ गई। वह समझी थी, शायद बाबू बिटिया के बाहर जाने पर रुष्ट हो गए हैं। पर नारायणबाबू ने जब कहा—"मैं तुम्हें किसी बात के लिए विवश तो नहीं करता। जाओ-जाओ, महाराजिन के पास जाओ। जो मुझे नहीं बताओगी, वह उसे तो बता दोगी। रोना तुम्हें शोभा नहीं देता, बेटा !····"तब वह समझ गई और सान्त्वना के स्वर में बोली—"आओ, मेरी रानी ! ऐसी शुभ बात बाबू कहते हैं, इस पर कोई रोया करते हैं ? आओ, मैंने आज घर में ही मिठाई बनाई है।"

सुनकर सुमन की सुबकियाँ तेज हो गईं, तो नारायणबाबू ने गरदन से संकेत किया—"महाराजिन, तनिक बाहर चली आओ !"

सुमन ने महाराजिन के बाहर जाने की आहट सुनी तो रुदन का वेग स्वतः कुछ शान्त हो गया। मन में आया—बाबू के सजल नयन भी पोंछ डालूँ और अपने भी। पर तभी बाबू का प्रोफेसर के यहाँ जाना उसे फिर स्मरण हो आया। मन में पिता के प्रति ही अश्रद्धा का जन्म हुआ। जो-कुछ उसने अब तक मन में छिपाया था, वह अन्तर्दाह को प्रज्वलित करने लगा। एक आवेग के साथ वह पूछ बैठी—"पर आपको प्रोफेसर के यहाँ जाने के लिए किसने विवश किया था ?"

नारायणबाबू यह प्रश्न सुनकर कुछ सँभले। वह समझे, शशिनाथ के प्रति अब इसके हृदय में अपार घृणा है। बेटी के उर-अन्तर को किसी

प्रकार की ठेस न पहुँचे, इसी से वह बात छिपाने लगे—"नहीं तो, मैं उधर नहीं गया।" अभी तक वह सुमन से सही बात जान लेने के लिए उत्सुक थे, और अब स्वतः सही बात छिपाने लगे।

सुमन तब और भी कठोर होकर बोली—"आज आप मेरी इच्छा-आकांक्षा जानने के लिए इतने लालायित हैं, लेकिन तब भी आपने मुझसे कुछ पूछा था, जब मेरे कक्ष से फोटो लेकर आप वहाँ पहुँच गए?"

"लेकिन बेटा!..."

नारायणबाबू की बात अनसुनी करके वह कहती गई—"आपने यह नहीं पूछा बाबू कि उस फोटो का मतलब क्या था? आपने कितना गलत अनुमान लगाया! मैं जान गई हूँ कि आप वहाँ विवाह का प्रस्ताव लेकर गये थे। और उसका कितना भयंकर परिणाम हुआ है, यह आप नहीं जानते। ममता के नशे में आप मेरा भला सोचकर चले थे, पर कहीं और आग भी लग सकती है, यह आपने नहीं सोचा। एक नारी का हृदय विदीर्ण करके आप दूसरी को सुखी बनाने चले हैं। आपने भी मुझ पर शंका की, बाबू..." कहते-कहते सुमन थककर फिर नारायणबाबू के वक्ष पर आ गिरी।

नारायणबाबू यह सब सुनकर विक्षुब्ध हो उठे—"हुआ क्या बेटा?" व्यथित वाणी में वह पूछने लगे, "साफ-साफ कहो तो? क्या कुछ शशिनाथ ने तुमको कहा?"

"नहीं।"

"तब? मैंने किसका हृदय विदीर्ण किया? बताओ, बताओ! मैंने तो किसी का अनर्थ, अनिष्ट नहीं चाहा।"

"जो-कुछ हम चाहते हैं, वही होता रहे तो फिर विग्रह ही क्यों हो?" सुमन के स्वर में लाचारी थी। अगले ही क्षण वह फिर बोली—"जो-कुछ आपने नहीं चाहा था, वह हो गया। जिसकी आपने स्वप्न में कल्पना भी नहीं की थी, वह सत्य होकर सामने आ गया। पर इसमें आपका क्या दोष बाबू?..." सुमन का स्वर गिर गया—"कारण तो मैं ही हूँ। मैं न होती तो आपका जीवन कितना सुखी,

कितना निश्चिन्त होता !···" कहते-कहते सुमन कमरे से बाहर जाने लगी।

नारायणबाबू व्याकुल हो उठे। रोम-रोम में जैसे व्यथा व्याप्त हो गई। पलंग के सिरहाने से पीठ लगाते हुए कहने लगे—"ठहरो तो बेटा सुमन, ठहरो ! इस तरह मुझे पहेली में डालकर तुम जा रही हो !···हुआ क्या ? मुझे न बताओगी सुमन ? बिना बताये तुम जा रही हो ?"

"हाँ बाबू," सुमन का कण्ठ गीला था, "अब बताने से भी क्या ? जो होना था, वह हो गया। मैं भावावेश में व्यर्थ ही यह प्रसंग छेड़ बैठी।" सुमन कमरे से बाहर चली गई।

नारायणबाबू बहुत व्याकुल हो गए। रोग से जर्जर हुए शरीर में असाधारण गरमाई आ गई। नेत्र अब भी कुछ सजल थे। मन जैसे अपने-आपको धिक्कार उठा—'मैंने ऐसा क्या कर दिया जो सुमन एकदम रुष्ट-सी हो गई है। शशिनाथ के यहाँ मैं विवाह का प्रस्ताव लेकर गया था, यह क्या प्रोफेसर ने इसे बता दिया ?···ओह ! मैंने पहले सुमन से क्यों न जान लिया ? कितनी रोई है बेचारी ! और सब मेरे कारण। इतनी परेशानी उसे क्यों हुई आखिर ?···मैंने कहाँ आग लगा दी। किसकी दुनिया उजाड़ दी ?···क्या शशिनाथ की दुनिया उजड़ गई ? शशिनाथ विवाहित हैं।···ओह··· क्या उनका घर में कुछ झगड़ा हो गया···? सुमन को बताना ही होगा···!' नारायणबाबू सोचते-सोचते सिरहाने रखी बेंत का सहारा लेकर घूम गए। पैरों में दाईं ओर रखे सलीपर डाल लिए। फिर धीरे-धीरे बेंत के सहारे वह सुमन के कमरे की ओर चल दिए।

सुमन मेज पर रखी बाँहों में सिर छिपाये बैठी थी। मन की उथल-पुथल अब कुछ शान्त थी। आर्द्र नयनों में अतीत झिलमिला उठा था। अभी-अभी पिता का जो निश्चय उसने सुना उससे मन में हर्ष था, पर पिछली वार्ता से उत्पन्न विषाद की छाया ने उसे ग्रहण लगा दिया था। वह सोच रही थी—'यदि यूनीवर्सिटी में प्रोफेसर की
 पत्नी के चले जाने की बात फैली, तो शशिनाथ के साथ ही मैं भी

अकारण लांछित हुए बिना न रह सकूँगी। कौन यह नहीं कहेगा कि सुमन के कारण ही शशिनाथ ने पत्नी को छोड दिया, अथवा पत्नी शशिनाथ को छोड गई।' इसी सोच में वह डूबी हुई थी। यही बात रह-रहकर उसके हृदय को नोच रही थी। इसी से सन्तप्त हुई वह रो उठी थी। खिसियानी बिल्ली जैसे खम्भा नोचती है, वैसे ही वह अभी-अभी बाबू पर बरस पड़ी थी। और जब मूल में उसे अपनी ही भूल दृष्टिगत हुई, तो अपयश के डर से व्याकुल हो वह अपने कक्ष में आ पड़ी। पिता के सलीपरों और बेंत की चट्-चट्, खट्-खट् सुनकर वह चौंकी। गरदन उठाई तो देखा बाबू उसकी ओर ही बढ़े आ रहे हैं। वह घबराकर उठ खड़ी हुई—"आप यहाँ क्यों चले आए बाबू? इतनी कमजोरी में?...लीजिए, इस पर बैठ जाइए!" सुमन ने बाबू के लिए अपनी कुरसी छोड़ दी।

काँपते हुए स्वर में नारायणबाबू कहने लगे—"जब तक तुम मुझे बताओगी नहीं, मुझे आराम मिल सकता नहीं! क्या शशिनाथ का पत्नी से झगड़ा हुआ? या कोई और बात तुमसे शशिनाथ ने कही?"

सुमन तब संकोच से घिर गई। दबे हुए स्वर में बोली—"बाबू, झगड़ा कोई हुआ या नहीं, यह राम जाने! पर शशिनाथ की पत्नी किसी अज्ञात स्थान को चली गई।"

"हैं? क्या कहा—क्या कहा?" नारायणबाबू एकदम तड़प-से उठे, "कहाँ चली गई?...क्या अकेली चली गई?"

"हाँ बाबू! वह पत्र छोड़ गई है। उसमें लिखा है—नारायणबाबू विवाह की बात पक्की कर गए हैं, इसलिए मैं जा रही हूँ...!"

नारायणबाबू को अब बात की गम्भीरता का पता चला। वह एकदम स्तब्ध-मौन रह गए। पश्चात्ताप ने उन्हें घेर लिया। रमा के चले जाने का सारा दायित्व जैसे उन पर ही आ पड़ा। "इसका प्रायश्चित्त भी फिर मुझे ही करना होगा, बेटा!" कहते-कहते नारायणबाबू उठ खड़े हुए। शिथिल पग बेंत का सहारा लेकर तब वह अपने पलंग की ओर लौट चले। विस्फारित नेत्रों से सुमन उन्हें देखती रह गई। बाबू की मन्द बड़बड़ाहट वह सुन रही थी। "इसका प्रायश्चित्त भी फिर मुझे ही करना

होगा···" और इस डूबते हुए स्वर से सारा वातावरण गम्भीर हो उठा—नीरव और शान्त !

पन्द्रह

गौरी के छोटे-से मकान का वातावरण अत्यन्त शांत था। रमा इस शांत, नीरव वातावरण से पूर्ण मकान में आई, तब उसका मन भी अत्यन्त शांत था। मन में कोई उद्वेग न था, कोई दुविधा न थी; उत्पीड़ित करने वाली कोई उलझन यहाँ न थी। दो कमरे थे, एक छोटी सी रसोई थी। बम्बई के गुजराती अथवा महाराष्ट्रीय परिवारों के एक-एक कमरे के सजे हुए, स्वच्छ मकानों की तरह ही गौरी का यह घर भी स्वच्छ-सुथरा, सद्य-स्नात, स्निग्ध-सा पड़ा था। हर वस्तु पर गौरी की सुघड़ता और सुरुचि की छाप थी। कहीं एक मक्खी तक का नाम न था। रसोई में मँजे हुए बरतन दर्पण की तरह चमचमा रहे थे। प्रांगण में कहीं धूल का कण न था। हरेक सन्दूक पर चटकीले रंगों की डी० एम० सी० से कढ़ा हुआ एक मेज़पोश ढका हुआ था। दोनों कमरों में गौरी ने पुरानी फालसेई रंग की रेशमी साड़ी के परदे लटकाये हुए थे। हवा के हर झोके के साथ उनमें लहरें तरंगित हो उठती थीं। शृङ्गार की मेज का सादापन उसके उजड़े हुए सुहाग के अनुरूप ही था। मलाई-सी चिकनी उस मेज पर रमा ने तेल-कंघी के अतिरिक्त और कुछ न देखा। पास ही पुस्तकों से भरी एक अलमारी खड़ी थी, जिसके ऊपर गौरी ने रंग-बिरंगे मोतियों और शीशे की नालियों की पिरोयी हुई एक झालर लटका रखी थी। अलमारी पर भी स्वच्छ, दूध-से श्वेत दो परदे लटक रहे थे। उसकी बाईं ओर रमा ने दीवार पर एक फोटो देखा। स्वर्गीय जीजा की स्मृति में उसके नेत्र एक क्षण के लिए डबडबा आए। चित्र के नीचे ही बड़े आले में रखा था एक छोटा रेडियो-सेट। उस पर भी एक रेशमी कपड़े का खोल ढका हुआ था।

 रमा को बहन का स्नेह मिला तो उसे वह नया स्थान भी चिर-

परिचित सा जान पड़ा। उसके कण-कण में रमा ने अपनापन देखा। कुछ भी पराया नहीं जान पड़ा। आते ही गौरी ने उसे सारा घर, घर की एक-एक वस्तु दिखा और समझा दी। नई परिस्थितियों को ग्रहण कर उनके अनुरूप बन जाने में रमा को तनिक भी असुविधा अनुभव नहीं हुई। इसके लिए तैयार होकर तो वह घर से ही निकली थी। फिर बहन की ओर से जो प्यार और स्नेह मिला था, उसने अतीत की कटु स्मृतियों पर एक मिठास-भरा कलेवर चढ़ा दिया था, जैसे कड़वी कुनीन को चाशनी ढक लेती है। ट्रेन में जो कुछ रमा ने बता दिया था, उससे अधिक जानने की उत्कण्ठा गौरी ने कभी प्रकट न की। दोनों समय के भोजन में रमा की रुचि का वह विशेष ध्यान रखती। अगले दिन ही उसने रमा के लिए सिन्दूर, सिमरख, क्रीम, पाउडर आदि लाकर मेज पर सजा दिए। यहाँ तक कि रमा दैनिक व्यवहार की जो भी आवश्यक वस्तुएँ नहीं लाई थी, वह सब गौरी ने मँगा दीं। विधवा होकर पति का अभाव सहन करने में जो करुण वेदना होती है, सधवा होकर पति से बिछुड़ने में उससे कहीं अधिक पीड़ा होती है। पहली हृदय को सदा के लिए झुलसा कर मृत कर देती है, तो दूसरी सदैव प्रज्वलित रहने वाली अग्नि की तरह उसे निरन्तर क्षार करती रहती है। गौरी दोनों का अन्तर जानती-समझती थी, इसी से वह रमा को इतने प्यार-लाड से रख रही थी। पलकें जैसे पुतलियों को रखती हैं, वैसे ही गौरी उसे तनिक भी कष्ट न होने देने के लिए सावधान, सतर्क रहती थी। कोई प्रसंग ऐसा न आ जाय कि रमा के अन्तर में दबी हुई अग्नि प्रचण्ड रूप धारण कर ले, इसीलिए वह ऐसे अवसर और परिस्थितियाँ उत्पन्न करती रहती थी कि रमा कभी उदास न रह सके। जिस दिन रमा पहली बार स्कूल गई उस दिन गौरी ने रमा से पेड़े मँगवाये और दोनों ने साथ-साथ खाये। रमा बहन के इस व्यवहार से बड़ी प्रसन्न हुई। और सचमुच वह पेड़े उदरस्थ करते समय दोनों की हँसी का ठिकाना न रहा।

स्कूल का वातावरण रमा को बहुत नया मालूम पड़ा। जब वह स्कूल में पढ़ती थी तो स्लेट पर ही अधिकांश काम हुआ करता था।

अब मँहगी कापियों का चलन अधिक बढ़ गया था। उसके समय में स्कूल आने वाली लड़कियाँ आज की बालिकाओं की अपेक्षा सौन्दर्य-प्रसाधनों की ओर कम ध्यान देती थीं। अध्यापिकाएँ आज 'प्लेटमा' साड़ियाँ बहुत कम पहनती थीं। 'गरारा' नाम की भी कोई पोशाक हो सकती है, इसकी कभी कल्पना नहीं की गई थी। अब लड़कियाँ धोती के स्थान पर सलवार या गरारा ही पहनती थीं। गरीबी आज तब से अधिक फैली थी, पर रमा को आश्चर्य हुआ, लड़कियाँ आज उतनी सादगी से पढ़ने नहीं आतीं। पुस्तकें भी मँहगी हैं, और उसके समय की सस्ती पुस्तकों की अपेक्षा अधिक सरल और साथ ही अशुद्ध भी हैं। बालिकाओं को पुस्तकों का बोझ भी अब ज्यादा ही उठाना पड़ता है। रमा को सबसे अधिक आश्चर्य इस बात पर हुआ कि स्कूल अब दो बार लगता है। तिस पर भी प्रिन्सिपल का काम केवल यही है कि वह स्थानाभाव का कारण बताकर बालिकाओं को प्रविष्ट कराने के लिए उत्सुक माता-पिता या अभिभावकों को निराश लौटाती रहे। गौरी से उसे यह भी ज्ञात हो चुका था कि शिक्षा का स्तर यथेष्ट गिर गया है। परीक्षाओं में अधिक कड़ाई से काम नहीं लिया जाता। इतने पर भी रमा ने अपने नये काम में रस लिया। पाँचवीं, छठी और सातवीं कक्षा को हिन्दी पढ़ाने का काम उसे मिल गया था। उसमें रमा ने थोड़ा परिश्रम करके अपने को पारंगत बना लिया। इसके अतिरिक्त नवीं-दसवीं कक्षा की कुमारियों को धार्मिक शिक्षा देने के साथ ही रमा बुनाई-कढ़ाई का काम भी सिखाने लगी। षोडशी कन्याओं के संसर्ग से रमा के जीवन में एक नई चेतना दौड़ गई। छोटी कक्षाओं को पढ़ाने की अपेक्षा, इन विवाह-योग्य कुमारियों को नई-से-नई बुनाई सिखाने में उसे बड़ा सुख-सन्तोष मिलता। उसकी दक्षता का इन लड़कियों पर प्रभाव भी बहुत पड़ा। दो-चार हर समय ही उसे घेरी रहतीं। आदर-सत्कार की दुनिया में रमा के दिन सुख-चैन से कटने लगे। रात्रि के समय वह जब शयन करने के लिए लेटती, तो कभी-कभी उसे पति की याद आ जाती; और ऐसे अवसरों पर उसका व्यथित हो जाना स्वाभाविक ही था। यदा-कदा वह तकिए में मुँह छिपाये रोने लगती। पर

हर सुबह अपने काम में जुटती तो स्वतः शांत हो जाती। काम में उसे सान्त्वना मिलती। दिन-भर की व्यस्तता में भूत के लिए शोक करने का अवसर नहीं मिलता। जब कभी उसका ध्यान अपने पेट की ओर जाता, तो वह अधिक विकल हो जाती। पर यहाँ भी उसके भावुक मन पर कर्तव्य विजय पा लेता। 'जो कुछ बीत चुका, उसका स्मरण ही क्यों? जो सामने है, उसका चिन्तन है। एक मार्ग जब अपना लिया गया, तो उसकी विपदाएँ भी फूल-सी सुगन्धिमय हैं।' ऐसा सोचते-सोचते रमा के मन में शशिनाथ के प्रति घृणा का उद्रेक होता। और जो कुछ घृणित है, उसकी ओर से ध्यान हटा लेना कठिन नहीं। पर रवि का स्मरण जब हो आता तो रमा सोचती—शायद वह भी घर छोड़ गए हों। देवर का कुशल-क्षेम जानने के लिए मन में एक तड़पन-सी उठती। एक बार मन में आया दुकान के पते पर पत्र लिख दूँ। पर रमा ने ऐसा नहीं किया। यहाँ आने के बाद माँ को भी उसने पत्र न लिखा था। 'बड़ी उथल पुथल के बाद उसे जो मानसिक शांति मिली है, उसे खोने की भूल वह नहीं करेगी। एक बार हाथ लगी मणि को गिराकर काँच की किरच कौन पकड़े? सब जहाँ भी हैं, सुखी रहें। आज तो यह वियोग ही संयोग है। इसी में सुधा है, शीतलता है। लेकिन···

काल की तरह ही कर्म की गति भी न्यारी है। रमा को उस दिन अन्यमनस्क-सी देखकर गौरी ने रेडियो खोल दिया था। दिल्ली से रिकार्डों का प्रोग्राम खत्म हुआ और स्थानीय सूचनाएँ सुनाई जाने लगीं। तब गौरी अपनी कुरसी छोड़कर सेट के पास आ गई। "देखूँ, कहीं और से संगीत या रिकार्डों का प्रोग्राम आ रहा है क्या?" कहकर वह मीटरों के अंकों पर सुई घुमाने लगी। एक पल की घरघराहट के बाद सुन पड़ा—"अभी आपने उषा भाटिया से 'बच्चन' के गीत सुने—अब ···" गीत हो चुके और अब कोई 'गिरष्ठ' कार्यक्रम होगा, यह अनुमान जगा, गौरी ने धीरे से सुई घुमाई, पर उत्तरोत्तर मंद होते हुए स्वर में सुनाई पड़ा—"अब आप शशिनाथ से खतों के जवाब सुनिए।" अचम्भे से गौरी ने एक साथ ही सुई पहले ही स्थान पर

ला खड़ी की ओर रमा की ओर भी देखा। रमा के कान में भी भनक पड़ गई थी। वह अपनी कुरसी पर सँभलकर बैठी, अचम्भे में डूबी हुई रेडियो-सेट की ओर देखने लगी। तिरछी गरदन के साथ ही उसके होठ भी तनिक खुल गए थे। अगले ही क्षण उसने चिरपरिचित स्वर में सुना—"नैनी से सेठ रत्नकुमार जानना चाहते हैं कि हमने यह नया प्रोग्राम क्यों आरम्भ किया है? तो मि० सेठ, यह इसीलिए कि आपके और हमारे बीच एक नया सम्बन्ध कायम हो···" तब तक गौरी द्रुत-गति से रमा के पास आ गई थी। रमा पत्थर-सी बैठी थी। फटे हुए नेत्र अब भी रेडियो पर टिके हुए थे। रेडियो 'बज' रहा था। पर बहरी न होकर भी रमा जैसे बहरी बन गई थी। गौरी ने आकर उसे झँझोड़ दिया। "क्या यह उनकी ही आवाज़ है? तूने पहचानी? क्या प्रोफेसरी छोड़ दी? रेडियो में नौकरी कर ली है? · बोल न रमा?"

पर रमा क्या बोले? स्वर 'उनका' ही है, लेकिन वह कैसे कहे कि इस स्वर ने उसके अन्तर में भी शत-शत प्रश्न उपस्थित कर दिए हैं; मन की शान्ति को छीन लिया है; जहाँ सुधा संचरित हो रही थी, वहाँ माहुर घोल दिया है। बिना कोई उत्तर दिये रमा वहाँ से उठ आई। गौरी ने इसका अर्थ वही समझा जोकि समझना चाहिए था। कुछ देर बाद ही उसने सुना—"यह इलाहाबाद है। अब ग्राम-पंचायत···" वह कक्ष में पलंग पर उदास लेटी हुई थी। गौरी ने चाहा कि मन पर जो बादल घुट गए हैं रमा के, वह साफ हो जायँ या बरस जायँ। घोट अच्छा नहीं। और तब वह बोली—"इसमें इतना उदास होने को क्या है? एक बार जब तुम छोड़ आईं, तो फिर यह हिम्मत कैसे टूट रही है? माना अपनों को भूला नहीं जा सकता; पर यहीं तुम्हें कौन दुःख है? कुछ दिन बाद ही छुट्टियाँ होंगी, तब मौसी के पास चलेंगे। मैं भी चलूँगी,···" कुछ ठहरकर गौरी फिर बोली, "ये तो सब ज़िन्दगी के उतार-चढ़ाव हैं। एक दिन शशिनाथ अवश्य राह पर आएँगे। और यदि नहीं भी आयँ तो क्या? अब तो तुम्हें अवलम्ब भी मिल गया है और संबल भी। इस संसार में है कौन

 किसका? मुझे ही देखो; रोने-धोने से कोई काम तो नहीं चलता। ये

तो सब झूठे बन्धन हैं। मोह-ममता छोड़ दो।···जिसने जन्म दिया है, वह पेट को भी देगा ही। पुरुष भी क्या कभी किसी के सगे हुए हैं?···" गौरी ने रमा के मस्तक पर हाथ फेरा।

तब सहानुभूति के स्पर्श और श्रवण से रमा द्रवित हो उठी। आर्द्रनयन वह बोली—"हाँ बहन, तुम ठीक कहती हो। संसार में है कौन किसका?···पर यह मन बड़ा उच्छृङ्खल है! इसकी उछल-कूद जितनी रोकी जाती है, यह उतना ही गतिवान होता है।···खैर, जो कुछ होना था, वह हो गया।···अब उसके लिए क्यों शोक करूँ?···"

गौरी जब अपने कक्ष में चली गई तो उसे नींद न आई। वह सोचने लगी—'क्या शशिनाथ को पत्र लिखे? सम्भव है, जल्दी ही लिखने से कुछ पासा बदल जाय। हो सकता है, अभी बंगाली युवती से विवाह न किया हो। रमा के इस तरह आने से शायद कुछ मानसिक अवस्था बदली हो···पर वह तो रमा को पत्र न लिखने का वचन दे चुकी है;···तब?···वह रवि को लिखेगी। रवि को पत्र लिखने-न-लिखने के सम्बन्ध में वह वचनबद्ध नहीं। कम-से-कम रमा के यहाँ होने की सूचना तो उसे मिल ही जानी चाहिए।' गौरी ने जो निश्चय किया, उससे कुछ शान्ति मिली। तब उसे रमा का ध्यान आया। यह सोचकर कि उसे अकेले नींद आनी कठिन है, गौरी ने रमा को अपने पास ही बुला लिया। रमा मशीनवत् उठ आई। बहन के पास ही एक छोटी चारपाई पर वह लेट गई। गौरी ने इधर-उधर की बातें शुरू कीं। पर रमा के उचाट मन को ये सब अच्छा न लगा। वह सोने का उपक्रम करने लगी। पर नींद कहाँ? गौरी को उसने अपनी आँखें झपझपाकर छल लिया। वह सो गई, पर रमा अपनी नींद को न छल सकी। नींद आज उससे छल खेल रही थी। निविड़ अंधकार में वह आँखें फाड़े पडी थी। अन्धेरे में उसे सब-कुछ दीख रहा था। जो अतीत रोशनी में दीखता ही नहीं था, या धुँधला था, अंधकार में वही प्रत्यक्ष हो गया। आँखें जब पिछला सब-कुछ देख चुकीं तो मन ने पूछा—'क्या यूनीवर्सिटी, छोड़ दी? सचमुच?'

रमा बोली—'सुमन के साथ विवाह करने के बाद ऐसा हो गया, तो इसमें अस्वाभाविक ही क्या है ?'

'तब तो बड़ी बदनामी हुई होगी ?' फिर प्रश्न हुआ।

'इसमें भी क्या झूठ है, ओखली में दिया सर तो मूसलों से क्या डर ?' मन ठहाका मारकर हँस पड़ा। रमा जैसे ठोकर खाकर गिर पड़ी—आहत !

गौरी जब सोकर उठी तो उसने देखा—रमा गहरी नींद में सो रही है—अचेत, बेसुध। मुख पर रात्रि की उदासी सिकुड़नों में अब भी छिपी थी। स्कूल के लिए दोनों को ही तैयार होकर जाना था। पर अभी समय था। निवृत्त होने के बाद गौरी ने रमा को जगा दिया। उसकी आँखों में लाल डोरे देखकर गौरी समझ गई कि रात को आँख देर से लगी होगी। रमा जब कक्ष से बाहर चली गई, तो गौरी बड़ी उतावली के साथ कुछ लिखने लगी। रमा के लौटने से पहले ही वह इस काम को पूरा कर डालना चाहती थी।

उस दिन रमा का चित्त पढ़ाने को बिलकुल न हुआ। मन में अशान्ति थी। पति को जितना भूलना चाहती, उनकी स्मृति उतनी ही सजीव होती जाती। सन्ताप गहरा होता चला। जब से उसने रेडियो पर वह स्वर सुना तब से ही जैसे उस ओर खिंच चली। हृदय में कभी घृणा का भाव आता, तो कभी क्षमा का। कानों में वही स्वर बार-बार गूँजकर उसकी दृढ़ता को छिन्न-भिन्न किये दे रहा था। अपने-आप पर ही उसे कभी सन्देह होता कि 'तूने आकर भूल की है,' और कभी अपने पर पूर्ण विश्वास होता कि 'नहीं, जो-कुछ तूने किया, ठीक किया है। तेरा मार्ग उचित है। तू उस अपयश को देखने-सुनने के लिए वहाँ नहीं रही, यह अच्छा ही हुआ। सम्भावित कहुँ अपजस लाहू। मरण कोटि सम दारुण दाहू।...'और दूसरे ही क्षण वह सुनती, 'यह तेरी भूल है। पति कैसा भी हो, उसकी सेवा करना ही नारी का धर्म है। तू लौट जा ! अभी कुछ नहीं बिगड़ा...' इसी विक्षिप्त-सी अवस्था में उसे अपने आगे धुन्ध-ही-धुन्ध दृष्टिगत होने लगा। पढ़ाना

 अति दुष्कर था। फिर भी वह गौरी के आग्रह पर चली आई। उसने

समझाया था, "अभी तुम नई हो, छुट्टी लेना ठीक नहीं। फिर आगे भी छुट्टी लेनी ही है।···" इसीलिए वह चली आई थी। एक ही सप्ताह के अल्प समय में वह जिस दुःख को भूल गई थी, आज वह पके व्रण की-सी टीस लेकर फिर फूट पड़ा था। दुःख से भारी हुआ मन जिधर झुकाव पाता उधर ही ढुलक जाता। अपने पर सन्देह होता है तो वह भी सही है; और विश्वास होता है तो वह भी ठीक है। गौरी ने उसके नयनों का भाव पढ़ा, तो फिर धैर्य बँधाने लगी—"रात की तरह तुम फिर बह चली दीखती हो? ऐसे कैसे चलेगा? अभी घर की याद अधिक सता रही है, तो लौट जाओ···" गौरी जानती थी कि वह इस प्रकार लौटने के लिए कभी तैयार न होगी। इसीलिए उसने यह कहा भी। रमा पर इसका उचित प्रभाव हुआ। गम्भीर स्वर में वह बोली—"ऐसा पागलपन मैं कभी न करूँगी। मैंने सौत की दासी बनकर रहने के लिए विवाह नहीं किया था। यदि पति की पत्नी में कोई निष्ठा नहीं है, तो वह पति कहलाने का अधिकारी नहीं। विवाहिता नारी से फिर उसका सम्बन्ध ही क्या? मैं इस बात को जानती हूँ कि मेरी यह उदासी, मेरी एक कमजोरी है। मैं इससे लड़ूँगी।"

रमा का ऐसा आश्वस्त स्वर सुनकर गौरी सन्तुष्ट हुई। कहने लगी—"ठीक तो है। यही तो वह आधार सिद्धान्त है जिस पर पति-पत्नी का नाता उच्चता प्राप्त किये खड़ा है। इसी में यदि कच्चाई आ गई तो फिर पति-पत्नी एक ग्रन्थि में बँधे रह कैसे सकते हैं?···रेडियो पर जाने का अर्थ तो यही हो सकता है कि प्रोफेसरी छोड़कर सुमन से विवाह कर लिया हो; कहो तो पता लगाऊँ?"

"पता लगाने से ही क्या लाभ होगा? वह तो सुमन से विवाह के बाद ही यूनीवर्सिटी छोड़नी पड़ी होगी।···पर गिरने वाले के साथ कोई गिरकर क्या लेगा?" रमा ने साहस बटोरकर कहा।

गौरी ने उसके मन की थाह जानने की चेष्टा करते हुए पूछा—"फिर भी पता लगाने में क्या बुराई है? कहो तो पत्र लिख दूँ, रेडियो-स्टेशन के पते पर?"

"नही बहन !" घबराहट के साथ रमा बोली—"इसका तो तुम मुझे वचन दे चुकी हो...."

"अच्छा ! अच्छा !" किंचित् मुस्कराकर गौरी बोली—"घबराओ मत, उन्हें नहीं लिखूँगी।"

रमा और गौरी स्कूल मे आकर अपने-अपने काम में लग गईं। पाँचवीं कक्षा को रमा जब पढ़ाने आई, तो संयोगवश उसे 'टेलीफोन और रेडियो' का पाठ ही पढ़ाना पड़ा। पुस्तक में माइक्रोफोन पर बोलते हुए एक पुरुष का चित्र भी दिया हुआ था। रमा पाठ पढाते-पढ़ाते एक सोच में घिर गई। ध्वनि को ग्रहण करने और उसका प्रसार करने-वाले यन्त्रों का सरल भाषा में वर्णन किया गया था। अनायास रमा का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। अत्यन्त सुगम भाषा में लिखी पंक्तियों को भी वह ठीक से समझाने में कठिनाई अनुभव करने लगी। विशाल नेत्रों की काली पुतलियों में वह चित्र समा गया। धीरे-धीरे उसका आकार बढ़ता गया। कक्षा की सब बालिकाओं को उसने ढक लिया। माइक्रोफोन के सामने शशिनाथ का विशालकाय पिंड दृष्टिगत हुआ। रमा का सिर, सिर की एक-एक नस झनझना उठी। सारा कमरा घूमने लगा। चारों ओर माइक्रोफोन और शशिनाथ दिखाई दिए। कानों में जोर-जोर से गूँजने लगा—"यह इसलिए कि हमारे-आपके बीच नया सम्बन्ध कायम हो....नया सम्बन्ध कायम हो...नया सम्बन्ध ! ! नया सम्बन्ध ! !...नया....सम्बन्ध ! !" रमा ने जैसे धड़ से अलग होते हुए सिर को डैस्क पर टेक लिया।...अबोध बालिकाओं पर मानो बिजली गिर पड़ी। मरघट का सन्नाटा छा गया। आँखों के सामने बनते-बिगड़ते गहन तिमिर के धब्बों में रमा ने देखा—'शशिनाथ और सुमन को। सुमन ने मुस्कराकर शशिनाथ के कन्धों पर हाथ रख लिए हैं।'... सहमी हुई लड़कियों ने देखा उनकी 'अच्छी' अध्यापिका का सिर हाथों पर से लुढ़क कर 'कट्' से डैस्क पर आ रहा है। उसी क्षण रमा ने विकम्पित हाथों से बिखरे बाल सिमेटते हुए सिर ऊपर उठाया, धीरे से कुरसी का सिरहाना लगाया और अवरुद्ध वाणी में कहने लगी—"सब लडकियाँ, घण्टा खत्म होने तक इसी पाठ को धीरे-धीरे पढ़ती रहें।"

लड़कियों ने समझा, जरूर इनकी तबियत खराब है। तब कक्षा में गुन-गुनाहट की-सी आवाज बढ़ गई। और इस गुनगुनाहट के बीच रमा के कानों में जब-तब 'रेडियो' और 'माइक्रोफोन' शब्द गूँज जाते। इन श्रवण-पुटों का भी हृदय और मस्तिष्क से कैसा सम्बन्ध है। अभी-अभी नेत्रों ने जो-कुछ देखा और पढ़ा उससे हृदय प्रभावित हुआ, बुद्धि भी अछूती न रही और क्रमशः सारा शरीर ही उससे प्रभावित हो उठा। अब नेत्रों ने पलकों में शयन कर लिया था। लेकिन कान जाग रहे थे। इन जाग्रत कानों ने नेत्रों को न सोने दिया—मस्तिष्क और हृदय का रोम-रोम झंकृत कर दिया। शरीर निश्चेष्ट था, पर इन्द्रियाँ अपना कर्म कर रही थी। दूर बीहड़ वन में जैसे किसी गुहा-कान्तार से आते हुए शब्द गूँजते हों, वैसे ही कानों में कभी-कभी 'रेडियो' शब्द गूँज जाता। और उसके साथ ही शशिनाथ का स्वर, शशिनाथ-सुमन का चित्र और फिर काले-काले धब्बे आँखों के सामने नृत्य कर उठते। रमा जैसे रिस-रिसकर गलने लगी। दूसरे ही क्षण एक बालिका का स्वर सुन पड़ा। उसके डैस्क के निकट खड़ी वह पूछ रही थी—"बहन जी, बहन जी, विद्युत्-तरंग किसे कहते हैं।" रमा जैसे सोते से जागी। दूसरी लड़कियाँ उस प्रश्नकर्त्री को घृणा की दृष्टि से देख रही थीं। रुग्ण, अस्वस्थ बहन जी की शान्ति उसने भंग की थी। रमा उस क्षण आहिस्ता से सँभलकर बैठी। धीरे से कह दिया उसने—"कल सब समझायंगे। अब बैठ जाओ।" वह बालिका मुँह लटकाये लौट गई। तभी घण्टा समाप्त हो गया। सँभलकर रमा कुरसी से उठी। एक बार पुनः उसने दोनों हाथों से बाल ऊपर को समेटे और कार्यालय के बराबर वाले कक्ष में, जहाँ पुस्तकालय था, आ बैठी। उसका यह घण्टा खाली था।

मन की उदासी और मस्तिष्क की परेशानी को जीतने के अभिप्राय से ही वह पुस्तकालय में आ गई। धार्मिक ग्रन्थों एवं पदावलियों में उसकी विशेष रुचि थी। वह आधुनिक कवियों की भक्तिरसपूर्ण कविताएँ पसन्द नहीं करती थी। सूरदास, कबीर, मीरा, तुलसी की रचनाओं में उसे विशेष आनन्द, रस, और शान्ति मिलती थी। और ऐसे क्षणों में, जब कि मन-मस्तिष्क अपना सन्तुलन खो बैठे हों, रमा तुरन्त ऐसी ही

पुस्तकों की ओर दौड़ती थी। उसने वहाँ मीरा के पद पढ़ने शुरू किये ही थे कि स्कूल के सिंह-द्वार से यकायक कोलाहल सुनाई पड़ा। रमा को बड़ा बुरा लगा। फिर भी वह सब अनसुना करके अपना ध्यान उन पदों में ही लगाने लगी। कुछ ही देर बाद स्कूल के आँगन में चिल्लाहट मचनी शुरू हो गई। अब तो रमा ही नहीं, प्रायः सभी अध्यापिकाएँ अपनी-अपनी कक्षा छोड़कर आँगन में झाँकने लगी थीं। कुछ नीचे भी आ गई थीं। स्कूल की महरी शरबती थी। रमा ने देखा। वही शरबती, जो घर चौका-बासन करने आती है, उस समय कैसी कड़वी होकर बरस रही है। टखनों से ऊँचा, मैला, हरे रंग का लँहगा उसके चिल्लाने के साथ-साथ ही इधर-उधर घूम जाता था। चीकट से सिकुड़े हुए दुपट्टे के एक छोर में शायद किसी लड़की के परांठे बँधे थे। हाथों मे चाँदी के कड़े थे, और वह उसके नाचते हुए हाथों में खनखना उठते थे। शरबती चिल्लाकर कह रही थी—"मेरे निपूते, अब कभी स्कूल के फाटक पर आकर झाँका, तो सिर फोड़ दूँगी।···"

"राँड, खसमखावा, स्कूल की तनख्वाह पै इतने नखरे दिखावे है। घर आइए, जान से खो दूँगा, जान से।"

तब तक प्रिन्सिपल ने नीचे आकर स्कूल का फाटक बन्द करा दिया। फाटक के बाहर शरबती का पति बड़बड़ाता रहा और फाटक के भीतर शरबती गालियाँ बकती रही। प्रिन्सिपल ने उसे फटकारा, वह शान्त हुई। और तब रमा भी पुस्तकालय में आ बैठी। और स्कूल का काम भी पूर्ववत् चलने लगा। शरबती दुपट्टे के छोर से अपने को हवा करती हुई रमा के बैंच के पास ही नीचे भूमि पर आ बैठी। बैठते ही उसने बड़बड़ाना शुरू किया। वह रमा की सहानुभूति पाना चाहती थी। इसी से उसे सुनाने के उद्देश्य से बोली—"हरामखाना, दूसरी को घर में ले आया है। नौकरी छोड़ के बैठ गया है। कमाई मैं करूँ, ये निठल्ला मजे उड़ाये ··कोई बात भी है भला बीबीजी!···"

इतना सुनकर रमा का ध्यान फिर उचट गया। एक बार तो मन में आया कि शरबती को फटकारकर भगा दे। पर वह धीरे से पूछ ही

बैठी—"तो यह स्कूल भी झगड़ने चला आया ?"

उपेक्षा के स्वर में वह बोली—"आता क्यों न सत्यानासी । घर में राशन नहीं है । आँट मे पैसे होते तो ले आता । सुसरी को खाना न मिलेगा तो आप भाग जायगी । मैं तो रुपये दूँगी नहीं ।···"

"तो, रुपये माँगने आया होगा ?" उत्सुकता से रमा ने प्रश्न किया ।

"और क्या ! सारी लड़ाई तो रुपये की ही है । मरा नैनी में लड़कियों के स्कूल में था, चपरासी । किसी को छेड़-छाड़ दिया । नौकरी से मुए ने हाथ धोए, सिर पर सैंडलें खाईं और अब उस हरखू की विधवा को सँभाल के बैठा है ।···"

इतना सुनकर रमा का सिर घूम गया । बिजली के तार ने जैसे झटका मारा हो । उसने सोचा—'क्या स्कूल-कालेजों में यही होता है । वह भी अब रेडियो पर आ गए हैं । शरबती के पति की तरह उन्होंने भी अपमान सहा; वह भी कलंकित हुए । यह शरबती कैसी जबर्दस्त है ?···नारी हो तो ऐसी हो । कोई और कहारी होती तो दूसरा स्वयंवर रचती । रमा के मन मे शरबती ने ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया । अपनी तरह ही उसे भी रमा ने दृढ़, अविचल देखा, तो सहानुभूति प्रकट करने लगी । उसकी और अपनी परिस्थितियों में समानता देखकर जहाँ वह पहले भावुक हो चली थी, वहाँ अब शरबती की दृढ़ता का ध्यान करके कठोर हो गई । शरबती का पति और अपना पति—दोनों ही उसके सामने घृणित, पतित और कलंकित थे । उनके बहिष्कार से उसे कोई दुःख नहीं था । रमा ने फिर प्रश्न किया—"हरखू की विधवा आप ही चली आई या यह लाया है ?"

"वह आपसे क्यों चली आती ? यही मरजाना उसे छलकर लाया है । बीबीजी, चोरी से मेरा चाँदी का सारा गहना ले जाकर उसे दे दिया । गोद में एक लड़का है उसके···" यह कहते-कहते शरबती का स्वर गिर गया । अपने बाँझ होने का उसे दुःख है, यह उसके स्वर से भली प्रकार ध्वनित हो रहा था ।

"तो मतलब यह कि लड़के की वजह से ले आया है ।"

"किसी भी कारण से लाया हो सत्यानासी, मुझे क्या? बाल-बच्चा भी कोई मेरे हाथ की बात है बीबीजी! मरे के ऐसा सलीपर मारा है सिर में कि चार दिन तक सेंकता रहेगा बदमाश!…"

"सलीपर मारा?" आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से रमा ने पूछा।

"और क्या छोड़ देती? बीबीजी, हरामजादे की आंख फूटेगी, आँख!…घर में आने की धमकी देवे है? मुझे कोई कमी है? चार जगह चौका करूँ हूँ, कहीं भी पड़ रहूँगी। तुम्हारा ही घर है। गौरी बीबीजी तो मुझे हा-हा खाती रखेंगी।…"

"हाँ, हाँ, ठीक है, तुम हमारे यहाँ चली चलो। मेरा भी तुमसे मन लगा रहेगा।…घर जाकर ही अब क्या करोगी?"

"घर तो जाकर मैं झाकूँगी भी नहीं जब तक वह राँड र में है मरे को पता लग जायगा। भूखों मरेंगे तब डाके डालते फिरेंगे। उस। दुष्ट को नौकरी कहाँ मिलेगी?"

"शरबती, तू गाली इतनी क्यों बकती है?"

महरी हँस पड़ी। "क्या करूँ बीबीजी, आदत पड़ गई है। और अभी तुमने हमारी गालियाँ सुनी भी कहाँ हैं?…"

"पगली कहीं की," रमा ने किंचित् मुस्कराकर कहा।

"बीबीजी पानी पी लूँ," कहते-कहते शरबती उठ खड़ी हुई—"मरे ने गुस्सा दिलाकर खून जला दिया।" और फिर कुछ ठहरकर बोली—"तो आज फिर तुम्हारे साथ ही चलूँगी बीबीजी!"

"हाँ, हाँ," रमा ने सरल स्वभाव से कह दिया। शरबती चली गई। रमा अकेली बैठी फिर प्रश्नों से घिर गई। वह सोचने लगी—'नारी का स्वावलम्बी होना भी आज कितना जरूरी है! शरबती आज कोई नौकरी न करती होती, तो उसकी स्थिति कितनी दयनीय हो जाती। उसे कौन घर बैठे रोटी खिला देता?…गौरी बहन भी अपनी रोटी के लिए आप परिश्रम करती हैं और मैं…' रमा के नेत्र सामने दीवार पर टिक गए। मुख पर गाम्भीर्य छा गया। वह पत्थर-सी बनी बैठी रही। विचारों का अविरल प्रवाह द्रुतगति से बह रहा था। '… गौरी बहन ने

 कितना अच्छा किया, मुझे यहाँ ले आईं। सम्मानपूर्वक अपने पेट के

निर्वाह योग्य मिल जाया करेगा। इसमें भी कितना आनन्द है! वहाँ रहती तो आँखों के सामने उनकी सारी लीलाएँ देखकर धीरे-धीरे क्षय होने के सिवाय और मेरे लिए क्या था? किसने यह लिखा है कि पति कैसा भी हो, सेवा करना नारी का धर्म है। पत्नी कैसी भी हो, पुरुष उसकी सेवा को अपना धर्म क्यों नहीं बनाता? इसीलिए कि वही इस समाज के विधान का प्रणेता है।···छिः लानत ऐसे विधान को! नारी के लिए सौ आदर्श, सौ मर्यादाएँ, और पुरुष के लिए जो वह कर ले वही आदर्श है।···' सहसा घण्टी बजी और रमा की विचार-शृङ्खला भी घण्टी की कर्कश आवाज के साथ टूट गई।

कुछ देर बाद ही गौरी उसके पास आई। रमा ने उसे शरबती की सारी कहानी सुना दी। तब गौरी बोली—"मैं अब जा रही हूँ। कोई पीरियड अब नहीं रह गया मेरा। कुछ कपड़ा खरीदूँगी, छोटे झगले और जम्पर तैयार कर रखूँ न—तुम्हारे लिए····" गौरी मुस्कराई।

रमा के नेत्र झुक गए। और तब शीश झुकाए हुए ही उसने कहा—"तो शरबती को साथ ले आऊँ न आज?"

"हाँ, हां!" गौरी ने उसी मुस्कान के साथ कहा और चली गई।

रमा नत-शीश तब सातवीं कक्षा को हिन्दी पढ़ाने चल दी। अज्ञात आनन्द से उसका मन आलोडित हो उठा।

सोलह

आशा के उदयाचल से यात्रारम्भ करने के बाद रवि निराशा के अस्ताचल पर आ ठहरा। दिल्ली-एक्सप्रेस के उस खचाखच भरे हुए डिब्बे में यद्यपि उसे सोने के लिए जगह मिल गई थी, पर रात्रि-भर देश की राजनीति, नेहरू-सरकार की सफलता-असफलता, शरणार्थी-पुनःसंस्थापन, तृतीय विश्व-युद्ध की आशंका, पाकिस्तान की शरारत-पूर्ण विदेश-नीति, अणु-बम, काश्मीर का झगड़ा, कोडबिल और करपात्री के आन्दोलन से लगाकर मिलावटी खाद्यान्नों की बिक्री और पूँजीपतियों

का देश-कल्याण के लिए 'हृदय-परिवर्तन', रेल-दुर्घटनाओं, आदि-आदि विषयों पर जो गरमागरम और 'विद्वत्तापूर्ण' विवाद होता रहा, उससे रवि की आँख लगी नहीं। रात-भर का थका-हारा और जागा हुआ जब वह कुन्ती—रमा की माँ—के यहाँ पहुँचा तो भी मस्तिष्क में बीड़ी-सिगरेट का वह कड़वा धुआँ घुटा था, जो रात-भर साँस के साथ-साथ भीतर जाता रहा था। कुन्ती तब अपनी अवस्था को चुनौती देते हुए आँगन में झाड़ू लगा रही थी, परिश्रम अधिक न था। पर उसके झुर्रियाँ-पड़े शरीर के लिए इतना भी बहुत था। रवि को देखते ही उसने झाड़ू छोड़ दी और प्रसन्न-वदन उठकर कुली की ओर दौड़ी—रवि का सन्दूक उतरवाने के लिए। रमा का भाई वैभव तब तक 'नमस्ते भाई साहब' कहता हुआ आगे आ चुका था। रवि का इस आकस्मिक आगमन पर जो स्वागत हुआ उससे वह तनिक भी प्रसन्न होता न जान पड़ा। कृत्रिम मुस्कान के साथ एक बार 'नमस्ते' का उत्तर देने के बाद ही उसका मुख अत्यन्त गम्भीर और म्लान हो गया, जैसे कोई बनिक मूलधन गँवाकर लौटा हो। वृद्धा कुन्ती भी अगले क्षण ही उसकी मुद्रा देखकर सहम गई। रात की जाग और थकान के साथ ही रवि के मुख पर एक अजीब उदासी छा रही थी।

कुली के पीठ मोड़ते ही वह आप-ही-आप बोला—"थोड़ा दुकान का काम था माता जी, सोचा आपको भी कुशल पूछता आऊँगा···"

प्रेम-विह्वल स्वर में कुन्ती बोली—"अच्छा किया बेटा, तुम्हारी भाभी और भैया तो ठीक हैं न?"

"हाँ, हाँ," कहते-कहते रवि जैसे सूख गया, "बिलकुल ठीक··· बिलकुल ठीक हैं।···" तभी वह कुन्ती का ध्यान इस ओर से हटाने की चेष्टा करने लगा, बोला—'पहले स्नान करके नींद ले लूँ। फिर दोपहर में बाजार जाऊँगा। हाँ, भैया वैभव, यह पोटली खोल लेना तो; इसमें तुम्हारे जीजा जी ने अमरूद भेजे हैं।····"

"क्या रोटी बनाऊँ भैया?" कुन्ती ने पूछा।

"जो आपकी रुचि करे सो ही बना लीजिए। मुझे सब भाता है।

और भाभी के हाथ की उड़द की दाल तो बहुत ही बढ़िया बनती है, माताजी !…"

"तो तुम्हें उड़द की दाल खिलाऊँ आज ?"

रवि कुछ न बोला। कुन्ती ने बेटी के सुख-सुहाग-भरे दिनों की अनुभूति करके सन्तोष का श्वास लिया। आह्लाद से भरी वह अपने विशिष्ट अतिथि के सत्कार का संयोजन करने लगी। रवि ने जब देखा कि रमा यहाँ नहीं पहुँची है, तो वह मन-ही-मन जैसे रो उठा। एक-एक क्षण उसे भारी लगने लगा। कुन्ती रमा के सुख-सुहाग की कल्पना से आनन्द-विभोर हो उठी थी, तो रवि भाभी के दुःख-दुर्भाग्य की वास्तविकता से खिन्न हो गया था। वह कुन्ती को कैसे बताये कि रमा घर नहीं है, वह नहीं जानता कि वह ठीक भी है या नहीं। वह यह भी नहीं जानता कि उसकी प्यारी भाभी, माँ का दुलार लुटाने वाली रमा इस संसार में भी है या नहीं। और है, तो कहाँ है। वह सोचने लगा, इसी क्षण यहाँ से चला जाय। पर सामाजिक शिष्टाचार की मर्यादा और यात्रा के सच्चे उद्देश्य को गुप्त रखने के लिए, उसे अभी यहीं ठहरना होगा। चौबीस घण्टे नहीं तो बारह घण्टे तो अवश्य ही। और रवि को यह बारह घण्टे की सीमित परिधि भी निरन्तर संकुचित होकर घोटने लगी। उसके सामने उसका लक्ष्य स्पष्ट था, पर उसकी प्राप्ति के लिए वह किस पथ पर चले, यहीं गहन अन्धकार था। इस तिमिराच्छादित पथ पर वह कहाँ जाय, कौनसी डगर टटोले। कहीं भी तो एक प्रकाश-किरण दृष्टिगत नहीं होती। जहाँ वह प्रकाश पाने के लिए आया था, वहाँ आकर और भी घने अन्धेरे से घिर गया। यहाँ आकर उसका समस्त विवेक नष्ट हो गया। ऐसी भूल-भुलैयाँ में वह घिर गया, जहाँ निष्कृति नहीं है। न खाने में मन था, न पीने में। जो नींद घिर चली थी वह एकदम काफ़ूर हो गई। मस्तिष्क में घूमने वाले रेल-चक्र कुन्ती के मकान पर आते-आते कुछ मन्द पड़ गए थे, वह अब पुनः द्रुत गति से घूमने लगे। हाथ-पैरों की शक्ति जैसे निःशेष हो गई। भोजनोपरान्त जब बाज़ार में वह निरुद्देश्य ही निकल पड़ा, तो प्रदर्शनी-सी सजावट वाले चाँदनी चौक में भी उसे भंख लोटते दिखाई दिए। जो थोड़ा-बहुत

सामान वह अपनी दुकान के लिए खरीदने की इच्छा रखता था, वह भी उसने खरीदा नहीं। हर पल वह इसी प्रश्न से घिरा था कि रमा को कहाँ ढूँढ़े, कहाँ जाय। बराबर से गुज़रती हुई हरेक रमणी को वह ऐसे आँखें फाड़-फाड़कर देखता जैसे अगले ही कदम पर रमा मिल जाने वाली है। नेत्रों के सामने पाइपिंग की धोती पहने और छोटा अटैची-केस हाथ में लिये हुए ट्रेन पर चढ़ने वाली रमा का चित्र घूम रहा था।

दो घण्टे तक शिथिल पगों से बाजारों की धूल छानने के बाद चिन्तातुर रवि घर लौट आया। थकित मन से जब वह कमर सीधी करने के लिए चारपाई पर लेटा तो कुन्ती उसके पास ही पीढ़ा डालकर आ बैठी। दो-चार बातें कहना-सुनना वह चाह रही थी। रवि ने कुन्ती को वहाँ बैठती देखा तो उसके माथे पर सलवटें पड़ गईं। पर कुन्ती ने यह नहीं देखा। रवि के मुख पर जो उदासी उसके आते ही कुन्ती ने देखी थी, उसी का रहस्य वह जान लेना चाहती थी। वह चाहती थी कि रवि के मुख से बार-बार रमा का उल्लेख तथा प्रशंसा सुने। रवि ने भी विवश होकर उठने का उपक्रम किया। कुन्ती तब बोली—"लेटे रहो बेटा, ऐसे ही तनिक आ बैठी थी। अकेले पड़े अच्छे नहीं लगते। सोचा, दो-चार बातें ही करूँ। घर में कोई बाल-बच्चा हो तो मन लगा रहता है बेटा! वैभव जब स्कूल जाता है, तो मुझे पहाड़-सी दोपहरी काटनी कठिन हो जाती है। बी० ए० पास कर ले तो इसके भी हाथ पीले कर दूँ। सगाई तो कई आ रही हैं। रमा यहाँ आये दो-चार मास के लिए तो अपनी भावज पसन्द कर जाय।" इतना कहकर कुन्ती रुक गई।

"अभी तो शायद यह एफ० ए० में है?" रवि ने पूछा।

"हाँ, पास कर लिया, इस साल तो फिर वह वहीं जाने के लिए कह रहा है अपने जीजा के पास। कहता है, इलाहाबाद की पढ़ाई अच्छी है; बी० ए० वहीं से करूँगा।"

तभी वैभव भी वहाँ आ गया—'आशा तो यही है कि उत्तीर्ण हो जाऊँगा।...आप बहन से पूछकर मुझे लिखियेगा।"

रवि का मुख एकदम स्याह पड़ गया। उखड़े हुए स्वर में वह बोला—"पास तो आप हो ही जायँगे। परिणाम आ ही जायगा। जब जी चाहे तभी चले आना। मै तो अभी साथ ले चलता, पर माताजी अकेली रह जायँगी।"

"मेरा क्या है बेटा, मैं तो अकेली भी रह लूँगी। किसी तरह यह और पढ़ जाय थोड़ा, तो अच्छा है। आजकल तो मैट्रिक पास को चपरासी की जगह भी नहीं मिलती। जीजा के पास रहकर थोड़ा अच्छा पढ़-लिख जायगा तो चार पैसे कमा खायगा।"

"हाँ माताजी, समय बड़ा खराब है। हर जगह पैसे की तंगी है। रोजगार मिलते कहाँ हैं?" और अवसर उपयुक्त समझकर रवि बोला—"दुकान का थोड़ा-बहुत काम था, वही न बना। अब सोच रहा हूँ, आपको क्यों व्यर्थ कष्ट दिया। रात की गाड़ी से लौट जाऊँ!"

कुन्ती सुनकर चौंक गई—"ऐसे कोई लौटना होता है? नींद पूरी करो आज, कल लौट जाना। यह भी तुम्हारा ही घर है। रमा के लिए दो-तीन जम्पर भी तब तक तैयार हो जायँगे···और भैया, उससे कह देना, अब के जेठ मे मथुरा वाली मौसी के बेटे का ब्याह है। रमा को अवश्य चलना है वहाँ। वैभव को भेज दूँगी, ले आयगा।···"

सुनकर रवि सन्न रह गया। हृदय में जो डर था, वह छिपाना कठिन था। फिर भी रवि उसे प्रकट कैसे होने देता? जो असत्य के बादल उसे कभी पथ से विचलित नहीं कर सके, आज वह उन्हीं में मुँह छिपाने के लिए विवश था। वाणी को संयत करते हुए वह बोला—"जम्पर-साड़ियों की भाभी को हमारे होते क्या कमी? यों आप देंगी, तो मै ले जाऊँगा। पर रुकना तो कठिन है। वहाँ भी दुकान अकेली ही छोड़ आया हूँ।" और फिर रवि ने पूछा—"मथुरा वाली मौसी कौनसी?"

"तुम नहीं जानते बेटा?" आश्चर्य से कुन्ती बोली—"वह रमा की शादी में उसकी एक बहन गौरी आई थी न?"

"वही जो शायद कहीं स्कूल में पढ़ाती हैं?" बीच में ही रवि ने पूछा।

"हाँ-हाँ, वही ! उसी की माताजी। वही मथुरा में रहती हैं। गौरी के छोटे भाई का विवाह है जेठ में। बारात इटावा जायगी। हमें मथुरा पहुँचना है। अपने बड़े भैया को भी समझा देना। कुछ दिनों के लिए भेज देंगे।...."

"अच्छा माताजी, कह दूँगा।" रवि और कुछ न बोल सका। कुन्ती का हर प्रश्न जैसे उसके चारों ओर एक फन्दा डालता चला जा रहा था। न चाहकर भी रवि उसमें घिर गया। जो-कुछ उसकी जानकारी में हो नहीं सकता, उसके लिए वह 'हाँ' कर चुका है। जो वर्तमान में अशक्य है, रवि ने उसे सत्य बना दिया है। उसे मौन बैठा देखकर कुन्ती बोली—"लो नींद भर लो, जाऊँ मैं। काम सिर लगूँ। रमा के लिए थोड़े बेसन के लड्डू ही बना दूँ। तुम्हारे बड़े भैया को भी अच्छे लगते हैं। और तुम्हें तो मैं अभी यहीं चखाती हूँ।..."

कुन्ती चली गई।

रवि और भी व्यथित हो गया। वैभव भी तब उठकर जाने लगा, जाते हुए पूछा उसने—"भाई साहब, पानी तो नहीं पीजियेगा ?"

"पानी ?" रवि को जैसे डूबते-डूबते तिनका मिल गया—"हाँ थोड़ा पी लूँ। फिर तनिक झपकी ले लूँगा।..."

इतने में ही कुन्ती स्वयं पानी का गिलास ले आई। रवि ने उसे आते देखा तो एक बार फिर अवसन्न हो गया। कुन्ती पानी का गिलास आगे बढ़ाती हुई कहने लगी—"रमा से कहना, आये तो मेरे लिए एक कनस्तर गंगा-जल—संगम का—अवश्य लेती आए।"

"हुँ ! हुँ !" कहते हुए रवि ने गिलास मुँह से लगा लिया। और कोई प्रश्नोत्तर न हो, इसीलिए वह धीरे-धीरे, एक-एक घूँट पानी पीने लगा। वार्तालाप में कुन्ती जितनी प्रसन्न दीख पड़ रही थी, रवि उतना ही अवसाद से घिर रहा था। कुन्ती चली गई। रवि पानी पीकर लेट गया। पर नींद कहाँ थी ? आँखों में तो रमा थी। रमा, जिसे आँखों के सामने देखने के लिए वह विह्वल हो चुका था। जिसे अपनी कल्पना के अनुकूल दिल्ली में न पाकर उसकी पीड़ा घनीभूत हो उठी थी। वह सोचने लगा—'रमा माँ के पास नहीं आई, तो किसी सम्बन्धी

के पास भी नहीं गई होगी। जिसके लिए पति के घर में स्थान नहीं है, उस विवाहिता को फिर माँ अथवा भाई का ही आश्रय रह जाता है। पर रमा माँ के पास भी नहीं आई।' मन में शंका उत्पन्न हुई—'क्या वह भाभी ही थी, जो उस दिन गाड़ी पर सवार हो रही थीं ?...हाँ, वह निश्चय ही रमा थी। फिर कहाँ गई ? क्या कहीं मार्ग में कूदकर ही आत्महत्या...?'...रवि की रोमावलि खड़ी हो गई '...नहीं, भाभी आत्महत्या करने की भावुकता नहीं दिखा सकतीं। फिर ?...इसका कोई उत्तर नहीं है।' कहा—'फिर ? क्या पता लगाने के लिए पत्थर से सिर फोड़ना होगा?....' और तब रवि को स्मरण हो आया कि शशिनाथ ने छुट्टी न मिलने का बहाना बनाकर भाभी की खोज के प्रति उदासी दिखाई थी। रवि के हृदय में गहरी चुभन हुई। इस क्षण वह मन-ही-मन भैया पर झुंझला उठा और साथ ही रमा के लिए भी उसके मन में पहली बार क्रोध का जन्म हुआ। रवि सोचता रहा था—'यदि कहीं जाना भी था तो मुझे तो बता ही देना था, कम-से-कम इतनी परेशानी तो न होती। मैंने पहले ही कहा था—भाभी, मैं भैया को राह पर ले आऊँगा; ऐसे कब तक सहन करोगी ? पर तब मुझे भी हस्तक्षेप न करने दिया। और अब, जब भैया को गिरने से बलपूर्वक रोकने का समय आया, तो उन्हें ऊँचाई पर अकेला छोड़कर चली गई। ...भैया भी यह नहीं समझ रहे हैं कि यदि भाभी का पता न लगा तो आजीवन माथा कलंकित रहेगा।....'तभी मन में एक बार उठा—'भाभी मथुरा तो नहीं चली गई मौसी के पास ? नहीं हो सकता, ऐसा हो नहीं सकता। जब माँ के पास नहीं आई तो मौसी के पास क्यों जाती ?....' और रवि ने तब सहसा वैभव को पुकारा।

तब वैभव घर में नहीं था। कुन्ती आ गई। रवि ने द्वार की ओर देखा नहीं। केवल आहट सुनकर ही उसके मुँह से निकला, "वैभव, तुम्हारी मौसी का पता क्या है ? शायद रमा वहीं चली गई हो ?..."

"रमा वहीं चली गई हो ?" अचम्भे से कुन्ती एकदम चिल्ला पड़ी—"क्या कहा ? क्या कहा तुमने ? क्या रमा घर से चली आई है ? तुम क्या उसी की खोज में यहाँ आये थे...?" कुन्ती जिस रहस्य का

पता लगाने के लिए सुबह से लालायित थी, उसके सहसा नग्न रूप में प्रकट होते ही उस पर जैसे बिजली गिर पड़ी। प्रश्नों की बौछार करते-करते उसका कंठ भर आया। रुँआसे गले से वह कह रही थी—"मेरी रमा कहाँ गई? तुम इसीलिए क्या गुम-सुम-से बने हुए हो—रमा···तू कहाँ गई···" कुन्ती के अवरुद्ध कण्ठ से और कुछ बोल नहीं निकला।

रवि को तब अपनी भूल पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। कुन्ती की आवाज सुनकर वह उठ बैठा। बात सँभालते हुए वह बोला—"माताजी, रमा तो घर ही है। मै तो इसलिए पता पूछ रहा था कि मै ही विवाह के अवसर पर उन्हे मथुरा पहुँचा जाता। आपको सहसा हुआ क्या?"

पर कुन्ती को विश्वास न हुआ। वह दृढ़ होकर बोली—"मुझे बातों में न टालो रवि! सही बात बताओ। अभी तुम्हीं तो कह रहे थे, शायद रमा वहीं चली गई हो।···"

"नहीं, नहीं, माताजी! मैं तो यह कहता था कि शायद मेरे साथ ही रमा मथुरा चली आए!···"

कुन्ती को फिर भी विश्वास न हुआ। उसका मन भी शत-शत शंकाओं से घिर गया। रवि मौन हो गया। चेहरा एकदम विवर्ण पड़ गया था उसका। चोर जैसे रँगे हाथ पकड़ लिया गया हो। कुन्ती कहने लगी—"क्या तुम इसीलिए जम्पर आदि ले जाने को टाल कर रहे थे, कि हमारे होते साड़ी-जम्परों की क्या कमी है भाभी को?"

रवि सटपटा गया। खिसियाना-सा होकर बोला—"माताजी, आप मेरा विश्वास तो कीजिए···मैं तो दुकान के काम से ही आया हूँ। काम नहीं बना, यह तो भाग्य की बात है? और यह अमरूद भैया-भाभी साथ ही जाकर खरीद लाये थे।···"

"झूठ—बिलकुल झूठ।" कुन्ती का विश्वास फटे हुए दूध की तरह छिन्न-भिन्न हो चुका था। जैसे कुएँ से पानी खींचने वाली हरेक रस्सी पत्थर को भी काट देती हो, उसी प्रकार रवि का हरेक तर्क कुन्ती के

 विश्वास को टूक-टूक किये दे रहा था—"मैं सुबह से देख रही हूँ।

तुम्हारे चेहरे पर सचाई की आभा ही नहीं है। भय, चिंता और शंका से तुम काले पड़े जा रहे हो। मेरे बाल धूप में सफेद नहीं हुए रवि! मैं सब समझती हूँ। दुकान के काम का तो बहाना था। एक दिन में व्यापार के धन्धे नहीं हो जाते।...''

रवि वृद्धा की बातें सुनता-सुनता जान-बूझकर हँस पड़ा—''माताजी, आप मेरा विश्वास कीजिए। भाभी घर पर ही हैं।''

''तुम यह क्यों कह रहे थे फिर कि शायद रमा वहीं, मथुरा ही चली गई हो। जब तुम्हें ठीक पता नहीं अपनी भाभी का, तभी तो यह कह रहे हो न?''

''नहीं, नहीं। मैं फिर भी यही कहूँगा कि आपको भ्रम हुआ है। आप जो कुछ सामान देंगी, उसकी पहुँच आपको भाभी अपने हाथ के पत्र से देगी, तब तो आपको विश्वास होगा?'' रवि ने अपनी जान छुड़ाने के लिए इतना 'खतरा' और मोल लिया। कुन्ती इस तर्क से सचमुच चुप हो गई। रवि का साहस न हुआ कि अब मथुरा का पता पूछे। और कुन्ती भी इस मूल प्रश्न को भूलकर काम में लग गई। पर उसका मन अभी भी शंका से घिरा था। हाथ-पैरों की जैसे जान निकल गई थी। रवि को पल-पल पहाड़-सा लगने लगा। वह लेटा न रह सका। कुन्ती के कक्ष से बाहर जाते ही उसने जो एक दृष्टि अपने पर डाली तो देखा कि पसीने से सारा शरीर तर हो गया है, गला सूख गया है, जिह्वा में जैसे काँटे पड़ गए हैं। वह तपती रेत में धूप से जलते हुए पक्षी की तरह व्याकुल हो गया। कमरे से बाहर जाना नहीं चाहता था। और वहीं घुटे रहने में भी चैन कहाँ था? विचित्र दुविधा में फँसा हुआ, वह उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा जब कि उसे ताँगे पर बैठकर पुनः स्टेशन के लिए रवाना हो जाना है।

धड़कते हुए हृदय से कुन्ती ने लड्डू और साड़ी-जम्पर रवि को सौंप दिए। रवि ने भी विकम्पित हाथों से उन्हें ग्रहण किया। एक बार फिर वह रेल की उस चौपाल में आ बैठा जहाँ के दूषित, बीड़ी-सिगरेट के धुएँ से घुटे हुए वातावरण एवं सब प्रकार के ऊलजलूल वादविवाद से उसके मस्तिष्क और कान पहले ही पके हुए थे। और रवि के जाते

ही कुन्ती की शान्त दुनिया में भी एक उथल-पुथल मच गई। रात-दिन उसे रमा की ही चिन्ता सताये रहती। रहस्य प्रकट हुआ तो, पर रवि गया और उसे रहस्य में ही छोड़ गया।

हर दिन रमा के पत्र की प्रतीक्षा में ही बीतने लगा। एक-एक दिन, एक-एक मास-सा भारी हो गया। और पत्र न मिलता तो कुन्ती रवि के लिए छलिया, धोखेबाज और न जाने क्या-क्या कहकर अपने उद्विग्न मन को शान्त करने का असफल प्रयत्न करती। ऐसे ही एक दिन, दो दिन, तीन दिन बीत गए। कुन्ती की भूख मर गई, हाथ-पैर सूखने लगे। और चौथे दिन जब वह रसोई बना रही थी तो वैभव हाथ में एक पत्र लिये मुँह लटकाये हुए उसके सामने आ खड़ा हुआ। वृद्धा की आँखों में क्षण-भर के लिए आशा की स्निग्धता दीख पड़ी। पर वैभव को कुछ भी न कहते और खिन्न मुद्रा में देखकर वह शंकित हृदय से चूल्हा छोड़कर उठ आई। उसके पास आते-आते वह बोली—"बता तो क्या लिखा है बहन ने? कैसे लगे लड्डू उसे?"

इतना सुनते ही वैभव के नेत्रों में दो उज्ज्वल मोती छलक आए। वह अब भी पत्थर-सा खड़ा था। "हुँः लड्डू!" उसने लम्बा निश्वास छोड़ा।

"क्या बहन का पत्र नहीं है? अरे बोल तो सही?" कुन्ती की घबराहट सुस्पष्ट थी।

"है तो बहन का ही, पर गौरा बहन का है। बहन प्रयाग से वहीं आ गई हैं। शशिनाथ जी एक बंगाली युवती से विवाह करने जा रहे हैं।"

"क्या?" एक चीख के साथ कुन्ती धम् से पृथ्वी पर आ रही; बदन पसीने से तर हो गया। जैसे अनायास वज्र टूट पड़ा हो। हाँफती हुई वह रसोई से बाहर उठ आई। लड़खड़ाते पैरों से वह अपनी खाट पर आ पड़ी।

रुँधे हुए गले से बोली—"बेटा, और क्या लिखा है? तू जा उसे ले आ।"

 "माँ, लिखा है—यहाँ अच्छी तरह से है। स्कूल में पढ़ाने लगी है।

उससे छिपकर पत्र लिखा है। यदि यहाँ कोई लेने आयगा तो, कहती है, 'कहीं और जाकर मुँह छिपा लूँगी। जो पहाड़ मुझ पर टूटा है उसे मैं ही सहन करूँगी।' इसलिए वैभव भैया तुम आना नहीं...."

कुन्ती के बुझे-से नेत्रों से दो आँसू ढुलके और झुर्रियों में उलझकर बिखर गए। वह बेसुध-सी पड़ी रही। बदन जैसे ऐंठने लगा। उस दिन चूल्हा जलकर भी औंधा पड़ा रहा। न कुन्ती ने कुछ खाया और न वैभव ने। कुन्ती के हृदय में जो चिनगारी रवि छोड़ गया था, उसमें छिपा ज्वालामुखी अब फूट पड़ा था। कुन्ती पुत्री के दुःख से दुखी हो गई और जलने लगी। उसने अपने बुढ़ापे को कोस डाला अपने वैधव्य पर सौ लानतें ढाईं और अपनी नारी की असमर्थता पर पानी बहाया। पर इस खारे पानी से मन की आग शान्त होने के बजाय सारे शरीर में फैल गई। उसका रोम-रोम जलने लगा और शरीर क्रमशः क्षार होने लगा—'मेरे होते रमा, जिसे आँखों के साये की तरह पाला-पोसा, इतना कष्ट सहन करेगी? किसी का मैंने क्या बिगाड़ा था भगवान्! मेरी पुत्री आज मुझसे इतनी रुष्ट हो गई कि मेरे पास आने को भी तैयार नहीं। मैंने उसका क्या बिगाड़ा था?...अच्छा घर-वर देखकर ही हाथ पीले किये थे। फिर भी भाग्य में यह वियोग लिखा था! विधाता तूने नारी को बनाया ही क्यों है?' वैभव ने पत्र की जो पंक्तियाँ पढ़ी थीं, वह जैसे चारों ओर अंकित हो गई थीं। हर ओर से यही प्रतिध्वनि गूँज रही थी— 'शशिनाथ एक बंगाली युवती से विवाह करने जा रहे हैं...' कुन्ती के नेत्र फिर डबडबा आए। आँखों में अन्धकार छा गया। सुध-बुध खोए कुन्ती कब तक पड़ी रही उस दिन, पता नहीं। वैभव भी वहीं माँ के पास ही अवसाद से घिरा लेटा रहा। उसे रमा के चले आने का दुःख था, पर वह अपनी रोटी स्वयं कमाने के लिए स्कूल में पढ़ाने लगी है, यह जानकर, उसका मस्तक स्वाभिमान से उन्नत हो गया।

दिन-रात वह माँ को समझाने लगा। पर कुन्ती को जो आघात पहुँचा था, वह सांघातिक बन चला। चुप-चुप वह जलने लगी। सोचती—"जब दम तोड़ने लगूँगी, तब तो एक दिन आयेगी ही।...."

और उसका जर्जर-जीर्ण शरीर जैसे प्रतिदिन नव-निर्माण के लिए 'रक्त-हीन क्रान्ति' की ओर बढ़ने लगा।

सत्रह

उषा बेला में तब प्रकृति का अजिर नवचेतना के फूलों से कुसुमित हो उठा था। क्रीड़ा, मधुरव और विनोद करते हुए उड़ने वाले विहग-दल ने उस जीवनदायिनी बेला में सुधा लुटा दी थी। हर दिशा में तब प्राण, नई चेतना, नया जीवन बोल उठा था। पर प्रोफेसर शशिनाथ आज भी जब सोकर उठे तो उदास, खिन्न, मुरझाये हुए थे। घर की एक-एक वस्तु जैसे आज उन्हें अकेला देखकर उनका उपहास कर रही थी। और वह विवश बैठे थे—हाथ-पैर जैसे किसी ने काटकर डाल दिए हों, स्नायुओं में रक्त-संचार अवरुद्ध हो गया हो। इतने बड़े संसार में आज वह अकेले हैं, बिलकुल अकेले। भीतर से कलेजा टूट चला। पत्थर-सी आँखें द्वार पर लगी थीं। रवि के आने की प्रतीक्षा थी। पर मन में वह विश्वास न था कि रमा रवि के साथ आ ही जाने वाली है। यदि यह रात्रि कालरात्रि की तरह लम्बी हो जाती, तो हृदय-मस्तिष्क भी मृतप्राय पड़े रहते। पर रजनी के अश्रु-बिन्दुओं को कुचल डालने में यह ईर्ष्यालु मार्तण्ड विलम्ब क्यों करता! उसे तो कर्तव्यबद्ध हो अवनि-अम्बर को ज्योतिर्मय करना था; इस निर्जीव-से संसार को निद्रा के क्रोड़ से उठाना था। परोक्षरूप से रुक जाने वाले विश्व-चक्र को पुनः संचालित करना था; पर शशिनाथ जागने पर भी जैसे अचेत थे। घड़ी ने सात बजाये तो उनका पत्थर-सा पिण्ड अनायास ही गतिमान हो उठा। पन्द्रह मिनट बाद ही रेडियो-स्टेशन से स्टेशन वैगन' आ जायगा।

एक क्षण के लिए सब-कुछ भुलाकर वह तैयार हो गए। 'स्टेशन वैगन' ने नियत समय पर आकर हॉर्न बजाया। शशिनाथ गम्भीर मुद्रा में आ बैठे। ड्राइवर ने अभिवादन किया, पर उनके होठ न खुले।

ड्राइवर के लिए उनका यह गाम्भीर्य नया न था। वह सोचता था, बाबूजी अभी नये हैं, धीरे-धीरे खुल जायँगे। उसे क्या पता था कि बाबूजी पर गहन विपदाओं का पहाड़ टूट पड़ा है; शरीर काष्ठवत् होकर भी जीवन की विषमताओं को सहन कर रहा है। उसे तो नित्य बाबूजी को 'पिक अप' करके रेडियो-स्टेशन ला छोड़ना होता है। पर उस दिन उसने स्वयं मौन तोड़ा। जार्ज टाउन के थिरकते वातावरण में से मोटर गुज़र रही थी। लेकिन शशिनाथ को खिडकी से बाहर दीखने वाले आलीशान बंगलों का सौन्दर्य अपनी ओर आकृष्ट न कर सका। वे सीधी दृष्टि किये बैठे थे। अनायास ड्राइवर के सामने लगे छोटे शीशे पर उनकी दृष्टि चली गई। तभी ड्राइवर ने उस ओर ध्यान किया। दोनों की आँखें उस तिरछे दर्पण में परस्पर टकरा गईं। बस, ड्राइवर बोल उठा—"रात गोकुलबाबू ने एक पत्र दिया था। आज आपको 'ग्राम-संसार' में काम करना है। वहाँ का एनाउन्सर (उद्घोषक) छुट्टी पर है।"

शशिनाथ तब विस्मित होकर पूछने लगे—"ग्राम-संसार में? क्या प्रोग्राम की कोई 'लिस्ट' (सूची) दी है?"

"हाँ, हाँ कुछ है तो पत्र के साथ," कहते हुए ड्राइवर ने गोकुल बाबू का पत्र शशिनाथ को दे दिया।

मोटर अपनी गति से चली जा रही थी। ड्राइवर अपने सामने वाले मुकुर में शशिनाथ का प्रतिविम्ब देख रहा था। उसने देखा, प्रोग्राम की लिस्ट पर आँखें दौड़ाते-दौड़ाते शशिनाथ के नेत्र विस्फारित-से हो चले हैं। चेहरे का पीलापन सफेदी ले चुका है और बार-बार वह उस लिस्ट के दो पीले पन्ने उलट-पुलटकर देख रहे हैं। उसकी समझ में कुछ न आया। उसने यही सोचा कि बाबूजी कुछ विचित्र हैं जरूर!

'स्टुडियो नम्बर चार' में शशिनाथ माइक पर अभी-अभी आज का कार्यक्रम घोषित करके चुके हैं। उनका स्वर विकम्पित है। अभी मीराबाई के दो रिकार्डों के पश्चात् ही मिस चैटर्जी भजन सुनाने वाली हैं; बस, इसीलिए शशिनाथ उद्विग्न हैं; इसीलिए उनका स्वर विकम्पित है। मीराबाई का अन्तिम रिकार्ड बजते-बजते शशिनाथ की आँखों के

सामने सुमन चैटर्जी उपस्थित हो चुकी थीं। साज-संगीत का सामान, वाद्य-यन्त्रों का प्रबन्ध, सब पूर्ण था। सुमन ने उन्हें देखा, तो वह उस क्षण विवश हो गई। नेत्र एक बार ऊपर उठे थे, फिर उन्नत न हुए। मस्तक पर छोटे-छोटे स्वेद-कण थे और हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा था। और शशिनाथ को हल्के सुरमई रंग की बारीक बनारसी साड़ी में लिपटी हुई वह रूप-लावण्य की प्रतिमा उस पल किंचित् भी सम्मोहित न कर सकी। लिस्ट में उसका नाम पढ़कर जहाँ वह अज्ञात भय से काँप-से गए थे, वहाँ अब सुमन को आँखों के सामने देखकर क्रोध से उनके दाँत किसकिसा उठे। बाहुओं में स्फुरण हुआ और फिर निगाहें उस ओर से हट गईं। कानों पर लगे 'हैडफोन' की ओर तब उनका सारा ध्यान केन्द्रीभूत हो गया था।

झुके नेत्रों से सुमन ने देखा, प्रोफेसर की मुद्रा पर नारी-वियोग और तत्सम्बन्धी परिस्थितियों से उत्पन्न विषाद की कालिमा स्पष्ट उभर आई है। सुमन पश्चात्ताप से जली जा रही थी। नियति का विधान भी कैसा है? वह आज विजयोल्लास से उत्फुल्ल होते-होते पराजय के क्लेश से कुम्हला गई है। शशिनाथ को नीचा दिखाने की स्पर्धा में वह सचमुच आज अपने हाथों से अपनी नाक काट चुकी है। मन में आया प्रोफेसर के चरणों में गिर पड़े, उनसे क्षमा माँगे। लोचनों से जल-कण बाहर आने के लिए मचल उठे। जी चाहता था, अपना बोझ आज सदा के लिए हल्का कर ले। आज जो संयोग बन पड़ा है, वह क्या फिर भी उपस्थित हो सकेगा? प्रोफेसर साहब अब यूनीवर्सिटी से छुट्टी पर हैं। क्या पता फिर कब मिलना हो। आत्म-ग्लानि से सुमन घुट-सी चली। मस्तिष्क में झनझनाहट-सी होने लगी। तभी सुन पड़ा—
"अब आप मिस सुमन चैटर्जी से एक भजन सुनिए—'तू सुमिरन कर ले मेरे मना।'—मिस सुमन चैटर्जी!"

सुमन सँभलती हुई माइक के सामने आ बैठी। प्रथम किरण से कोमल तार तब झंकृत हो उठे। सुरीले कण्ठ से बारीक स्वर सम्मोहन बरसाने लगे—"तू सुमिरन कर ले मेरे मना...तेरी बीती जाति हरिनाम बिना।..."

शशिनाथ कानों से हैडफोन हटाकर उठ खड़े हुए। पर स्टुडियो से बाहर वह जा न सके; एक ओर वहीं बैठ गए। तब शशिनाथ के दूर हटते ही सुमन के स्वर में कुछ स्वाभाविकता आ गई। वह गा रही थी—

"कूप नीर बिनु, धेनु क्षीर बिनु, मन्दिर दीप बिना।

जैसे तरुवर फूल-बिहीना, तैसे मन हरिनाम बिना···तू सुमिरन···

देह नैन बिन, रैन चन्द बिन, नारी पुरुष बिना···"

गाते-गाते सुमन का कण्ठ अनायास ही फिर अवरुद्ध हो गया। वह अंतरे को दोहराने लगी तो गला भर आया था। 'नारी पुरुष बिना' तक आते-आते उसके मुँह से स्वर न निकला। नयन और कण्ठ दोनों ही आर्द्र हो गए। आँखों में रमा की काल्पनिक प्रतिमा मूर्त हो उठी। सुमन का स्वर रुकते-रुकते वाद्य-यन्त्रों की ध्वनि तेज़ हो गई थी। शशिनाथ घबराकर सुमन के पास ही दौड़ आए। न चाहते हुए भी उसकी पीठ धीरे से थपथपाई। "गाओ न," फुसफुसाहट के स्वर में वह बोले। पर वास्तव में—'देह नैन बिनु, रैन चंद बिनु, नारी पुरुष बिना' गाते-गाते सुमन की वाणी में जो दर्द बोल उठा था, उससे शशिनाथ भी द्रवित हो गए। कर्तव्य से बँधे वह एक बार पुनः सुमन के कान में बोले—"क्या हुआ तुम्हें ? गाओ न···हाँ···हाँ···"

तब सुमन ने एक बार सम्पूर्ण साहस बटोरकर फिर गुनगुनाया—'जैसे तरुवर फूल बिहीना' पर आगे वह कुछ न गा सकी। कण्ठ भीज चुका था। भर्राये हुए गले से सहसा वह पुकार उठी—"बहन रमा, जहाँ कहीं भी हो लौट आओ। सुमन क्षमा चाहती है···" वह फूटकर रो पड़ी। सारे स्टुडियो में एकदम खलबली मच गई। "ये क्या किया सुमन ?" क्रोध से शशिनाथ तिलमिला उठे। और अगले ही क्षण वह विनम्र स्वर में बोले—"क्षमा कीजिए! मिस चैटर्जी अब गा नहीं सकेंगी। अब एक और रिकार्ड सुनिए।" विद्युत् गति से भजन का एक रिकार्ड चढ़ाकर शशिनाथ बाहर की ओर दौड़े। लड़खड़ाती हुई सुमन तब तक बग्घी में आ बैठी थी—पसीने से नहाई हुई। शशिनाथ को देखते ही वह उस अर्धचेतनावस्था में चिल्ला पड़ी—"मुझे क्षमा करना प्रोफेसर साहब! मैंने यह कभी नहीं चाहा था···कभी नहीं चाहा था

प्रोफेसर साहब···" तब शशिनाथ का संकेत पाकर कोचवान गाड़ी हाँक ले चला।

सुमन चली गई। और शशिनाथ ने रेडियो-स्टेशन पर आग की तरह फैलने वाली इस चर्चा पर परदा डालने के लिए सबसे कहना शुरू किया—"पता नहीं, क्यों भजन गाते-गाते वह एकदम द्रवित हो उठी। मुझे तो कोई कारण पता नहीं। मैं क्या कह सकता हूँ?···" और वह सचमुच ऐसे अनभिज्ञ बन गए कि किसी को संदेह तक न हुआ कि इस घटना से उनका भी कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है। बाहर की चर्चा पर वह परदा डालने में सफल हो गए, लेकिन अन्तर की आँधी का प्रचण्ड वेग वह सँभाल न सके। प्रोग्राम पूरा करना भारी हो गया। सुमन का विमल हृदय आज उनके सामने स्फटिक-सा स्पष्ट हो गया। कहीं भी कलौंस नहीं थी। कुछ ही क्षण पूर्व उनके मन में जो क्रोध जागा था, वह अब काफ़ूर हो चुका था। हृदय में अब सुमन के लिए दया-क्षमा के भाव उमड़ पड़े। आज पहली बार मन में इतना साहस हुआ कि 'जाकर सुमन के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर आऊँ। अपनी भूल के लिए आज उसने प्रायश्चित्त किया है। लेकिन क्या रमा ने यह सुना होगा? कौन जाने वह कहाँ है। जहाँ है, वहाँ रेडियो भी है या नहीं?···और सुनकर भी क्या वह इस पर विश्वास करेगी? क्या रवि ये सब सच मान लेगा?···' सोचते-सोचते शशिनाथ फिर रमा से घिर गए। 'काश, रमा ने यह सब सुना होता; सुनकर लौट आती। ···और अब भी वह न लौटी तो कब लौटेगी? जिसे ज्ञात न था, वह भी अब जान गया। जो औरों के लिए गुप्त था, वही सबके लिए प्रकट हो गया। न लौटी, तो निन्दा होगी। सुमन ने अपने हृदय की कालिमा धो डाली, लेकिन यह अब भी न सोचा कि ऐसा करके वह किसी की लोक-प्रतिष्ठा पर कलंक बरसा रही है।···' लोक-निन्दा के भय से शशिनाथ फिर काँप उठे। किसी की ओर आँखें उठाने की हिम्मत उनमें न रह गई थी। प्रोग्राम समाप्त होते ही वह आज नित्य की भाँति चाय पीने 'कॉफी-हाउस' में न गये; सीधे घर चल दिए। गरदन झुकी थी, पर कदम तेज़ी से उठ रहे थे सुमन ने आज फिर उनमें एक नई

शक्ति फूँक दी थी। विचारों में प्रवाह था। मन उसी क्षण यह मान लेना चाहता था कि रवि खाली हाथ लौटा है अथवा अपनी भाभी को साथ लेकर। नेत्र रवि और रमा को उसी पल सामने देख लेने के लिए लालायित थे। इसीलिए चाल मे तेज़ी थी। आशा-निराशा, हर्ष और विषाद की तरंगों में बहते हुए वह घर आ पहुँचे। द्वार खुला था। लपककर अन्दर घुसे। जोना चढ़ते-चढ़ते पुकारा—"क्या रमा आ गई है रवि ?···रवि-रवि, बोलो न ?···" तब तक शशिनाथ के सामने चाँदना हो चुका था। रवि को अकेले ही मुँह लटकाए बैठा देखकर वह समझ गए—रमा का पता नहीं लगा। तब उनका चेहरा ऐसा काला पड़ गया जैसे वे अनजाने किसी की हत्या कर बैठे हों। रवि ने लड्डू, धोती, जम्पर, जो-कुछ भी कुन्ती ने दिया था, सब अपने भैया के सम्मुख बिखेर दिया। भाभी की माताजी ने यह सब दिया है। अब आप ही इसका उपभोग कीजिए।···आपकी भूल का प्रायश्चित्त मैं कहाँ तक करूँ ? जहाँ आप चाहें, भाभी को ढूँढने जायँ। मैं कहाँ झक मारता फिरूँ ? आप अग्रज हैं, पर आपने ऐसा कार्य किया है कि मैं आपका मुँह भी नहीं देखना चाहता।···"

इतना सुनकर शशिनाथ का स्वर कातर हो गया। अपराध स्वीकार करने वाले अभियोगी की नाईं वे बोले—"तो मैं भी कहीं चला जाता हूं। तुम अकेले यहाँ सुख से रहो। जो-कुछ मैंने किया है उसका फल भी मैं ही भोगूँगा। यही इस संसार का शाश्वत नियम है। तुम मेरे लिए, दिल्ली का चक्कर लगा आए, सो भी एक सप्ताह बाद, यह मुझ पर बड़ा अहसान किया। अब तुम्हें मेरे लिए कोई कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं।··· यदि मेरा हृदय निर्मल है, तो एक दिन रमा अवश्य लौटेगी। थोड़ी-सी भूल करके मैंने जो कलंक माथे लिया है वह धुल जायगा···" कहते-कहते शशिनाथ रवि को वहीं बैठा छोडकर अपने कक्ष में चले गए।

अट्ठारह

रेडियो से सुमन की जिस कातर वाणी का प्रसार हुआ, वह नारायण बाबू के तीर की तरह चुभती चली गई। जिस दिन भी रेडियो पर बेटी का प्रोग्राम होता था, वह बड़े चाव से सुनते थे। सुनते थे और प्रसन्न होते थे। पर उस दिन वह विचलित हो उठे। सुमन के अन्तरतम से जो दुःख फूट पड़ा था, उसने नारायणबाबू के हृदय को छू लिया। सुमन की प्रतीक्षा में वह छज्जे पर आ खड़े हुए। हरेक घोड़ा-गाड़ी को आँखें फाड़-फाड़कर देखते। कुछ देर बाद बग्घी आ गई। सुमन लड़खड़ाती हुई उतरी। हृदय अब भी पश्चात्ताप के भूरे मेघों से भारी था। गिरती-पड़ती वह जीना चढ़कर ऊपर आई और बाबू की ओर देखकर एक बार फिर वह आठ-आठ आँसू रो पड़ी। पिता ने पुत्री को अंग से लगा लिया। मस्तक पर हाथ फेरा। मस्तक गरम था। नारायणबाबू चिन्तित हो गए। सुमन को पलंग पर लिटा दिया। कोचवान से कहा—"डॉक्टर घोष को ले आओ।"

...और छात्रावास में उस सन्ध्या को एक तहलका मच गया। छात्रों ने राजाराम को घेर लिया। किसी ने कहा—"आज तो प्रोफेसर से रेडियो पर टक्कर हो गई दीखती है?" कोई बोला—"मिस्टर राजाराम, ये क्या गोल-माल है, साफ-साफ बताना होगा, अब तो!" एक बोला—"बड़ी रंगत लाया यह गुल तो।" सौ तरह की बातें और सवाल राजाराम पर बरस पड़े। जो-कुछ हुआ था, उससे वह स्वयं व्यथित हो उठा था। सबकी बातें सुन लेने के बाद वह एक क्षण मौन रह गया। दस-पन्द्रह छात्रों से वह घिरा बैठा था। सभी की प्रश्न-भरी दृष्टियाँ उस पर लगी थीं। राजाराम ने एक बार चारों ओर देखा। फिर बोला—"ठीक ही हुआ! सुमन ने आज हमेशा के लिए स्पष्ट कर दिया कि उसका प्रोफेसर से कोई सम्बन्ध नहीं। रमा गई है तो प्रोफेसर की अपनी ही भूल से। पर अवान्तर रूप से जो थोड़ा-बहुत दोष

 सुमन के सिर आया है, उसके लिए वह सार्वजनिक रूप से क्षमा माँग

चुकी। रमा के प्रति उसके हृदय में गहरी सहानुभूति है। इसलिए मैं समझता हूँ—'नारी पुरुष बिना' की भावना से ही उसे रमा का ध्यान आ गया होगा, इसी कारण वह गाते-गाते द्रवित हो उठी होगी। पद की इस पंक्ति से उसके हृदय को भारी ठेस पहुँची होगी।···"

राजाराम के युक्ति-संगत तर्क से छात्र सन्तुष्ट हुए। सुन पड़ा—"खैर भई, सुमन ने प्रोफेसर को छकाया खूब!" कोई और बोला—"बेचारे डर-ही-डर में छुट्टी चले गए।···" एक कहने लगा—"सारी सफलता का श्रेय राजाराम को है।"

तब राजाराम चौंककर बोला—"यह खूब कहा! मैं औरों के फिक्र में दुबला नहीं होता हूँ।···प्रोफेसर में साहस की कमी है। बात मामूली थी।···" धीरे-धीरे सब छात्र हट गए। राजाराम के कानों में सुमन का वही भीगा स्वर गूँज उठा।···

···लेकिन गौरी ने जब रेडियो पर यह सुना तो वह हर्ष और विस्मय से घिर गई। 'रमा बहन, जहाँ कहीं भी हो, लौट आओ, सुमन क्षमा चाहती है।··· यह सुमन कौन है? उसकी यह कैसी प्रार्थना? कैसी क्षमा-याचना? यह सुमन कौन है?···तब उसे उद्-घोषक का स्वर स्मरण हुआ—'सुमन चैटर्जी से भजन सुनिए।'···सुमन चैटर्जी, चैटर्जी, याने बंगाली है। गौरी सोचने लगी—तो क्या यह वही बंगाली युवती है?···मन में विश्वास हुआ गौरी को—अवश्य यह वही युवती है। मैं सोचती न थी कि शायद विवाह रुक गया हो। और वही जब रमा को लौटने के लिए कह रही है, सो भी इतने करुण स्वर में, तो अवश्य ही इसका कुछ अर्थ है। क्षमा माँगकर वह अपनी भूल स्वीकार कर चुकी है। कितनी करुण वाणी थी! अवश्य ही रमा के यहाँ चले आने में उसकी ओर से कोई भूल हुई भी है, तो अन-जाने।···रमा से कहूँ,···नहीं! उसके मन में शंका की जड़ें बहुत गहरी हैं। असली रहस्य जान लेने के लिए फिर क्या किया जाय? सुमन के हृदय की घुण्डी खुल चुकी है। रमा से कुछ पूछा तो शायद बुरा माने। सुमन की क्षमा-याचना सुनकर सम्भव है, कहीं और चली जाय।···' गौरी ने तब सोचा—'सुमन को ही पत्र लिखा जाय। उसे

लिखूँ, यदि वह अपनी पूरी समस्या को विस्तार से लिख भेजे तो मैं रमा का पता लगाने में उसकी सहायता कर सकती हूँ।' रमा शरबती के साथ शिशु-पालन-गृह से अपने लिए औषधि लेने गई थी। उसके पेट में पिछले कुछ दिनों से पीडा बढ चली थी। गौरी उसके लौटने से पूर्व ही एक लम्बा पत्र लिख चुकी थी। रेडियो-स्टेशन की मार्फत वह सुमन के नाम भेज दिया गया। रमा लौटी तब गौरी रसोईघर मे थी। रेडियो बन्द था। हारी हुई वह पलंग पर आ लेटी। शरबती गौरी के पास आकर बोली—"बडी मिस ने देख-दाखकर कह दिया है, दो चार दिन की ही कसर है।···छुट्टी दिला दो अब बीबीजी को!"

गौरी सुनकर प्रसन्न हुई। पर अगले ही क्षण उसकी मुद्रा गम्भीर हो गई। रमा के प्रति उसके मन में जो प्रेम और सहानुभूति थी, वह कुछ सुमन ने बटा ली थी। रमा से अब तक उसकी जो बातें हुई थीं और जिस प्रकार ट्रेन मे संयोगवश उनकी भेंट हुई, उस सबका विस्तार से वृतान्त लिखने के बाद गौरी ने लिख दिया था झूठ ही, कि रमा अब यहाँ से भी कहीं चली गई है। उसके घर से चले आने का सही-सही कारण लिखें, तो मैं उसका पता बता दूँगी। यदि आप स्वयं ही यहाँ आ जायँगी तो संभव है रमा का जल्दी पता न लग सके। अतः आप जब तक मैं लिखूँ नहीं, आने का कष्ट न करें।···सुमन के प्रति इस पत्र मे गौरी ने किसी प्रकार की घृणा या विद्वेष के भाव लेश-मात्र भी न आने दिए थे। वह चाहती थी, किसी भी प्रकार जल्दी ही रमा के हृदय का बोझ हल्का हो जाय। रमा के पहली बार मिलने पर गौरी ने उसके और शशिनाथ के बीच जो प्राचीर देखा था, वह आज खण्ड-खण्ड हो गया दीख रहा था। इसीलिए वह चाहती थी कि एक बार शशिनाथ रमा को सम्मान-सहित घर ले जायँ और रमा अपने पति के यहाँ शर्मिष्ठा की भाँति ही प्रतिष्ठा पाये। एक बार, केवल एक बार ही यह वहाँ हो तो आए, फिर चाहे यहीं आकर स्कूल में पढ़ाती रहे। मैं उसे न रोकूँगी। पर सुमन सही मार्ग पर आ चुकी है, तो रमा के घर लौटने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। मौसी को जो दुःख इस वृद्धावस्था में हुआ है, उसका बोझल पत्थर उनकी छाती से जल्दी

हो हट जाय; और यह काम सुमन ही कर सकती है। रवि और शशि को लिखना व्यर्थ था, उनके साथ वह नहीं लौटती। नहीं लौटती···गौरी के मन में उस रात यह विचार-दोहन बहुत देर तक चलता रहा। शरबती चौका-बर्तन करके रमा के पास जा लेटी और आपस में गप-शप करते-करते वे सो भी गईं। पर गौरी जागती रही—उस क्षण से नव विहान की प्रतीक्षा में। नव विहान जो अपने साथ नवीनता लाने वाला है। जिसमें नूतन घटनाएँ घटेंगी। नये परिवर्तन होंगे। आशा-निराशा की किरणें बिखर जायँगी। मिलन और बिछोह, हर्ष और विषाद, सुख-दुःख का नृत्य कर उठेंगे। और यही क्रम, संसृति का चक्र न जाने कब तक चलता रहेगा। नव विहान जीवन में सदैव नव ज्योत्स्ना बिखेरता रहे, बिखेरता रहे।

और उस दिन जब रमा के जीवन में विवाह के बाद पहला विशेष नव विहान आया तो वह प्रसव की पीड़ा भूलकर भी गुलाबी हो गई। उसने पुत्र को जन्म दिया था। गौरी के उस छोटे-से घर-आँगन में उत्साह थिरककर नाच उठा। शरबती उस रात मोहल्ले की चार-छः बहू-बेटियों को इकट्ठा करके बहुत देर तक ढोलक पीटती रही। लेकिन इस ढोलकी की ढप-ढप ने जैसे रमा के हृदय की सारी प्रसन्नता छीन ली। जिस सासू को कभी देखा नहीं था उसने, उसकी अनुपस्थिति उसे खटकी। वह होतीं तो कितनी खुशी मनातीं। और फिर पति का स्मरण हो आया। बस, वेदना से उसका हृदय विदीर्ण हो चला। वह भगवान् से अपनी भी मृत्यु माँगने लगी और उस नव विहान की प्रथम रश्मि के अस्त होने की कामना भी करने लगी। शोक की विह्वलता नयनों में नीर बनकर उमड़ आई।

अर्थाभाव के कारण शरबती के तलुए चाटने के लिए उसका पति स्कूल और गौरी के घर के चक्कर काट रहा था। पर शरबती ने उसे पाई-पाई के लिए तरसा दिया। उसका सीधा जवाब था—"जिसे घर में लाकर बसाया है, उससे ही माँग।" शरबती पति के साथ अपने घर लौटने को तैयार थी, पर इस शर्त पर कि हरखू की विधवा पहले निकल जाय। लेकिन शरबती का पति उस विधवा को अपनाने के बाद

अब उसके दीन-धर्म की रखवाली करने में पीछे नहीं हटना चाहता था। और इस स्तर पर शरबती झुकने के लिए तैयार न थी। उस रात जब शरबती ढोलक बजा रही थी, उसका पति रामादीन बारह बजे तक बाहर बैठा उसकी प्रतीक्षा करता रहा। अनेकों बार दुत्कार-फटकार खाने के बाद भी उसने शरबती को मना लेने की आशा न छोड़ी थी। पहले कई अवसर ऐसे आये जब शरबती रूठकर चली आई थी, लेकिन समझौता भी जल्दी ही होता था। पर इस बार झगड़े के कारण और क्रोध से क्षार हुआ वह लौट गया। शरबती का सुख अब उसे फूटी आँख न सुहाया। वह सोचने लगा—'घर में मेरे खाने को आटा नहीं, यह दूसरों के घर ऐसे मज़े से रह रही है; नाचे-गावे है। मुसीबत में पति को छोड़ दिया। मैंने भी बरसों कमाई करके खिलाया है। देखूँगा अब मास्टरनी कितने दिन रख लेगी।...' बस, अगले दिन से ही वह स्कूल के चक्कर काटने लगा। शरबती से पाँच-छः दिन तक उसका साक्षात्कार न हो सका। रामादीन गौरी के घर आकर ही ऊलजलूल बातें बकता, शरबती चाहे वहाँ होती या न होती। वह सोचता था रोज़-रोज़ बक-झक करूँगा, तो मास्टरनी एक-न एक दिन उसे निकाल बाहर करेंगी। पर ऐसा नहीं हुआ। तब एक दिन दोपहर में वह स्कूल पहुँचा। शरबती तभी टिफिनदान में गौरी का खाना लेकर आई थी। शरबती ने उसे तब देखा जब वह स्कूल के आँगन मे आकर पूरे गले से चिल्लाने लगा था। शरबती तब घबराकर उससे बाहर जाने की प्रार्थना करने लगी। पर रामादीन और भी ज़ोर से चिल्लाने लगा—"तेरा चालचलन ठीक होता तो मुझे क्यों छोड़ती? स्कूल में आकर तूने नये घर बसाना ही सीखा है न! उनके घर में जाकर पड़ी है, जिनके बच्चे हो रहे हैं और बाप का पता नहीं..." तब तक स्कूल के आँगन में और बाहर काफी भीड़ हो चुकी थी। रामादीन बक रहा था—"इस बार छोटी बहनजी के लड़का होने में ढोलक पीट रही है, कल को बड़ी बहन जी के बालक होने में नाचियो। घर छोड़कर बालक ही जनवाती फिरियो..." तभी गौरी ने उसकी ओर पाँच का नोट फेंक दिया और कहा—"जा, जा! अब इसका पीछा छोड़।..."

रामादीन का स्वर एकदम उतर गया। चुपचाप उसने नोट उठाया। नोट हाथ में आते ही वह एक बार फिर बड़बड़ाया—"हाँ उनके जाकर पड़ो है जिनके बिना बाप के बच्चे हो रहे हैं, राँड!" और शरबती को घूरते हुए वह बाहर निकल गया।

पर स्कूल की प्रिन्सिपल को लगा जैसे रामादीन का स्वर स्कूल की ईंट-ईंट में समा गया है। उस दिन वह क्रोध से तिलमिला उठी। उसने शरबती और गौरी दोनों को अपने पास बुला लिया। ताड़ना के स्वर में वह शरबती से बोली—"तुम्हें आज आखिरी चेतावनी है। यदि फिर कभी स्कूल में यह जूतम-पैजार हुई तो तुम्हें निकाल दूँगी। समझती हो, इसका लड़कियों पर क्या असर पड़ता है? आज तुम्हें बिलकुल अन्तिम चेतावनी है। जाओ!···" शरबती का चेहरा निस्तेज हो गया। वह मृतप्राय-सी कमरे से बाहर निकल आई, पर द्वार के एक ओर ऐसो खड़ी हो गई कि प्रिन्सिपल गौरी से जो-कुछ कहे, उसके कान में भी पड़ जाय। गुम-सुम खड़ी वह सुन रही थी। प्रिन्सिपल बोली—"जो-कुछ मैंने अपने कानों सुना है, वही तुमने भी सुना है। इसकी गम्भीरता को भी तुम समझ सकती हो। रमा के बारे में पहले भी यह महरा बहुत-कुछ बक-झक गया है।···"

गौरी बीच में ही बोली—"सब झूठ बकता है। सो इसलिए कि किसी प्रकार हम शरबती को हटा दें।···"

प्रिन्सिपल का स्वर वैसा ही कठोर था—"लेकिन जिन सैकड़ों लड़कियों ने यह सुना है उन्हें मैं कैसे विश्वास दिला सकती हूँ, तुम्हीं कहो। और यदि अब रमा लौटकर आई भी तो यह नवीं-दसवीं कक्षा की जवान लड़कियाँ उसका कितना सम्मान कर सकेंगी?"

गौरी निरुत्तर बैठी रही। शरबती का हृदय भर आया। उसे अधिक कुछ सुनने की जिज्ञासा नहीं रह गई थी। वह स्कूल का काम भगवान्-भरोसे छोड़कर सीधी घर आ गई। सदैव खिला रहने वाला उसका निर्भीक चेहरा आज मुरझाया हुआ, भविष्य की आशंकाओं से डरा हुआ, और पीतवर्ण था। रमा तब सो रही थी, और उसके लिए रखी गई छोटी नौकरानी पंखा झल रही थी। शरबती ने उस कक्ष में

झाँका। रमा को निद्रावस्था में देख वह अपने बिखरे सामान को समेटने लगी। तभी जो आहट हुई उससे रमा जाग गई। उसने नौकरानी से शरबती को अपने समीप ही बुलवा लिया। सरल स्वभाव से उसने जब पूछा—"आज अभी से कैसे चली आई ?" तो शरबती एकदम करुण हो गई। भीगे हुए कण्ठ से उसने सारी घटना रमा को सुना दी और अन्त में बोली—"आज मैं भी कहीं अपना मुँह काला कर लूँगी। जहाँ चार चौके करूँगी, रोटी तो पेट के लिए कमा ही लूँगी। पर उस मरे का अब नाम नहीं लेना..." और शरबती रमा को अचेत, मूर्छित-सी देखकर सहम गई, मौन हो गई।

"बीबीजी, बीबी जी !" घबराकर वह रमा के चेहरे के पास तक झुक आई।

"हुं।" रमा के मुख से एक क्षीण स्वर सुनाई पड़ा।

"पानी दो थोड़ा !" शरबती ने नौकरानी से कहा और रमा से बोली—"जो मेरे जाने का इतना दुःख है बीबीजी, तो लो आज मैं रुक जाती हूँ। ...नहीं जाऊँगी। आप सवा महीना पूरा ही कर लो। पर स्कूल तो अब मैं नहीं जाऊँगी।"

शरबती ने बलात् रमा के मुँह में तीन चार चम्मच पानी उतार दिया। तब रमा ने बड़ी कठिनाई से शरबती की ओर करवट ली और क्षीण स्वर में कहने लगी—"भाग्य ने यहाँ भी साथ नहीं दिया शरबती !"

अब वह रमा की अर्द्ध मूर्च्छावस्था का कारण समझी। शरबती के मुँह पर जैसे ताला ठुक गया। रमा ने अपना सूखा कण्ठ फिर खोला—"ठीक तो है ! प्रिन्सिपल सबका मुँह कैसे बन्द कर सकती हैं। और मेरा आदर भी कौन कर सकता है ? जब मैं वहीं से निरादर पाकर चली आई, तो संसार में और कहाँ आदर मिल सकेगा ?... शरबती...तुम यहीं रहो...तुमसे पहले मैं चली जाऊँगी। मै चली जाऊँगी..." रमा का स्वर क्षीण होकर भी जैसे सारे कक्ष में, घर में, आकाश में, अवनि में गूँज उठा। तभी बालक रो पड़ा। रमा ने भावावेश में उसके जोर से चाँटा मार दिया—"चुप, अभागे !"

और शरबती तब सोड़ की छूत-छात का विचार छोड़कर रमा के चरणों में लिपट गई। "मुझे क्षमा कर दो बीबीजी! आपने तो मुझे शरण दी और आप पर मेरे ही कारण यह विपदा का पर्वत टूट पड़ा। मैं इसे नहीं देख सकती। मैं कदापि आपको नहीं जाने दूँगी। ऐसी हालत में आप कहाँ जायँगी? बीबीजी, मुझे क्षमा करो! भगवान् आपका सारा दुःख दूर करेंगे। आप अपना मन दुखी मत करो! बीबी जी क्षमा करो, क्षमा करो···" शरबती फूट-फूटकर रो पड़ी। और रमा के पीले पड़े नेत्रों में से भी बराबर पानी बहने लगा। प्रिन्सिपल का जो कथन उसने शरबती के मुख से सुना है, वह एकदम असह्य है। वह गौरी को मजबूर नहीं कर सकती, किसी को मजबूर नहीं कर सकती। जो स्वयं मजबूर है, वह किसी को क्या मजबूर करे? रमा विक्षिप्त हो गई। शरीर पहले ही निर्बल था, वह और भी बेजान हो गया। खाट उसके लिए लोहे का पिंजरा बन गई। जिसकी कोई शलाख दृश्य न होते हुए भी रमा के लिए सहस्रों-सहस्रों बनकर दृष्टिगत हो रही थीं। कृश काया के सूखे हाथ-पैर उन्हें तोड़ने के लिए चटख उठे।

गौरी उस दिन स्कूल से लौटी तो एकदम गम्भीर और मौन थी। रमा ने जानते हुए भी कुछ न पूछा। बहन के गाम्भीर्य और मौन का कारण वह अच्छी तरह जानती थी। रमा मूक ही बनी रही। गौरी ने भी उसके मन की थाह लेने की कोई चेष्टा नहीं की। एक बार शरबती के साथ ही जब गौरी उसके पास आकर झाँकी तो रमा ने केवल इतना ही कहा—"यह आज जा रही थी, मैंने रोक लिया है।···"

उन्नीस

डॉक्टर घोष ने भली प्रकार देख-भाल लिया तो नारायणबाबू उनके साथ ही कक्ष से बाहर आये। गम्भीर मुद्रा में उन्होंने डॉक्टर की आँखों में झाँका। चिन्तातुर स्वर में बोले—"बिटिया को कोई खतरा नहीं है?"

"नहीं नहीं," डॉक्टर बोला, "ऐसा कोई बात नहीं, कोई बात

नहीं। इनके मन को कोई ठेस पहुँची है। मानसिक सन्ताप इतना जोर का है कि टैम्परेचर हो गया है। घबराने का कोई बात नहीं। मन-बहलाव के लिए बाहर किसी ठण्डे शहर में ले जाना ठीक होगा।...”

“लेकिन अभी तो परीक्षा का समय निकट है।” नारायणबाबू की वाणी में विवशता थी। डॉक्टर चला गया। और तब एक दिन निराशा के मेघों मे आशा की दामिनी बनकर आया पोस्टमैन। तृषित सुमन को जैसे सुधा मिल गई। गौरी के पत्र ने उसका सन्ताप हर लिया। अंग-अंग में बिजली-सी दौड़ गई। निष्क्रिय शरीर क्रिया की ओर अभिमुख होने के लिए कुसमुमा उठा। पत्र की अन्तिम पंक्तियों ने मन में आशा और विश्वास का संचार किया। सुमन ने अनुमान लगाया कि हो-न-हो, रमा गौरी के ही पास है। आज वह उसे पा चुकी है। मन में आप ही आनन्द की हिलोर उठी, जैसे दरिद्र को बिना प्रयास के निधि प्राप्त हो गई हो। रमा को वह अब घर लौटने के लिए विवश कर देगी। उसकी आशा-दुराशा न निकली, तो साथ ही लेकर लौटेगी। मेरे कारण ही उसे घर त्यागना पड़ा है, मैं ही उसे उसके सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित करूँगी। प्रोफेसर भी अब ठोकर लगने के बाद आँखों से देखने लगे हैं। अब कभी किसी की विशुद्ध आत्मीयता को छिछला प्रेम न समझेंगे। हर जगह, हर पग पर जो फिसलन इस संसार में है, अब उससे बचकर चलेंगे। एक बार फिसले कि जीवन विश्रृङ्खल हुआ। और उसकी पीड़ा शत-शत मरण-सी दुःखदायी है। एक बार प्रोफेसर उससे जल चुके, झुलस गए। आवश्यकता से अधिक झुलस गए...” सोचते-सोचते सुमन के अधरों पर विजय की हलकी मुस्कान दौड़ गई, और तब वह सोचने लगी—‘शशिनाथ के जीवन के यह तिरस्कार-भरे दिन, जो पहाड़-से बीत रहे हैं; जिनका हर पल भीतरी चोट की तरह लम्बा और गहरा दुःख देने वाला है...’ तब उसे प्रोफेसर पर तरस आया और अकारण ही, तीर चूकने से रमा ने जो दुःख सहा उसकी कल्पना करके फिर वह आत्मग्लानि से भर आई। इसी प्रकार के संकल्प-विकल्प से घिरी वह उठ खड़ी हुई।

 नारायणबाबू ने ऐनक के फ्रेम को तनिक ऊँचा करके संदिग्ध नेत्रों

से पुत्री की चेष्टा-प्रचेष्टाओं का अवलोकन किया। वह देखते रहे—सुमन ने स्नानागार में जाकर मुँह धोया है, फिर केश सँवारे हैं, साड़ी बदली है और साड़ी बदलकर वह एक बार पुनः विशाल दर्पण के सम्मुख आकर खड़ी हो गई है। जब वह सैण्डिल बाँधने लगी, तब नारायण बाबू ने विस्मित होकर पूछा—"बेटा, आज कुछ तबियत सँभली नज़र आती है और आज ही तुम बाहर चल दीं?"

सुमन के चेहरे पर यह सुनकर एक भी सिकुड़न न पड़ी। वह सरल स्वभाव से कहने लगी—"बाबू आज कई दिन हो गए। मिस्टर राजाराम से मिलना जरूरी है। परीक्षा के दिन सिर पर आ गए। अभी आ जाऊँगी···"

"तो गाड़ी में जा रही हो न?"

"हाँ, गाड़ी में।"

तभी घोड़ी हिनहिनाई और उसका स्वर सुनकर नारायणबाबू को आश्चर्य हुआ कि मुझे कुछ पता ही नहीं, सुमन कक्ष में लेटी-लेटी ही सारे प्रबन्ध पूर्ण कर चुकी है। जाने लगी है, तो ज्ञात हो सका है।

सुमन जब नारायणबाबू के समीप से गुज़री तो बड़े स्नेह से वह पूछने लगे—"बिटिया, एक बात बताओगी?"

"हाँ, बाबू!"

"सुबह पत्र कहाँ से आया है?" प्रश्न-भरी दृष्टि ऐनक के चमकते शीशे पार करके सुमन के चेहरे पर आ टिकी।

"पत्र?" एक क्षण तो सुमन हिचकिचाई, फिर बोली—"बाबू, सच-सच बता दूँ? गाजियाबाद से।"

"गाजियाबाद से?" बीच में ही नारायणबाबू ने पूछ लिया।

"हाँ, बाबू! वहाँ रमा की एक बहन रहती है। उन्हें रमा का पता मालूम है।"

"रमा का पता मालूम है?" उत्सुकता से नारायणबाबू ने फिर प्रश्न किया।

"मैं रमा को लौटा लाना चाहती हूँ। यह तीन दिन का जो अव-

काश है, इसी में उसका पता लग जाने की आशा है। मिस्टर राजाराम को साथ लेकर जाने का विचार है।"

"तब मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा," सोत्साह नारायणबाबू बोले।

"आप? पर बाबू, आप तो अभी अस्वस्थ हैं।"

"नहीं, इतना अस्वस्थ नहीं कि एक रात यात्रा भी न कर सकूँ। फिर रमा तो मेरी ही भूल के कारण गई है। जब तक मैं उसे न समझाऊँगा, वह लौटेगी भी नहीं। फिर यह शशिनाथ का काम होगा कि वह उसका खोया हुआ विश्वास पा सके।"

नारायणबाबू सुमन के साथ ही बग्घी में आ बैठे।

और उस रात्रि 'दिल्ली एक्सप्रेस' के एक द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में उन दोनों के साथ राजाराम भी था।

● ● ●

प्रातःकाल सन्निकट था। चार का समय हो चुका था, पर आकाश में गहरे काले जलद छाये थे। दामिनी दमक रही थी, छिप रही थी। जैसे शशिनाथ का मन अस्थिर रहा, वैसे ही बिजली की दमक भी थिर नहीं थी। सड़क सुनसान थी। बादल की गरज से कलेजा काँप-काँप जाता था। हवा में ठिठुरन थी, शरीर जिससे ऐंठा जा रहा था। ताँगे से उतरकर नारायणबाबू, सुमन और राजाराम उस कच्ची, पानी और कीचड़ से भरी गली को पार कर रहे थे। राजाराम के हाथ में दो अटैची केस थे, सुमन के हाथ में टार्च थी। नारायणबाबू अपनी छड़ी के सहारे दोनों के पीछे-पीछे चले जा रहे थे। दूर से कभी-कभी कुत्तों के भौंकने की आवाज़ आती थी। पर टार्च के प्रकाश से वह भी चुप हो जाते थे। सुमन के पास जिस गली का पता था, वहीं ताँगे वाला उतार गया था। उसने बताया था कि 'मास्टरनी का मकान गली के अन्त में, बाईं ओर घूमते ही सामने है। उससे पहले मोड़ पर एक कुआँ है; वहीं घूम जाना।.....' गली का अन्त ही नहीं आता था। बिजली की बत्तियाँ प्रायः बुझी हुई थीं। शायद वर्षा के बाद ही 'लाइन' चली गई है।

गली के मोड़ तक पहुँचते-पहुँचते कीचड़ और फिसलन कुछ अधिक जान पड़ी तो राजाराम ने एक छोटी अटैची सुमन को दे दी और खाली हाथ में उसका एक हाथ ले लिया। दो कदम और आगे चलने पर राजाराम और सुमन ठिठक गए। पास ही से किसी सद्यजात शिशु के रुदन का स्वर सुनाई दे रहा था। उस निविड तम में भी राजाराम और सुमन ने एक-दूसरे की ओर आश्चर्य से देखा। तब तक नारायणबाबू भी उनके पास ही आकर रुक गए। शिशु का रुदन फिर सुन पड़ा। सुमन ने चारों ओर ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ, टार्च का प्रकाश फेंका। कोई दृष्टिगत न हुआ, कुछ समझ में न आया। एक पग और आगे बढे, तो स्वर स्पष्ट सुन पड़ा। लगता था जैसे कोई बालक का गला घोंट रहा हो। स्वर निरन्तर सुनाई पड रहा था। वे तीनों फिर ठिठक गए। एक बार फिर सुमन ने टार्च से चारों ओर देखा। उस मन्द प्रकाश में कुछ भी नज़र न आया।

राजाराम फुसफुसाहट के स्वर में बोला—"आवाज़ कहीं पास से ही आ रही है।"

और उसी क्षण लगा जैसे कोई बालक के मुँह में कपड़ा ठूँस रहा हो। पास के ही एक मकान के पत्थर के चबूतरे पर राजाराम ने अटैची-केस रख दिया तथा सुमन से टार्च लेकर वह दो कदम और आगे बढ़ा। सुमन उसके पीछे थी। वे दोनों अब गली के मोड़ पर ही थे कि राजाराम ने बाईं ओर टार्च का मुख किया। कुएँ पर कोई छाया-सी नज़र आई। सहसा राजाराम ने टार्च बन्द कर दी। वह डर गया था। सुमन भी उस क्षण काँप गई। तब उस नीरवता में एक मन्द स्वर सुनाई पड़ा, जैसे कोई मुर्दा बोल रहा हो—"तुम्हारी इस दुनिया मे भगवान्, मैंने जो कष्ट सहे उनसे मेरा हृदय बहुत कठोर बन गया था। पर आज मैं समझी कि विपदाएँ सहते-सहते कठोर बन जाने पर भी, मुझ-सी अशरण अबलाओं को यह जगती अपना नहीं सकती। तुम्हारी लीला आज तुम्हारी ही गोद में समाप्त कर दूँगी, कर रही हूँ। वे जहाँ भी हों सुखी रहें···" इतना सुनकर राजाराम ने साहस बटोरकर टार्च का बटन फिर दबाया और तीर की गति से कुएँ पर चढ़ गया। उस छाया को

वह अब स्पष्ट देख रहा था। उसने कसकर उसकी बाहें पकड़ लीं और पीछे की ओर खींचते-खींचते वह जोर से चिल्ला पड़ा—"तुम कौन हो ?"

इस खींचातानी में बालक का रुदन फिर स्पष्ट सुनाई दिया। तब राजाराम ने उसे रमणी के शरीर पर ऊपर से नीचे तक टार्च दौड़ाई। देखा, शिशु को छाती से जकड़कर बाँधा गया है। राजाराम तब कठोरता से उस रमणी को घसीटकर कुएँ से नीचे उतार ले आया। कड़कती हुई वाणी में वह फिर बोला—"इस आत्महत्या के महान् पाप से क्या पापों का अन्त होता है ? तुम कौन हो ?"

राजाराम ने उसके चेहरे पर टार्च का प्रकाश बिखेर दिया। रमणी ने आँखें बन्द कर लीं और संयत स्वर में बोली—"तुम निष्ठुर प्राणी कौन ? मुझे अपने स्वामी की सुखद गोद में जाने से कोई नहीं रोक सकता।" और उस रमणी ने अपना हाथ छुड़ाने के लिए संघर्ष किया।

तब राजाराम बोला—"सुमन, आगे आओ, यह गाँठ खोलो तो, बालक का दम घुट रहा है।"

और राजाराम के इतना कहते ही वह रमणी एकदम शिथिल-सी पड़ गई। अब उसने नेत्र उठाकर सामने खड़ी युवती की ओर देखा और रुद्ध कण्ठ से वह बोली—"आप लोगों ने मुझे रोककर बहुत बुरा किया है। मैं जीवन की बाजी हार चुकी हूँ। मुझे छोड़ दो···" रमणी ने झटका दिया। हाथ छूट गए। वह कुएँ की ओर फिर दौड़ी। पर राजाराम ने उसे भागकर पकड़ लिया; फिर कुएँ से नीचे घसीटा। और तब दोनों कीचड़ में गिरते-गिरते बचे। तब नारायणबाबू भारी स्वर में बोले—"अरी तू है कौन ? अभी पुलिस में दे दी जायगी। वरना अपना ठीक नाम-पता बता ?···"

इतना सुनकर रमणी फूट पड़ी—"मेरा सुख-सुहाग छीनकर भी तुम्हें चैन पड़ा नहीं ? मुझसे मेरा जीवन-धन छीनकर अब मुझे किसलिए जीवित रखना चाहते हो ? मैंने तुम्हारा यहाँ बैठे क्या बिगाड़ा था ? तुम्हें मेरा चिर-शान्ति की गोद में जाना भी खटका ? और यह पापात्मा···" रमणी ने राजाराम की ओर अँगुली उठाई—"कौन है ? इसने मेरे क्या पाप देखे हैं···तुम सब मेरी आँखों से दूर हट जाओ—

इस मिथ्या संसार में मुझे जीवन-मरण अकेले ही झेलने के लिए छोड़ दो—मुझे छोड दो···" रमणी के दोनों हाथ मुँह पर आ गए। वह फूट-फूटकर रो पड़ी।

"बहन रमा ?" करुण कण्ठ से सुमन चिल्ला उठी।

"अरे बेटा रमा ?" नारायणबाबू ने आगे बढ़कर उसे वक्ष से लगा लिया। तब रमा एकदम पीछे हटकर और भी जोर से रो पड़ी। राजाराम बोला—"मुझे क्षमा कीजिए। अनजाने जो-कुछ मैंने कहा उससे मैं लज्जित हूँ।"

सुमन तब रमा को गोद से पसीने में डूबा हुआ शिशु लेकर राजाराम को दे चुकी थी। वह उसके गले में लिपट गई और भीगे कण्ठ से बोली—"बहन, मैं तुम्हें अब इस तरह यहाँ न छोड़ूँगी। मेरे कारण तुम्हें बड़ा दुःख हुआ है।···जो-कुछ तुम समझकर चली आई हो, वह सब मिथ्या है, भ्रांति है।·· और फिर यह आत्महत्या ?···" सुमन रो पड़ी।

नारायणबाबू बोले—"बेटा रमा, इस बूढ़े की ओर तो देखो तनिक। यह तुमसे क्षमा माँगने ही अपनी शैया से उठकर लड़खड़ाता चला आया है। प्रोफेसर ने तुम्हें अपनाया नहीं, यह मैं मानता हूँ। पर घर तुमने मेरी भूल के कारण ही छोड़ा था। मैं ईश्वर को साक्षी मानकर कहता हूँ कि सुमन ने कभी भी प्रोफेसर को प्रेम नहीं किया।····" कहते-कहते वह मोड़ घूम गए। उनके साथ राजाराम भी आगे बढ़ा। सुमन बाँह पकड़कर रमा को आगे ले चली। नारायणबाबू कह रहे थे—"मैंने अच्छी तरह छान-बीन की है, बेटी अब तुम कल ही लौट चलना। प्रोफेसर शशिनाथ बहुत तकलीफ मे हैं। तुम्हारा सुख-सुहाग छीनने की किसी ने कोशिश नहीं की। अब तुम्हें अपने स्वामी के निकट ही पहुँचना होगा। तुम्हारे निर्मल हृदय को देखकर उनका मन भी शुद्ध-शुचितम हो जायगा।···" रमा ठिठकी। तब वे समझे कि गौरी का क्वार्टर आ गया है। द्वार खुले पड़े थे। घर में सन्नाटा था। आगे बढ़ते-बढ़ते नारायणबाबू कह रहे थे—"ईश्वर भी कैसा कारसाज है। एक क्षण भी विलम्ब हो जाता तो रमा सचमुच चिर-शान्ति

की गोद में शयन कर रही होती। दुर्गा ने हमें कलंक से बचा लिया। तुम्हारे बालक को भगवान् शतायु करे, और तुम शशिनाथ के यहाँ सुख से भरपूर रहो !" इतना कहकर नारायणबाबू चुप हो गए।

तब सुमन ने अपनी साड़ी के पल्ले से रमा के आँसू पोंछ दिए। रमा यह सब सुनकर मौन हो गई थी। उसका हृदय-मस्तिष्क सत्या-सत्य का मन्थन करने लगा। वह सोचने लगी—'क्या यह वही नारायण बाबू हैं जो विवाह का प्रस्ताव लेकर घर आये थे? क्या यह वही सुमन है जिसका प्रेमालाप उस चित्र में साकार हो उठा था? जो-कुछ अपने कानों से सुना है उसने, क्या वह सत्य है?···' उस क्षण रमा ने सुमन के अश्रु-प्लावित नेत्र देखे। नारायणबाबू जैसे कानों में फिर बोल उठे—'सुमन ने कभी भी प्रोफेसर को प्रेम नहीं किया···' रमा सोचने लगी—'यह लोग यहाँ आये कैसे?···' और तब उसने धीरे से सुमन से पूछा—"क्या आपको गौरी बहन ने पत्र लिखा था?"

"हाँ! क्या तुम्हें पता नहीं?"

"गौरी बहन को भी मैंने बहुत दुःख दिया," कहते-कहते रमा का गला भर आया।

मकान में इन लोगों ने प्रवेश किया ही था कि बाहर से किसी ने जोर से पुकारा—"मास्टरनी जी!"

बाहर की ओर सबने देखा। इतने में गौरी भी जाग गई।

"मास्टरनी जी तार ले लो, तार है," फिर सुन पड़ा।

राजाराम ने तार ले लिया। गौरी इसी बीच आँगन में आ गई। आँगन में ये भीड़ देखकर उसकी अँगड़ाई और उबासी अधूरी ही रह गई।

"रमा, किसका तार है? क्या बात है?" गौरी ने साश्चर्य पूछा।

रमा मौन रही। गौरी तब तक आँगन की बिजली जला चुकी थी। बिजली के प्रकाश में उसने आँखें फाड़कर आगन्तुकों की ओर देखा। देखा रमा को भी। वह पसीने से लथपथ थी। धोती अस्त-व्यस्त थी। और गोद का नन्हा सुकुमार फूल उस आगन्तुक युवक की गोद में

था। वह आँखें फाड़-फाड़कर देख ही रही थी कि सुमन बोल पड़ी—"मैं सुमन हूँ। ये मेरे पिताजी हैं और ये ···"

"समझी !" गौरी का स्वर नीचे उतर आया, "पर आपने बहुत जल्दी की।···"

बीच में ही सुमन बोली—"यदि जल्दी न की होती, तो रमा बहन अब तक किसी और संसार में होतीं, जहाँ से लौटना नहीं होता।"

"यह क्या कहा ?" गौरी जैसे आकाश से पृथ्वी पर आ रही। रमा रो रही थी। सुमन बोली—"इन्हें कुएँ से उतारा है बाँह खींचकर।"

गौरी ने दौड़कर रमा को गले से लगा लिया—"पगली, इसीलिए क्या शाश्वती से कहती थी कि मैं तुमसे पहले चली जाऊँगी ?···मैंने तो तुम्हें कुछ भी नहीं कहा था। स्कूल न जाती, पर घर तो तेरा था।···सचमुच तू भी बड़ी बावली है।"

"दुःखों ने बना दिया है बहन," कहकर रमा फूटकर रो पडी।

"पगली कहीं की," गौरी उसके आँसू पोंछते हुए उसे कमरे की ओर ले चली। वे तीनों भी उसके पीछे चले। तब गौरी ने सुमन से पूछा—"तार कहाँ है ?"

राजाराम बोला—"दिल्ली से आया है। वैभवजी का है। लिखा है—माँ की हालत बहुत खराब है। जल्दी आओ।···"

सारा वातावरण निस्तब्ध हो गया। रमा अगले ही क्षण भर्राये कण्ठ से बोली—"मैं अभी स्टेशन चलती हूँ। सुबह हो रही है। कोई-न-कोई गाड़ी मिल ही जायगी !"

"घबराओ नहीं। मैं तुम्हें अकेली न जाने दूँगी। तुम्हारी माँ हैं तो मेरी भी माँ ही समझो। मैं साथ चलूँगी। साढ़े छः बजे अब गाड़ी मिलेगी।"

तभी जोर से बिजली कड़की। बादल गरजे। नारायणबाबू बोले—"अब दिल्ली दूर नहीं। हम भी साथ ही चलेंगे ! क्यों सुमन ?"

"हाँ हाँ, ठीक तो है !" राजाराम और सुमन के मुँह से एक साथ ही निकला।

मेघ फिर सहस्रों सिंहों की तरह गरज उठे। सुमन ने राजाराम की गोद से शिशु लेकर उसे अपने अंक में छिपा लिया।

नारायणबाबू ने दिल्ली पहुँचते ही अपने बटुए का धन दोनों हाथों उलीचना शुरू कर दिया। वाणी से उन्होंने धैर्य की वर्षा की। और इन सत्प्रयत्नों का परिणाम भी अच्छा ही हुआ। सन्ध्या तक ही कुन्ती की दशा में सुधार के लक्षण दिखाई देने लगे। नारायणबाबू और सुमन की उपस्थिति से उसे बड़ा सन्तोष हुआ था। फिर उनकी यात्रा के उद्देश्य को जानकर तो उसके कलेजे में ठण्डक पड़ गई थी। मानो प्राणों की बाजी खेलते-खेलते उसे अमिय-कुण्ड मिल गया हो। सुमन को उसने अपनी आँखों से दूर न होने दिया। बार-बार यही कहती थी—"इस अहसान को मैं मरते-मरते न भूलूँगी। तुमने रमा को नया जन्म दिया है।··· "

कुन्ती की स्थिति में सुधार था, इसलिए दोपहर से ही नारायण-बाबू भविष्य का कार्यक्रम बनाने लगे। सुमन और राजाराम भी कुन्ती की सेवा-सुश्रूषा मे लग गए थे। इससे नारायणबाबू को प्रसन्नता मिली। उन्होंने पहली बार दोनों को एक साथ कार्य करते देखा था। लगता था जैसे एक प्राण दो शरीर होकर कार्य-संलग्न हो गए हैं। रमा को पा लेने का भी उनके म न में असीम हर्ष था। सोचते थे, 'प्रोफेसर को उसकी निधि सौंपकर मैं ऋण-मुक्त हो जाऊँगा। परीक्षा समाप्त होते ही फिर कुछ दिनों के लिए बारीसाल जाऊँगा। बची-खुची सम्पत्ति के पैसे खड़े हो जायँगे। भारत-पाकिस्तान के अल्पसंख्यक मन्त्रियों, विश्वास और मलिक, के दौरे से स्थिति में आशातीत परिवर्तन होने के समाचार छप रहे हैं। यदि इनमें कुछ सचाई है, तो वहीं जाकर बस रहूँगा। वह जन्मभूमि विदेश बनकर भी स्वर्ग तुल्य है।' दोपहर के भोजन के बाद जब नारायणबाबू ने अपने इस निश्चय को प्रकट किया तो सबसे पहले विरोध करने वाली थी रमा। उसने कहा—"परीक्षा के बाद पहले सुमन के हाथ पीले होंगे; तब आपको कहीं हिलने दिया जायगा।" सुनकर सुमन के कपोलों पर गुलाबी रंग दौड़ गया।

 राजाराम से उसके नेत्र मिले, फिर दोनों नतनयन हो गए। नारायण-

बाबू का तो मानो रोम-रोम खिल उठा। हर्षातिरेक से आँखों के कोयों में पानी भर आया।

तभी कुन्ती ने आशीर्वाद दिया—"भगवान्, यह जुगल जोड़ी जुग-जुग जिये!..." तो जैसे वह प्रणय-सूत्र अनन्त काल के लिए संसृतिकी ग्रन्थियों में बँध गया।

सन्ध्या का सिन्दूर जब जगती के प्रांगण में अपना रंग बिखेरने लगा तो सुमन सारे घर को सँजोने लगी। अपने हाथों वह इस घर का शृङ्गार ऐसे करने लगी जैसे यह उसका अपना हो घर हो। इसका कारण था, वैभव से वह सुन चुकी थी कि उसने प्रयाग भी तार दिया है। नौ बजे तक प्रोफेसर भी यहाँ पहुँच जायँगे। मन-ही-मन वह फूली न समा रही थी। सोचती थी, प्रोफेसर को आशा भी न होगी कि रमा से अनायास ही भेंट होने वाली है। और हमें यहाँ देखकर तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहेगा।...

लेकिन धीरे-धीरे दस बज गए। सुमन बिस्तर पर लेट गई। पर तन्द्रावस्था में भी वह बार-बार अपनी कलाई-घड़ी की रेडियम से जगमग सुइयों को देख रही थी। सवा दस बजे, साढ़े दस हुए, पौने ग्यारह और फिर ग्यारह भी बज गए। दो घण्टे बीत गए। अब सुमन बिलकुल निराश हो गई। उदास मुख को निद्रा ने अपनी गोद में छिपा लिया।

आधी रात बीते सहसा ही किसी ने बाहर से वैभव को पुकारा। कुण्डी की खड़खडाहट सुनकर रमा जाग गई। भीतर से अलसाये स्वर मे उसने पूछा—"कौन है इतनी रात गए?"

"मैं हूँ!" भारी स्वर में उत्तर आया।

रमा को यह दो अक्षर भी तब चिरपरिचित-से जान पड़े और उसके रोंगटे खड़े हो गए। शरीर में कम्पन हुआ और हिम्मत के साथ वह फिर भी बोली—"मैं कौन? नाम बोलो, तभी कुण्डी खुलेगी।"

"मैं शशिनाथ हूँ! गाड़ी लेट थी।..."

प्रोफेसर के इतना कहते ही कुण्डी जैसे आप-ही-आप फिसलकर गिर पड़ी। रमा ने कुण्डी खोली तो, पर जैसे वह साँकल उसके पैरों

में आ पड़ी। एक पग भी उसके विकम्पित पैर पीछे न हटे। आँगन में दीपक टिमटिमा रहा था। उसी के मन्द प्रकाश में वह अपने देवता को एक झलक देख लेना चाहती थी।

द्वार में पहला चरण रखते ही शशिनाथ ने रमा को देखा। कलेजा धक्-से रह गया। पर अगले ही क्षण उन्होंने आगे बढ़कर रमा को कसकर अपने अंक में ले लिया। मुँह से केवल निकला एक भीगा स्वर—"रमा !"

रमा के मन में आया कि इस बन्धन से मुक्त हो जाय, पर उसका शरीर उस क्षण निश्चेष्ट हो गया। नेत्रों से गरम-गरम अश्रु-कण ढुलककर शशिनाथ के हाथ पर आ गिरे। तब वह बोले—"मैं नहीं जानता था कि तुम मुझे इतना कठोर दण्ड दोगी। मैंने कब हृदय से सुमन को चाहा था?..."

"तो मुझे भी हृदय में कब स्थान दिया था?" रमा ने भर्राए हुए गले से कह ही तो दिया।

शशिनाथ निरुत्तर रह गए....रमा ने उनके हाथों से बाहर होते हुए फिर कुण्डी लगा दी। तब शशिनाथ ने प्रश्न किया—"माँ जी की कैसी तबियत है?...और हाँ...रवि यहाँ आया था। तुम उसे नहीं मिलीं? तब कहाँ थीं?"

"जिसके सब सहारे छिन गए हों, वह कहीं भी रहे?"

रमा आगे बढ़ी, शशिनाथ उसके पीछे थे। तभी कुन्ती की आँख खुल गई। पूछा उसने, "कौन है बेटा !"

रमा क्या कहती! शशिनाथ ने स्वयं अपना नाम बता दिया। कुन्ती प्रसन्न हुई। सूखे धान को जैसे पानी मिल गया हो। फिर स्नेह-भरे स्वर में बोली—"बड़ी रात कर दी, बेटा !"

"दिन में आकर यह मुँह दिखाता भी कैसे?" शशिनाथ की वाणी कातर थी।

कुन्ती उनके मन की पीड़ा समझ गई। आश्वासन देती हुई बोली—"जो होने वाला था, वह तो हो चुका। अब इतना दुःख मानने की क्या बात? पर हाँ, सुमन ने तुम्हारी रमा के प्राण बचा लिए हैं।

मेरे भाग्य से भगवान् ने तुम दोनों को आज फिर मिला दिया। ईश्वर, जुग-जुग तक सुमन का सुहाग अमर बनाये रखे !"

शशिनाथ को यह बात छू गई। सुमन के प्रति हृदय में फिर श्रद्धा उत्पन्न हुई और अपने प्रति ग्लानि। मन को भीतर से किसी ने कुरेदा—'मैं उस लड़की को अभी तक पहचान नहीं पाया। सचमुच उसका हृदय कितना विशाल है। मेरी संशय-दृष्टि, झिझक से रमा को कितना कष्ट उठाना पड़ा !'

कुन्ती फिर बोल पड़ी और शशिनाथ की विचार-श्रृङ्खला टूट गई। वह कह रही थी—"रमा तब से गौरी के पास थी। वहाँ जो कुछ दुर्भाग्य इस पर वज्र बनकर टूटा उससे यह इतनी विचलित हुई कि कुएँ में कूदने के लिए तैयार थी। न सुमन पहुँचती, न रमा बचती।···" कुन्ती का गला भर आया। शशिनाथ की आँखों में भी पश्चात्ताप के आँसू छा गए। एक बार आँगन में बिछी चारपाइयों पर दृष्टि डाली और वह अवाक् रह गए। मन में आया, एक बार फिर कसकर रमा को अंक में छिपा लूँ।

इसी समय नारायणबाबू भी जाग गए। पास आते हुए बोले—"आ गए प्रोफेसर।···" शशिनाथ ने खड़े होकर कहा—"नमस्ते, नारायण-बाबू !"

नारायणबाबू मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। शशिनाथ बोले—"आपने मेरे ऊपर जो कृपा की है, वह आजीवन भुलाई नहीं जा सकती।···"

"चलो, आप शाम होते-होते आखिर घर तो आ लगे।"

"सुमन ने मेरी आँखें खोल दी हैं और रमा ने स्वयं कष्ट सहकर मेरा हृदय बदल दिया है, नारायणबाबू ! अब भी घर न आ लगता, तो कब आता फिर ?"

● ● ●

परीक्षा समाप्त हो चुकी थी। नारायणबाबू कलकत्ता जाने को तैयार थे। वहाँ से बारीसाल जाने का कार्यक्रम बन गया था। राजाराम और सुमन साथ थे। पर सुमन आज राजाराम के साथ होने से सिकुड़ी-सिमटी हुई थी। ललाट पर रोली की चौड़ी बिन्दी थी। नागिन-से

लहराते घुँघराले केशों में सिन्दूर सुशोभित था। हाथ-पैरों में महावर लगी थी। कलाइयों में हाथी-दाँत की दो-दो चूड़ियाँ थीं। भारी गड़गड़ाहट के साथ जब 'अपर इंडिया एक्सप्रैस' ने इलाहाबाद-जंकशन में प्रवेश किया तो सुमन ने नतनयन हाथ जोड़कर प्रोफेसर को नमस्कार किया। राजाराम ने उनसे हाथ मिलाया और नारायणबाबू बोले—"अब तुमको प्रोफेसर, भ्रम के बादलों में कभी छिपना नहीं होगा। तुम शशि हो न, इसीलिए यह बादल तुम्हें घेरे रहते हैं।..." वह मुस्करा दिए। शशि-नाथ के नेत्र झुक गए। रवि, जो अब तक कुछ दूरी पर खड़ा था, समीप आ गया। प्रभा गंगोली नारायणबाबू का आशीर्वाद पा रो पड़ी थी।

और जब गाड़ी चलने को तैयार थी, तो रमा और शशिनाथ भी उसी डिब्बे में बैठ गए। रवि ने नारायणबाबू को चौंकते देखा, तो बोला—"हम प्रयाग स्टेशन पर उतर जायँगे। भैया को आज यूनी-वर्सिटी में कुछ काम है। छुट्टियाँ खत्म हो चुकी हैं। पर ग्रीष्मकालीन अवकाश शुरू होने से पूर्व पुस्तकालय से कुछ पुस्तकें लेने को विचार है।..."

प्रयाग स्टेशन के वह दो क्षण रमा के जीवन में अमिट बनकर रह गए। अश्रुप्लावित नेत्रों से सुमन ने कहा था—"न जाने अब कभी आपसे मिलना होगा या नहीं? पर आपकी याद मैं कभी भूल न सकूँगी।..."

रमा बोली, "और तुमने तो मुझे उऋण होने का अवसर ही नहीं दिया।" धुक्-धुक्, झुक्-झुक् के साथ इंजन ने गहरा काला धुआँ छोड़ा और गाड़ी आगे बढ़ गई। शशिनाथ और रमा के हृदय का धुआँ भी मानो उस धुएँ में मिलकर उड़ गया। उनकी आँखों में पानी भरा था। मन-प्राण में अपनी समस्त सुगन्ध के साथ समा गई थी सुमन चैटर्जी!